

भाणिकचन्द्रादि० जैन ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक ५०

श्री विजयवर्णिविरचित
शृङ्गारार्णवचन्द्रिका
(अपरनाम अलंकारसग्रह)

सपादक

डा० वामन महादेव कुलकर्णी
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला
ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० आ० ने० उपाध्ये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय कार्यालय
३६२०१२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण संवत् २४९५
विक्रम संवत् २०२६
सन् १९६९
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
वाराणसी

MĀNIKACHANDRĀ D. JAINĀ GRANTHAMĀLĀ NO 50

SRĠGĀRĀRĠAVACANDRĪKĀ

(Alaṅkārasaṅgraha)

of

VIJAYAVARNĪ

Edited by

Dr. V. M. Kulkarni,
M. A., Ph. D.

Published by

BHĀRĀTĪYĀ JNĀNĀPĪTHA

Mānikachandra D. Jaina Granthamālā

General Editors :

Dr. H L. Jain and Dr. A. N. Upadhye

Published by

Bhāratīya Jñānapītha

Head office

9, Alpur Park Place, Calcutta-27

Publication office

Durgakunda Road, Varanasi-5

Sales office

3620/27 Netaji Subhas Marg, Delhi-6

First Edition

V N. S. 2495

V. S 2026

A D. 1969

Price Rs 3/-

CONTENTS

| | | |
|--|------|-------|
| General Editorial | | vii |
| Introduction | | 1-22 |
| 1. Critical Apparatus | | 1 |
| 2. The Personal History of Vijayavarnī | | 2 |
| 3. Date of King Kāmirāja | | 3 |
| 4. Vijayavarnī's Poetry | | 5 |
| 5. The Title of the Present Work | | 6 |
| 6. A Brief Summary of the Contents of Śrngārārṇavacandrikā | | 8 |
| 7. Sources of Śrngārārṇavacandrikā | | 10 |
| 8. Acknowledgement | | 21 |
| Detailed Table of Contents | | 23-66 |
| Text | · | 1-97 |
| Appendix—A अकाराद्यनुक्रमेण पद्यसूची | ... | 121 |
| Appendix—B-C List of passages in the text- derived from earlier Alaṃkāra Works | | 141 |
| Appendix—D Śrngārārṇavacandrikā and Alaṃkāra-saṃgraha. | ... | 156 |
| Appendix—E विशेषपदानि | ... | 160 |
| Appendix—F References | | 172 |



General Editorial

It gives us great pleasure to present to Indologists an edition of the Śrngārārṇava-candrikā, a hitherto unpublished work on Sanskrit poetics by Vijayavarṇi, a disciple of Munīndra Vijayakīrti, composed this work at the request of King Kāmīrāja of Bangavādi (in Karnāṭaka) who flourished, it is believed, towards the close of the 13th century A. D. The work deals with various aspects of poetics. It commemorates the glory of King Kāmīrāja by means of the examples with which the author illustrates the different points of poetics. In this respect the work is akin to the Rasagangādhara of Jagannātha, Ekāvalī of Vidyādhara and Pratāparudra-yaśo-bhūṣana of Vidyānātha in which all the examples are composed by the authors themselves and contain panegyrics of their patrons.

The present edition of the Śrngārārṇava-candrikā is based on a single Ms. which fell into the hands of Dr. A. N. Upadhye who entrusted it to Dr. V. M. Kulkarni for authentically editing it. No other Ms. is reported from any other source. Dr. Kulkarni, who is a very keen student of Sanskrit poetics, has spared no pains in presenting the text as faithfully as was possible in the circumstances. He has added a learned and critical Introduction to the text wherein he has discussed various relevant topics, such as the personal history of the

author, his age, his poetry, the title of the work, a summary of its contents and its sources. He has also added at the end various useful Appendices. All this material, so carefully presented, it is hoped, will be of great use to readers in appreciating the contents of this new work on Sanskrit poetics.

This Granthamālā has done signal service to the cause of Jaina literature by bringing to light many unpublished works in Sanskrit and Prākṛit. We are grateful to Shri-man Shanti Prasadaḥ and to his enlightened wife Smt. Ramaḥ for so generously shouldering the responsibility of this Granthamālā. It is both an opportunity and a challenge to all earnest workers in the field of Jaina literature. Many small and big works in Sanskrit, Prākṛit, Apabhraṁśa etc. still lie neglected in old Bhaṇḍāras, and we earnestly appeal to our scholars to edit them and present them in a neat form, so that the cultural heritage of our land is properly appreciated. Our thanks are due to Dr. V. M. Kulkarni for his kindly editing this work for our Granthamālā.

Jabalpur
Kolhapur

H L. Jain
A. N. Upadhye

प्रधान सम्पादकीय

शृङ्गारार्णव-चन्द्रिका के इस सम्पादन को भारतीय विद्या के प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह रचना सस्कृत काव्यशास्त्र विषयक है जो अभी तक अप्रकाशित थी। इसके कर्ता मुनीन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी थे और उन्होने इसे कर्नाटक प्रदेशीय वगवाडि के कामिराज नामक नरेश की प्रार्थना से बनाया था। ये नरेश १३वीं शती के अन्त में हुए माने जाते हैं। ग्रन्थ में काव्य-शास्त्र विषयक अनेक बातों का समावेश है जिनके उदाहरणों में राजा कामिराज के यश का वर्णन किया गया है। इस सम्बन्ध में यह रचना जगन्नाथकृत रसगंगाधर, विद्याधरकृत एकावली तथा विद्यानाथकृत प्रताप-रुद्रयशोभूषण से समानता रखती है क्योंकि उनमें भी समस्त उदाहरण उनके कर्ताओं द्वारा स्वयं रचित हैं और उनमें उनके सरक्षकों का यशोगान भी पाया जाता है।

शृङ्गारार्णव-चन्द्रिका का प्रस्तुत सस्करण केवल एक मात्र प्राचीन प्रतिपर आधारित है जो डॉ० आ० ने० उपाध्ये को हस्तगत हुई थी और जिसे उन्होने प्रामाणिक रीति से सम्पादन हेतु डॉ० व्ही० एम० कुलकर्णी के सुपुर्द की थी। इसकी अन्य किसी प्राचीन प्रति का कहीं से अभी तक पता नहीं चल सका है। डॉ० कुलकर्णी सस्कृत काव्यशास्त्र के बड़े लगनशील अध्येता हैं और उन्होने वर्तमान परिस्थितियों में जहाँ तक सम्भव था वहाँ तक ग्रन्थ को उसके यथार्थ स्वरूप में प्रस्तुत करने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। उन्होने ग्रन्थ की विद्वत्तापूर्ण आलोचनात्मक प्रस्तावना भी लिखी है, जिसमें उन्होने ग्रन्थकर्ता का इतिहास, रचनाकाल, काव्य-स्वरूप, ग्रन्थनाम तथा सक्षिप्त विषय-वर्णन एवं उसके स्रोतों आदि अनेक

उपयोगी विषयो का विवेचन किया है। उन्होंने ग्रन्थ के अन्त में अनेक उपयोगी परिशिष्ट भी जोड़े हैं। यह सब सामग्री बड़ी सावधानी से प्रस्तुत की गयी है और आशा की जाती है कि वह इस काव्यशास्त्र विषयक रचना के विषयो को समझने में पाठको को बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थमालाने संस्कृत और प्राकृत भाषाओके अनेक अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाश में लाकर जैन साहित्य की स्मरणीय सेवा की है। हम श्रीमान् शान्तिप्रसाद जी और उनकी विदुषी पत्नी श्रीमती रमाजी के बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थमाला के भार को बड़ी उदारतापूर्वक अपने कन्धोपर वहन किया है। उनका यह कार्य जैन साहित्य के क्षेत्र में उत्साहपूर्ण कार्यकर्ताओं के लिए एक सुअवसर और चुनौती भी है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में लिखित अनेक छोटी बड़ी रचनाएँ अभी भी प्राचीन भण्डारों में उपेक्षित पड़ी हुई हैं। हमारा अपने विद्वान् वन्धुओं से आग्रहपूर्वक निवेदन है कि वे इन रचनाओं को स्वच्छ रूप में सम्पादित कर प्रस्तुत करें जिससे हमारे देश का सांस्कृतिक दाय यथोचित रीति से समझा व सम्मानित किया जा सके। हमारी ग्रन्थमाला हेतु कृपापूर्वक इस ग्रन्थको सम्पादित करने के लिए हम डॉ० कुलकर्णी के बहुत कृतज्ञ हैं।

—हीरालाल जैन

—आ० ने० उपाध्ये

मूलग्रन्थस्य विषयानुक्रमणिका

| | | | |
|-----|--|--|--|
| ३ | | | |
| ४ | | | |
| ५ | | | |
| ६ | | | |
| ७ | | | |
| ८ | | | |
| ९ | | | |
| १० | | | |
| ११ | | | |
| १२ | | | |
| १३ | | | |
| १४ | | | |
| १५ | | | |
| १६ | | | |
| १७ | | | |
| १८ | | | |
| १९ | | | |
| २० | | | |
| २१ | | | |
| २२ | | | |
| २३ | | | |
| २४ | | | |
| २५ | | | |
| २६ | | | |
| २७ | | | |
| २८ | | | |
| २९ | | | |
| ३० | | | |
| ३१ | | | |
| ३२ | | | |
| ३३ | | | |
| ३४ | | | |
| ३५ | | | |
| ३६ | | | |
| ३७ | | | |
| ३८ | | | |
| ३९ | | | |
| ४० | | | |
| ४१ | | | |
| ४२ | | | |
| ४३ | | | |
| ४४ | | | |
| ४५ | | | |
| ४६ | | | |
| ४७ | | | |
| ४८ | | | |
| ४९ | | | |
| ५० | | | |
| ५१ | | | |
| ५२ | | | |
| ५३ | | | |
| ५४ | | | |
| ५५ | | | |
| ५६ | | | |
| ५७ | | | |
| ५८ | | | |
| ५९ | | | |
| ६० | | | |
| ६१ | | | |
| ६२ | | | |
| ६३ | | | |
| ६४ | | | |
| ६५ | | | |
| ६६ | | | |
| ६७ | | | |
| ६८ | | | |
| ६९ | | | |
| ७० | | | |
| ७१ | | | |
| ७२ | | | |
| ७३ | | | |
| ७४ | | | |
| ७५ | | | |
| ७६ | | | |
| ७७ | | | |
| ७८ | | | |
| ७९ | | | |
| ८० | | | |
| ८१ | | | |
| ८२ | | | |
| ८३ | | | |
| ८४ | | | |
| ८५ | | | |
| ८६ | | | |
| ८७ | | | |
| ८८ | | | |
| ८९ | | | |
| ९० | | | |
| ९१ | | | |
| ९२ | | | |
| ९३ | | | |
| ९४ | | | |
| ९५ | | | |
| ९६ | | | |
| ९७ | | | |
| ९८ | | | |
| ९९ | | | |
| १०० | | | |

INTRODUCTION

I. CRITICAL APPARATUS

Śingārārnavaçandrikā (ŚC) of Vijayavarṇī is being published for the first time from the only available MS. Dr A. N Upadhye to whose efforts I owe this MS. could not get any other MS. of Vijayavarṇī's work—perhaps it does not exist This MS on which the text is based, is in the Jaina Siddhānta Bhavana, Arrah, (Bihar) In Prasāstisangraha* Pt. K, Bhujabali Sastrī describes it

Manuscript No 231 Śingārārnavaçandrikā
Kha

Author ; Vijayavarṇī

Subject · Alankāra (poetics)

Language : Sanskrit

Length · 8 5" (21.6 cm), Breadth 7" (17.8 cm)
Condition Good, Manuscript Paper manuscript, No.
of lines per folio about 11, No of letters per line .
20 to 22

The MS. opens thus :

शृङ्गारार्णवचन्द्रिके अलकार

* Pages 73-76, published by Nirmal Kumar Jaina,
Secretary, Jaina Siddhānta Bhavana, Arrah. 1942

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका

श्री अनन्तनाथाय नम ॥ निर्विघ्नमस्तु ॥

जयति ससिद्धकाव्यालापपद्माकरेय

and ends with

***श्रवणत्रेलुगुलक्षेत्रनिवासि, वि. विजयचन्द्रेण जैनक्षत्रियेण इद
ग्रथ समाप्त लेखीति मगलमहा ॥ श्री ॥

Generally speaking, the condition of the MS. is good but, occasionally, we are faced with lacunae in it. Wherever possible I have filled up these gaps. I have corrected scribal errors; and the readings, about which I felt doubtful, I have noted in the footnotes. In some cases I have corrected the readings by referring to the passages in the books used by the author. I have spared no pains in presenting the text of ŚC as faithfully as was possible in the circumstances.

2. THE PERSONAL HISTORY OF VIJAYAVARNĪ

Nothing is known about the personal history of Vijayavarnī beyond what he has himself told us in the praśasti and the puspikā to his work¹ he was a disciple of Munīndra Vijayakīrti, a devout adherent of the doctrine of Syādvāda, propounded by the great Jinas. ²In the course of a literary discourse he was once asked

1 इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्रविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्ति-
मुनीन्द्रचरणाब्जचञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिराजवङ्ग-
नरेन्द्रशरदिन्दुसनिभकीर्तिप्रकाशके

2 स राजा काव्यगण्टीषु सभाजनविभूषित ।

अपृच्छद्द्वितीय नाम्ना कविताशक्तिभासुरम् ॥ I 19

It appears, Vijayavarnī was also known as Dvitiya.

INTRODUCTION

by King Kāmirāja of Bangavādī to explain the various aspects of poetics. At the King's request he composed Alaṅkārasaṅgraha called Śiṅgārāṇavacandukā (ŚC).

³ This work, while elucidating the different topics in poetics, sings the glory of King Kāmirāja through the examples with which he illustrates the different points.

⁴ In the introduction to his work he particularly refers to the poetry of Karnāta poets like Guṇavarman. This reference would lead us to believe that he had himself studied their poetry. A perusal of this SC would reveal that he had studied the standard works on poetics namely, those of Daṇḍī, Bhoja, Dhanañjaya, Mammata and the like. Vijayavarṇī was in personal association with King Kāmirāja. Naturally, his date depends on that of King Kāmirāja.

3 DATE OF KING KĀMIRĀJA

In his Praśasti the author gives the geneology of his patron, and according to Pt Bhujabali Sastri and Dr. Nemicandha Sastri, our author's information does not conflict with historical facts. Viranarasimha ruled at Bangavādī (1157 A. D.). He had a brother called

3 Vide footnote No 1, supra

4 गुणवर्मादिकर्नाटकवीरानां मूर्त्तिसचय ।
वाणोविनास देयात्ते रमिकानन्ददायिनीम् ॥ I 7

Pāṇḍyārāja Candraśekhara, the son of Vīranarasimha, ruled at Bangavādī (1157 A.D), He had a brother called Pāṇḍyārāja Candraśekhara, the son of Vīranarasimha, came to the throne in A. D 1208, and his younger brother Pāṇḍyappa, in A. D 1224 Vīthālādevī, their sister, was appointed regent in A. D. 1239 Then her son, called Kāmīrāja, came to the throne in A. D 1264⁶

Our author wrote his ŚC at the request of this King Kāmīrāja (name is spelt as Kamarāyā, Kāmīrāya and Kāmīrāya in the MS) Vijayavarnī must have, therefore, composed his ŚC in the last quarter of the thirteenth century (A. D)

A comparative study of the nearly common or corresponding passages between ŚC and Prafāpa-rudrayaśobhūśana (PRY), and ŚC and Alamkārasamgraha, however, raises doubts regarding the date of composition of Vijayavarnī's work. Dr Kane assigns PRY to the first quarter of the fourteenth century. Pandit Balakrishnamurti assigns Amītanandayogin to the thirteenth

5 Vide infra, Sources of ŚC

6 Vide Prasasti-samgraha (pp 76-78) edited by Pt K Bhujbali Sastri, Aīrah, 1942 and "दो अलकार ग्रन्थोकी पाण्डुलिपियाँ" by Dr Nemīcandra Sastri in Jaina-Siddhānta Bhāskara, Part XXIII, Kirana I, Dec 1963

INTRODUCTION

century, whereas C. Kuhnān Rājā assigns him to the beginning of the second half of the fourteenth century. The date of Amītānandayogin remains thus uncertain. A comparative study instituted by me leads me to believe that Vijayavarnī has much common with PRY and Alamkarasamgraha for the treatment of a few topics. In the present state of our knowledge the question of Vijayavarnī's date evades definite determination, and it is but right to keep it open till definite and conclusive evidence comes forth.

4 VIJAYAVARNĪ'S POETRY

In the introduction to his ŚC Vijayavarnī refers to himself as Kaviśaktibhāsurā⁷ and as 'Kaviśvara'⁸ and to his own work in glowing terms⁹. For his Kārikās he is deeply indebted to authoritative works on poetics and he expressly states, on a few occasions, that he has followed 'Pūrva-śāstra'. The illustrations and introductory stanzas are, however, his own. A few of these illustrations would appear to have been modelled on those found in his authorities. Considering his verses it is difficult to admit his claim to high poetic power or to the title 'Kaviśvara'. His poetry is rather

7 I 19

8 I 26

9 I 23-28

pedestrian and highly conventional. There is hardly anything which enlivens his ŚC. His ślokas are easy to understand. At handling elaborate metres he is not so adept. He is guilty at a number of places of the metrical defect called yatibhanga. He profusely uses expletives. Occasionally, we come across similes which are striking¹⁰, but the work, as a whole, has value rather for its subject-matter than for its literary merit.

5. THE TITLE OF THE PRESENT WORK

In the course of his introduction¹¹ to the present work the author tells us that at the request of King Kāmurāja he composed Alankāra-saṅgraha called ŚC. The colophon¹² refers to the title as ‘Śiṅgārārṇava-candrikā-nāmnī alankāra-saṅgrāhe’. From these references it is crystal clear that the author gives ‘Alankāra-saṅgraha’ as the general name to the work and ŚC as the distinguishing appellation. The name ‘Alankāra-saṅgraha’ consists of two words (1) alankāra and (2) saṅgraha. The word alankāra stands here

10 III I, IX 62

11 इत्थं नृपप्रार्थितेन मया लङ्कारसंग्रहः ।
क्रियते सूरिणा नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥ I 22

12 Vide colophon at the end of Chapters I, II, IX and X

विजयवर्णिविरचिते शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे

obviously not in its restricted sense of figures of speech but in its wider sense denoting all such factors as word and sense that should find place in poetry, rasa, bhāva, guṇa, vṛtti, rīti, śayyā, pāka alanikāras and dosas (which poet should avoid in his composition), in short, Sanskrit poetics Saṃgraha primarily means a collection but here it signifies a compendium¹³ or a brief exposition Alanikāra-saṃgraha therefore means 'A compendium or a brief exposition of Sanskrit poetics¹⁴', and metaphorically, the work dealing with it

According to some, saṃgraha comprises three parts, namely, uddeśa (simple enumeration), lakṣaṇa (definition) and parīksā (examination or exposition). The present work contains all the three.

The title ŚC is made up of three words 1 Śiṅgāra, 2 arnava and 3 candrikā The word śiṅgāra denotes one of the eight or nine rasas bearing that name, arnava means an ocean, and candrikā moonlight The whole title, therefore, means 'Moonlight to the ocean of Śiṅgāra¹⁵ The word candrikā¹⁶ at the end

13 सग्रहं सचित्रं ग्रहणं स्वोकारं सचयनमित्यर्थः । अथवा सक्षेपेण स्वरूपकथनम् ।

14 अलङ्काराणां सग्रहं सक्षेपेण स्वरूपकथनमित्यर्थः ।

15 शृङ्गारोऽर्णव एव तस्य चन्द्रिका प्रकाशिका इत्यर्थः ।

16 The words कोमुदी and चन्द्रिका convey this sense when they stand at the end of compounds Compare the titles तर्ककोमुदी, वैयाकरणसिद्धान्तकोमुदी, साख्यतत्त्वकोमुदी etc and रसचन्द्रिका, काव्यचन्द्रिका, नाटकचन्द्रिका, अलङ्कारचन्द्रिका, चमत्कारचन्द्रिका, etc.

of compounds means elucidation or throwing light on the subject treated. The author compares his work with *candrikā*—moonlight, which is so very lovely and delightful, and thereby suggests that it is a delight to read and study his work which is (implicitly claimed to be) so lucid in its method of composition and style.

The title may also be explained as “The work imparting special knowledge about poetics covering *śringāra-rasa* and allied topics”¹⁷

The work does not prominently treat of *śingāra* nor the author has anything new to say regarding *śingāra* as Bhoja had in his *Śingāraprakāśa*. The reason why *śingāra* finds a place in the title is probably this *Śingāra-rasa* is regarded as the prince (queen?) among sentiments (*rasarāja*). When this very essential and vital topic of poetics is mentioned in the title, it automatically follows that other, comparatively less important, topics of poetics are implied by it or covered under it.

6 A BRIEF SUMMARY OF THE CONTENTS OF ŚC

The work opens with a homage to Lord Jina, and goes on to describe some of the predecessors of King

17 शृङ्गारोऽर्णव एव तस्य चन्द्रिकेव (उच्छ्रययती-वर्धयन्ती) चन्द्रिका ।
शृङ्गाररसादि साहित्यशास्त्रविषयक विशिष्ट ज्ञान बोधयन्तीत्यर्थ ।

INTRODUCTION

Kāmirāja, the patron. The first chapter¹⁸ ~~mainly deals~~ with consequences ascribed to initial letters of any composition and to the metrical feet employed in it

The second chapter¹⁹ enumerates seven groups of poets and deals with fourfold sense and fourfold power of word

The third chapter²⁰ deals with Rasa, Bhāva and their varieties with illustrations of each and every type

The fourth chapter²¹ is a study of the types of hero and heroine and their friends and messengers and their rivals

The fifth chapter²² treats of ten Gunas.

The sixth chapter²³ makes a study of Rīti and its kinds

The seventh chapter²⁴ deals with Vr̥tti and its varieties.

The eighth chapter²⁵, which is the shortest of all, deals with the concepts śayyā of and pāka

-
- 18 Chapter I (vv 1-63) Varnaganaphala-nirṇaya
 - 19 Chapter II (vv 1-42) Kāvyaḡata-śabdārtha-niścaya
 - 20 Chapter III (vv 1-130) Rasabhāvanīścaya
 - 21 Chapter IV (vv 1-163) Nāyakabhedanīścaya
 - 22, Chapter V (vv 1-31) : Dasagunāniścaya
 - 23 Chapter VI (vv 1-17) Rītinīścaya
 - 24 Chapter VII (vv 1-16) Vīttinīścaya
 - 25 Chapter VIII (vv 1-10) Śayyā-pāka-niścaya

The ninth chapter²⁶, which is the longest of all deals with Arthālankāras

Lastly, the tenth chapter²⁷ treats of Dosas in a poetic composition and also of circumstances when they cease to be so.

7. SOURCES OF THE ŚC

A striking feature of this work is that all the examples given as illustrations of the different points, are composed by Vijayavarnī himself and go to glorify King Kāmīrāja. In this respect it resembles Vidyādhara's Ekāvalī (1285-1325 A D) Vidyānātha's PRY (1300-1325 A D).

As the work is composed in the decadent period of Sanskrit literature and as it deals with a scientific subject, poetics, on which authoritative treatises of masterminds were already in existence, it would not be fair on one's part to expect any originality or contribution to poetics from Vijayavarnī. Occasionally, he clearly states that his descriptions are in accordance with earlier authorities²⁸. A perusal of his work reveals

26 Chapter IX (vv 1-310) Alaukāraniścaya

27 Chapter X (vv 1-197) Dosagūṇa-miścaya

28 अत अतो कारणतोऽस्माभिरुच्यते रसलक्षणम् ।

पूर्वशास्त्रानुसारेण भावभेदविशेषितम् ॥ III 2

अतोऽगुणा प्रकीर्त्यन्ते पूर्वशास्त्रानुसारत ।

कामिराय नराधीश श्रूयता भवताधुना ॥ V 3

अन्ये विकल्पा द्रष्टव्या आक्षेपाणा विचक्षणै ।

मया शास्त्रानुसारेण दिग्मात्र सप्रदर्शितम् ॥ LX 174

INTRODUCTION

that he had carefully studied the authorities on poetics. The matter relating to the predictive character of the initial letters and metrical feet, which the author treats of in Chapter I, is generally described in works on metrics. Some early works on metrics are irretrievably lost but a few passages from such works are preserved in the works of later writers where they are quoted, perhaps directly from the original sources but mostly they appear at second hand, quoted from some writer who quotes them. Thus some ślokaś are quoted by Nārāyanabhalla in his commentary on Viṭṭarātnākara with the introductory remark : taduktam Bhāmahena²⁹. These ślokaś inform us of Varna-phala and Guna-phala. It is very doubtful if this Bhāmaha is the same man who wrote Kāvya-lankāra'. Nārāyanabhalla also quotes some passages describing the deities of Gaṇas and auspicious or inauspicious character of the initial Gaṇas with the introductory remark

अन्यैस्तु देवताफलस्वरूपाण्येषामुक्तानि—

It is the author of Alaukārsangraha and ŚC who have introduced this topic in works on poetics. In Chapter II the author gives a sevenfold classification of poets based on their taste or aptitude for a particular type of literary composition. This classification is

29 Vide appendix-C

somewhat different from the eightfold classification of poets given for the first time by Rājaśekhara in his Kāvya-mīmāṃsā³⁰. Whereas Rājaśekhara names the groups of poets and adds stanzas to illustrate the type of literary composition of each one of them, Vijayavarṇī gives a definition of each one of the groups of poets but does not illustrate the types of their literary composition—ŚC and Alankārasaṅgraha, however, agree in their classification and definition of groups of poets leading to the conclusion that one of them must have borrowed from the other³¹.

In the same chapter the author treats of the fourfold sense of words 1 Mukhyārtha with its four kinds ((i) Jāti (ii) Kriyā (iii) Guna and (iv) Dravya) 2 Lakṣyārtha 3 Gaunārtha and 4 Vyangyārtha, and the fourfold power of words : 1 Abhidhā 2 Laksanā (with its three kinds (i) Jahatī (ii) Ajahatī and (iii) Jahatyajahatī) 3 Gaunī and 4 Vyañjanā It is the Mīmāṃsakas who look upon Gaunī as a separate power of words³². This whole discussion is, generally speaking, based on Kāvya-prakāśa (Ullāṣas II and III)

30. Vide Appendix-C

31. Vide Appendix-D

32. गोणवृत्तिर्लक्षणातो भिन्नेति प्रभाकरा । Ratnāpana (p 44)

Vidyānātha, however, emphatically says गोणवृत्तिरपि लक्षणाप्रभेद एव । Pratāprudrayaśobhūšana (pp 44-45)

In Chapter III the author deals with Rasa and Bhāva and their divisions. He treats of nine Sthāyī-bhāvas, nine Rasas, Vibhāvas (Ālambana and Uddīpana), Anubhāvas, eight Sāttvika-bhāvas and thirty three Vyabhicārī (Sañcārī) bhāvas, and such details about Rasas as the primary and the derivative Rasas, (their inter relations), their harmonies and conflicts, their colours (vāna) and their presiding deities (Adhidevatā). He clearly acknowledges his indebtedness to ancient or earlier authorities on the subject³³. A study of his definitions of technical terms relating to Rasa-Bhāva and the like corroborates his statement. Two points, however, deserve special mention his description of the different factors relating to Śānta-Rasa is typically Jain³⁴ and is original, another remarkable point is that the author mentions Para-Brahma as the presiding deity of Śrngīra. In his celebrated commentary³⁵ on Nāṭya-śāstra Abhinavagupta writes

वीरो महेन्द्रदेव स्यात् बुद्ध शान्तोऽब्जजोऽद्भुत । इति शान्तवादिन
केचित् पठन्ति । दृष्टो जिन परोपकारैकपर प्रबुद्धो वा ।

From this statement it is clear that the author had not Abhinava-bhāratī before him but some other text where

33 अतः कारणतोऽस्माभिरुच्यते रसलक्षणम् ।

पूर्वशास्त्रानुसारेण भावभेदविशेषितम् ॥

—ŚC. III-3

34 III.109-112

35 Abhinavabhāratī Vol I p 299

Para-Brahman has been mentioned as its presiding deity. No early work on Alamkārasāstra which would be regarded as standard and well-known makes any reference to Para-Brahman as its presiding deity. Dr Raghavan states that "the Alamkārasarvasva of Harsopādhyāya (?), written for one Gopāladeva, makes the supreme spirit, Para-Brahman, as the Devatā of Śānta³⁶. We, however, do not know the exact date of this work which would have enabled us to determine the inter-relation between these two works. Alamkārasangraha of Amṛtānandayogin speaks of Para-Brahman as the presiding deity of Śānta-rasa. There is a close agreement between ŚC of Vijayavarṇī and Alamkārasangraha of Amṛtānandayogin in their treatment of some common topics from poetics³⁷. The dates of these two works as proposed by scholars³⁸ do not, however, permit us

36 The Number of Rasas (p 50) The Adyar Library, Adyar, 1940

37 See Appendix-D

38 For the date of Vijayavarṇī vide pages 2 and 3 supra. For the date of Amṛtānandayogin, vide Introduction to Alamkāra-sangraha (pp iv to vi) edited by Pandita Balakrishnamurti, Sri Venkatesvara Oriental Institute, Tirupati (1950) and Introduction to Alamkārasangraha (pp XXXVIII-XLIII) edited by V. Krishnamācharya and K. Rāmachandra Sarma (The Adyar-Library Series-No 70, 1949).

to state categorically that Vijayavarnī has ~~drawn~~ drawn upon Amrītānandayogin's work.

In Chapter IV the author deals with characters : the hero, the heroine and their types, the enemies of the hero and the Dūtī. A comparative study of this chapter and the second Prakāśa of Daśarūpaka reveals that Vijayavarnī is heavily indebted to Dhanamjaya in his treatment of the characters³⁹. He differs with Dhanamjaya on three points

1. Dhanamjaya speaks of three friends (Sahāyas) of the hero⁴⁰: 1. Pīthamarda (patākānāyaka), 2. Vīta, and 3. Vidūsaka. Vijayavarnī adds the fourth Nāgarika⁴¹ to the list

2. Dhanamjaya mentions three types of heroines⁴²: 1. Svīyā (= Svastri or Svakīyā), 2. Anyā (= Anyastrī or Parakīyā) and 3. Sādhāīanastri (Sādhāranā).

Vijayavarnī makes them four⁴³ by adding one more type, viz Anūdhā. He, however, says that according to one view, Anūdhā is parakīyā only and hence there are three types of heroines only.

39. Vide Appendix-C

40. Daśarūpaka II, vv 8-9 (ab)

41. ŚC IV vv 29-32

42. Daśarūpaka II, v15 (ab) and vv20 (cd)-22 (ab)

43. ŚC IV, vv 43-59

3. In Dhananjaya's view if absence is due to death the love sentiment cannot be present⁴⁴. Vijaya-
varnī advocates the view that Kaiunātinaka-vipralambha
can be present if one of the two, (the lover and his
beloved) passes away and the other laments his or her
death⁴⁵ Now, Vidyānātha⁴⁶ also speaks of four Sahāyas
of the hero but his list has Ceta and no Nāgarika.
Rudrata⁴⁷ and Dhananjaya⁴⁸ speak of two types of
Parakīyā or Anyasrī Kanyakā and Anyodhā Vijaya-
varnī mentions Parakīyā and Anūdhā (= Kanyakā)
separately and makes four types of heroines Of course,
he is fully aware of the views of Rudrata and Dhanan-
jaya that Anūdhā (= Kanyakā), too, is regarded as not
one's own (Parakīyā) Finally, in setting forth the
four kinds of Vipralambhasīngāra he has followed
Rudrata⁴⁹.

44 Daśarūpaka IV, vv 50-51 (ab) and vv 57-68

45 ŚC IV, v 103 and v 110

46 Pratāparudrayaśobhūṣana, Kāvyaṅprakaraṇa, v 40

47 परकीया तु द्वेषा कन्योद्धा चेति ते हि जायेते ।

—Kāvyālamkāra XII-30 (ab)

48 अन्यसौ कन्यकोद्धाच ।

—Daśarūpaka II-20 (c)

49 अथ विप्रलम्भनामा शृङ्गारोऽयं चतुर्विधो भवति ।

प्रथमानुरागमानप्रवासकरुणात्मकत्वेन ॥

—Kāvyālamkāra XIV-1

and,

करुणं स विप्रलम्भो यत्रान्यतरो म्रियेत् नायकयो ।

यदि वा मृतकल्पं स्यात्तत्रान्यस्तद्गतं प्रलपेत् ॥

—Kāvyālamkāra XIV-34

In Chapter V the author treats of Gunas. A careful and comparative study of the definitions of these ten Gunas with those given in the Kāvyaḍarśa reveals that Vijayavarnī closely followed Dandī⁵⁰, and occasionally Vāmana⁵¹. Vijayavarnī paraphrases Dandī's definitions⁵².

In Chapter VI the author treats of Rīti and its four kinds 1 Vaidarbhī 2 Gaudī, 3. Pāñcālī, and 4. Lāṭī.

- 50 Vijayavarnī's statement :
एते दशगुणा प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाषिता । —V-5(ab)
Unmistakably reminds us of Dandī's
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणा स्मृता ।—Kāvyaḍarśa 42 (ab)
- 51 Cf अथवा पदबन्धस्योज्ज्वलत्व कान्तिरुच्यते । —V-16 (ab)
and ओज्ज्वल्य कान्ति । ३. १. २५
बन्धस्योज्ज्वलत्व नाम यदसौ कान्तिरिति ।
—Kāvyaḍarśa-Sūtravṛtti
- 52 I give here only two examples :
(1) Cf श्रुतिचेतोद्वयानन्दकारिणा कोमलात्मनाम् ।
वर्णाना रचनान्यास सौकुमार्यं निरूप्यते ॥ —V 6
and, अनिष्टुराक्षरप्रायं सुकुमारमिहेष्यते ।
बन्धशोधित्यदोषोऽपि दर्शितं मर्बकोमले ॥
सुकुमारतयवैतदारोहति मता मन ।
—Kāvyaḍarśa I 69-71
(II) Cf. प्रयुक्तो लौकिकार्थोऽपि यथा भवति सुन्दर ।
सा कान्तिरुदिता मद्भिः कलागमविशारदैः ॥—V 15
and कान्तिं सर्वजगत्कान्तिं लौकिकार्थानतिक्रमात् ।
तच्च वार्ताभिधानेषु वर्णनास्वपि दृश्यते ॥
—Kāvyaḍarśa I 85

It is Rudrata⁵³ who for the first time added Lātī to the three well known Rītis set forth by Vāmana, Agnipurāna⁵⁴ and Jayadeva's Candrālōka⁵⁵ too speak of these four Rītis. In Bhoja's Sarasvatikanthābharana⁵⁶ the Rītis number six with the addition of Āvantikā and Māgadhī

The definition of Kīti given by the author is in agreement with the one set forth by Vidyānātha in his PRY⁵⁷. Vidyānātha, however, speaks of three Rītis only, omitting Lātī as has been done by Mammata.

53 Rudrata II 3-6 Vāmana distinguishes Rītis on the basis of qualities (Gunas) present whereas Rudrata distinguishes them on the basis of the use of compounds. Vijayavarnī clearly says that Rītis are based on the qualities possessed by words. In his definitions of Rītis, however, he follows these two principles

54 Chapter 340, vv I-4 Dr Raghavan corrects the text of the fourth stanza (vide Some Concepts of Alamkāra Śāstra, p 180, f n 1)

55 Mayūkhā VI 21-22

56 Pariccheda II, Kārikās 2-3

57 Cf. रीतिर्नाम गुणाश्लिष्टपदसघटना मता । —PRY. p 63
and माधुर्यादिगुणोपेतपदाना घटनात्मिका ।

—Śingārārnavaçandrikā VI-3

Vidyānātha's definition is, however, based on Vāmana's Sūtras 1, 2, 7-8.

INTRODUCTION

The definitions of the four Rītis as laid down in ŚC⁵⁸ and Alankārasaṅgraha are in close agreement. The definitions of the three Rītis are partly in agreement with those of Vāmana⁵⁹.

In Chapter VII the author treats of six Vrttis—1. Kaiśikī, 2 Ārabhatī, 3 Bhāratī, 4 Sāttvatī, 5. Madhyamā Kaiśikī and 6 Madhyamā Ārabhatī. These six Vrttis are first dealt with by Bhoja in his Sarasvatīkanthābharana, but as Śabdālamkāras (Chapter II. 34-38) and after him by Vidyānātha in his PRY (Kāvya prakaraṇa, pp 57-63) Vijayavarṇī's treatment of this topic bears remarkable resemblance to that of Vidyānātha's⁶⁰

In chapter VIII we find an exposition of the conception of Śayyā and Pāka. No doubt, the conception of Pāka is found in Vāmana's Kāvyaalamkārasūtra-vṛtti and Rājaśekhara's Kāvyaṁimāmsā, but the striking thing is that the definitions of Śayyā and Pāka as given by Vijayavarṇī are in close agreement with the corresponding ones in Vidyānātha's PRY⁶¹

58 Chapter VI, vv 5-7, 9 11 and 13
and Chapter V vv 9-12.

59 Kāvyaalamkārasūtravṛtti 1-2 11-13.

60 Vide Appendix-C

61 If it were accepted that Vijayavarṇī modelled his definitions of Sayyā and Pāka on those of Vidyānātha

पदानामानुगुण्य वान्योन्यमित्रत्वमुच्यते ।
यत् सा शय्या कलाशास्त्रनिपुणैर्विदुषा वरै ॥

—VIII 2

Cf या पदाना परान्योन्यसैत्री अय्येति कथ्यते ।
...अत्र पदविनिमयासहिष्णुत्वाद् बन्धस्य
पदानुगुण्यरूपा शय्या ।

—PRY p 67

आलम्ब्य शब्दमर्थस्य द्राक् प्रतीतिर्यतोऽजनि ।
स द्राक्षापाक इत्युक्तो बहिरन्त स्फुरद्रस ॥
आलम्ब्य शब्दमर्थस्य द्राक्प्रतीतिर्यतो न हि ।
स नालिकेरपाक स्यादन्तर्गण्ड (? गूढ) रसोदय ॥

VIII. 6-7.

द्राक्षापाक स कथितो बहिरन्त स्फुरद्रस ।
स नारिकेलपाक स्यादन्तर्गूढरसोदय ॥

PRY pp 67-69

In Chapter IX the author gives an exposition of 47 Arthālamkāras. Of these, he defines the first 33 Arthālamkāras, including 33 divisions of Upamā and 20 divisions of Rūpaka, after Dandī's Kāvyaadarśa⁶². The rest of the Arthālamkāras are possibly defined by the author keeping in view Rudrata's Āryās dealing with them

we would have to reconsider the date of composition of ŚC

62 Vide Appendix-C.

In Chapter X the author treats of Kāvya-dosas viz; Pada-dosas, Vākya-dosas, Artha-dosas and Rasa-dosas, and also describes the circumstances in which the Dosas cease to be so His treatment of Kāvya-dosas clearly reveals his considerable indebtedness to Mammata⁶³ who treats of the Dosas in his Kāvya-prakāśa (Ullāsa VII) Mammata has utilised earlier writers on this topic and added new Dosas which he himself has discovered Vijayavarnī follows Mammata's classification of Dosas in toto.

8 ACKNOWLEDGEMENT

In conclusion, I acknowledge my deep indebtedness to Dr. A N Upadhye, M A., D Litt, Dean, Faculty of Arts, Shivaji University, Kolhapur, at whose suggestion this work of editing SC from a single manuscript was entrusted to me It is he who gave me the Ms. and requested me to edit this work. He has all along been taking kindly interest in the progress of my work and its publication I can never adequately express in words what I owe to Pandit Balacharya Khuperkar Shastri who has taken keen interest in this work and made valuable suggestions for emending the text as

63 Vide Appendix-C

correctly as possible. It was, indeed, my proud privilege to spend hours together with him discussing matters relating to Sanskrit poetics in general and the text in particular. I offer my warmest thanks to my friend Professor G S. Bedagkar, who kindly went through the Introduction and made valuable suggestions to improve it. However, for whatever imperfections still left in the work, I am entirely responsible.

The Author acknowledges his indebtedness to the Shivaji University, Kolhapur, for the grant-in-aid received by him from the University, towards the cost of Publication of this book.

Rajaram College, }
 KOLHAPUR, }
 August 25, 1966. }

V M KULKARNI

DETAILED TABLE OF CONTENTS

Chapter I

Varna-Gaṇa-Phala-Nirṇaya

[A Study of (Initial) Letters and Metrical Feet and
their Promise]

Verses

- 1 Homage to Lord Jina.
- 2-3 Homage to Śāradā and Sarasvatī.
- 4-5 Homage to Vijayakīrti, the author's Guru.
- 6 Victory to Good Men.
- 7 Tributes to Karnāṭaka Poets like Gunavarman.
- 8-18 A brief description of Kadamba Kings ·
Vīranarasimha, Pāṇḍyarāja—his brother,
Rājaśekhara, the son of Vīranarasimha,
Kāmirāja, the Maternal nephew of Pāṇḍya-
vanga and contemporary of the author who
ruled over Vanga (Banga)-bhūmi with
its Capital at Vanga (Baṅga)-vātī
- 19-21 Kāmirāja requested the author when
meeting in a Literary Club to explain the
nature of poetry and allied topics.

- 22-28 At the King's request the author composed this work called Śingārārṇava-Candrikā.
- 29-32 Kāvya (Literature) and its kinds :
Padya (Verse), Gadya (Prose) and Miśra (Mixed), these three varieties are then defined and subdivided into nine divisions on the basis of their being Uttama, Madhyama or Jaghanya. These three terms are then defined.
- 33 The poem should begin with a prayer, paying homage or in addition invoking a blessing, or an indication of the subject-matter.
- 34-35 The present composition begins with varna-gana-śuddhi, which contributes to the good of the poet and the hero. Its absence would bring disastrous consequences to the poet as well as the hero.
- 36-45 Initial alphabets and what they promise.
- 46-47 A poem should not begin with any conjunct except Kṣa for a śuddha letter when conjoined with another letter turns asuddha and brings evil consequences.
- 48-62 (Initial) metrical feet and what they promise, the nature of a long and a short

syllable, of the eight-fold metrical feet to be employed in Varṇavṛttas, and five metrical feet, each consisting of four mātrās to be employed in Mātrāvṛttas and assigning of the Devatās to each and every one of the metrical feet

- 63 Conclusion "May the fame of King Kāmīrāja shine bright."

Chapter II

Kāvya-gata-sabdārtha-niscaya

[A Study of Words and Senses that constitute Poetry]

- 1-2 Alternative definitions of a poet
- 3-7 Seven Types of Poets and their definitions
- 3 defines a Raucika poet
- 4 defines a Vācika poet as well as an Ārtha one
- 5 defines a Śilpika poet as well as a Mārdavānuga one.
- 6-7 define a Viveki poet as well as a Bhūsaṅārthī one.
- 8-9 The Sense of Sentences composed by poets is fourfold :

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका

1. Mukhyārtha, 2 Laksyārtha, 3. Gaunārtha, and 4. Vyangyārtha.
- 10-12 definition of Mukhyārtha, its fourfold classification based on · 1. Jāti; 2. Kriyā; 3 Guna, and 4. Dravya, and illustrations.
- 13-21 Definition of Laksyārtha, Laksanā and its three varieties
1. Jahallaksanā, 2. Ajahallaksanā and 3. Jahatyajahatī, and their illustrations.
- 22-23 Definition of Gaunārtha and its illustrations.
- 24-25 Definition of Vyaṅgyārtha or Dhvani and its illustration
- 26 Informs us that Śabda-śakti is fourfold :
1 Abhidhā, 2. Laksanā, 3. Gauṇī, and 4. Vyañjanā
- 27-31 deal with the causes (Niyāmakas) of the apprehension of a particular meaning when there is no determination or decision regarding the meaning of a word. These are
1 Saṁyogah (Conjunction); 2. Viprayogah (Disjunction), 3. Virodhitā (Antagonism or Hostility); 4 Sāhacaryam (Association), 5. Kāla (Time), 6 Arthah (Purpose or Motive), 7. Prakaranam (Context);

8. Lingam (Special attribute o. ~~lingam~~ tic), 9. Śabdāntarasannidhih (Proximity of another word), 10. Sāmartyam (Capability or Power), 11. Aucityam (Propriety or Fitness), 12. Vyaktih (Gender), 13. Desah (Place), 14. Svarādayah (Accent and others).
- 32-40 (ab) illustrate first thirteen causes (Niyāmakas).
- 40(cd)-41. Gānasvara is of no avail in poetry although it helps in determining the sense of a word in Vedas. Ādi (in-Svarādi) includes Cestādi. Its illustrations should be found by the wise
42. Conclusion "May the valour of Kings Vīraṁsīmharāya ever shine in all its glory"

Chapter-III

Rasa-bhāva-niscaya

[A Study of Rasas and Bhāvas]

1. A poem though having flawless syllables and metrical feet, words and senses, is not liked if it be devoid of Rasa
2. Hence the author undertakes in this Chapter an exposition of Rasas and Bhāvas.

- 3 Definition of Sthāyibhāva
- 4 Sthāyibhāva is ninefold 1 Rati, 2 Hāsa; 3 Śoka, 4 Kopa, 5. Utsāha, 6. Bhaya, 7. Jugupsā, 8. Vismaya, and 9 Śama
- 5 Definition of Rasa
- 6-7 Rasa is nine-fold: 1. Śrngāra, 2. Hāsya, 3 Karuna, 4 Raudra; 5. Vīra, 6 Bhayānaka, 7 Bībhatsa, 8. Adbhuta, & 9 Śānta.
- 8 Definition of Śrngāra-rasa.
- 9 Definition of other Rasas
- 10 In the case of poetic compositions Rasa is experienced by appreciative readers or hearers only.
- 11 In the case of dramatic compositions it is experienced by spectators.
- 12 Definition (or etymological explanation) of Bhāva.
- 13 Bhāva is four-fold, 1. Vibhāva, 2 Anubhāva, 3 Sāttvika; and 4. Vyabhicāri.
14. Definition of Vibhāva which is two-fold : Ālambana and Uddīpana
- 15 Definition of Ālambana and Uddīpana Vibhāvas
- 16 Definition of Anubhāvas.
- 17 Definition of Sāttvika-bhāvas

- 18 Sāttvika-bhāvas are eight-fold 1. Svēda,
2. Kampana (= Vepathu) 3 Romāñca;
4 Laya (= Pralaya), 5. Stambha, 6 Vivar-
ṇatā (= Vaivarṇya), 7. Vikārasvaratā
(= Svarabheda, Vaisvarya) and 8. Aśru.
- 19 Definition of Vyabhicāri-bhāvas
- 20-22 List of thirty-three Sañcāri (= Vyabhicāri)
bhāvas
1. Śankā, 2. Glāni, 3 Nirveda, 4 Jādyā;
5 Harsa, 6 Dhrti; 7. Śrama, 8. Dainya,
9 Augrya, 10. Trāsa, 11. Cintā, 12 Īrsyā,
13. Amarsa , 14. Garva , 15 Mada ;
16.Smṛti, 17. Marana, 18 Supti, 19 Nidrā,
20 Avabodha , 21 Vrīḍā , 22. Visāda ,
23. Vyādhi, 24. Apasmāra, 25. Cāpalya,
26.Mati, 27. Moha, 28 Autsukya, 29. Ava-
hittha, 30. Ālasya, 31. Vega, 32. Tarka,
and 33. Unmāda
- 23 In an actor Rasa is imagined to be present,
but in a spectator it is really present.
- 24 In this world Rasikas enjoy Rasas in accor-
dance with their own Karman
- 25 Having described the different factors, in a
general way, of the different Rasas the
author now proposes to describe particularly
the factors relating to Śrngāra-rasa.

- 26-35 Various factors relating to Śingāra-rasa are set forth in detail
- 36 Śingāra is two-fold 1. Sambhoga & 2. Vipralambha
- 37-38 Definition of Sambhoga-Śingāra and its illustration
- 39 Sambhoga-Śingāra is two-fold 1. Pracchanna and 2. Prakāśa, their definitions
- 40 Vipralambha-Śingāra is four-fold 1. Pūrvānurāga ; 2. Māna , 3. Pravāsa , and 4. Karuṇa.
- 41 Sambhoga and Vipralambha have reference to lovers in union and lovers in separation respectively.
- 42-43 Ten Kāmāvasthās : 1. Nayana-prīti , 2. Manasah sakti, 3. Saṁkalpa, 4. Jāgara, 5. Tanutā, 6. Visaya-dvesa, 7. Lajjāvināśana, 8. Moha, 9. Mūrcchana, and 10. Marana.
- 44-45 Definition of Caksuh-prīti (=Nayana-prīti) and its illustration.
- 46-47 Definition of "Manasah sakti" and its illustration
- 48-49 Definition of Saṁkalpa and its illustration
- 50-51 Definition of Jāgara
- 52-53 Definition of Tanutā and its illustration

DETAILED TABLE OF CONTENTS, ३१

- 54-55 Definition of Visaya-dvesa and its illustration.
- 56-57 Definition of Trapānāśa (= Lajjānāśa) and its illustration
- 58-59 Definition of Moha and its illustration
- 60-61 Definition of Mūrcchā and its illustration.
- 62-63 Definition of Marana and its illustration.
- 64 Definition of Hāsya-rasa
- 65-68 Factors relating to Hāsya-rasa are set forth in detail.
- 69-70 Hāsya-rasa is three-fold Uttama, Madhyama and Jaghanya: Smṛta and Hasita belong to Uttama category, Vihasita and Upahasita to Madhyama category, and Apahasita and Atihasita to Jaghanya category
- 71-72 (ab) Definitions of these types of Hāsya.
- 72 (cd)-73 Illustration of Hāsya-rasa
- 74-75 (ab) Definition of Karuna-rasa which is two-fold: born of Istanāśa, and 2 Anistāpti
- 75(cd)-77 Factors relating to Karuna-rasa are set forth in detail
- 78-79 Illustrations of two-fold Karuna-rasa
- 80 Definition of Raudra-rasa, its two types
1. Born of Mātsarya (jealousy) and 2 Born of Dvesa (Hatred)

- 81-83 Factors relating to Raudra-rasa are set forth in detail.
- 84-85 Illustrations of two-fold Raudra-rasa.
- 86-87 (ab) Definition of Vīra-rasa and its three types 1. Dānavīra ; 2. Dayāvīra and 3. Yuddha-vīra
- 87(cd)-v90 Factors relating to Vīra-rasa are particularly set forth.
- 91-93 Illustrate the three types of Vīra-rasa.
- 94 Definition of Bhayānaka-rasa.
- 95-97 Factors relating to Bhayānaka-rasa.
- 98 Illustration of Bhayānaka-rasa.
- 99 Definition of Bībhatsa-rasa and its two types, based on factors causing 1. Jugupsā and 2 Vairāgya.
- 100-102 Factors relating to Bībhatsa-rasa.
- 103-104 Illustrations of the two-fold Bībhatsa-rasa.
- 105 Definition of Adbhuta-rasa.
- 106-107 Factors relating to Adbhuta-rasa.
- 108 Illustration of Adbhuta-rasa
- 109 Definition of Śānta-rasa
- 110-112 Factors relating to Śānta-rasa.
- 113 Illustration of Śānta-rasa
- 114 The author states he has finished defining and describing (and illustrating) Rasa, its

Kinds and different factors relating to different Rasas

115-116 Now, the author directs the King to listen to his expóition of "The Colours of Rasas", "The Présiding Deities of Rasas", The Cause and effect, relations between the primary and secondary Rasas, Antagonism between the Rasas and Absence of Antagonism between some Rasas

117 Mentions the colour and deity of Śrngāra-rasa

118 Mentions the colour and the deity of Hāsya-rasa

119 Mentions the colour and the deity of Karuna-Rasa.

120 Mentions the colour and the deity of Raudra-rasa

121 Mentions the colour and the deity of Vira-rasa

122 Mentions the colour and the deity of Bhayānaka-rasa

123 Mentions the colour and the deity of Bībhatsa-rasa

124 Mentions the colour and the deity of Adbhuta-rasa

- 125 Mentions the colour and the deity of Śānta-rasa
- 126 States that Hāsya, Karuṇa, Adbhuta, and Bhayānaka Rasas are produced from Śṛṅgāra, Raudra-Vīra and Bībhatsa respectively
- 127 Śānta-rasa is not produced from any other Rasa. No other Rasa is to be found in this World.
- 128-129 Bībhatsa-, Vīra-, Adbhuta and Karuṇa-Rasas are opposed to Śṛṅgāra-Bhayānaka-, Raudra- and Hāsya-Rasas, respectively Śānta-rasa is neither favourable nor opposed to any other Rasa
- 130 Conclusion: "May the fame of King Nṛsiṃha ever shine bright"

Chapter IV

Nāyaka-bheda-niscaya

[A Study of the Types of Hero—and of Heroine]

- 1-2 Since Rasas and Bhāvas are impossible to be met with in this world in the absence of Netṛ or Nāyaka (and Nāyikā) the author attempts in this Chapter an exposition of the Types of Hero and of Heroine giving their definitions and characteristics

- 3-4 Enumeration of the qualities of a Hero
- 5-6 A person possessed of these qualities is called a Hero. He is of four types :
1. Dhīrodātta; 2. Dhīra-lalita, 3. Dhīra-Śānta; and 4. Dhīroddhata.
- 7- 8 Definition of Dhīrodātta and his illustration.
- 9-10 Definition of Dhīra-lalita and his illustration
- 11-12 Definition of Dhīra-Śānta and his illustration
- 13-14 Definition of Dhīroddhata and his illustration
- 15 These four types of Hero could give rise to any of the nine Rasas in accordance with their state of mind
- 16-17 Every one of these four types of hero could be again, four-fold : (this classification is based on the attitude of the heroes to women in love) · 1. anukūlā, 2 śātha; 3. dhrsta, and 4 daksina
- 18-19 Definition of Anukūla and his illustration
- 20-21 Definition of Śātha and his illustration
- 22-23 Definition of Dhrsta and his illustration
- 24-26 Definition of Daksina and his two illustrations
- 27-28 These four types are applicable to each class of hero in love, there are sixteen possible kinds of hero, and further, each of these may be a high-class, middle class or inferior

- person Thus, in all, there may be forty-eight types of hero in love
- 29 enumerates four upanāyakas who help these heroes; 1 Vidūsaka, 2. Pītha-marda, 3 Viṭa and 4. Nāgarika.
- 30 defines Vidūsaka.
- 31 defines Pīthamarda
- 32 defines Viṭa and Nāgarika
- 33 defines a Pratināyaka (the enemy of the hero)
- 34-35 enumerate a set of eight special excellences springing from their character (Sāttvika) which these heroes possess in their youth They are 1. Tejas, 2. Vilāsa, 3. Mādhurya; 4. Śobhā, 5. Sthairya, 6 Gabhīratā (= Gāmbhīrya), 7 Audārya, and 8. Lalita
- 36 defines Tejas.
- 37 defines Vilāsa
- 38 defines Mādhurya.
- 39 defines Śobhā and Sthiratva (= Sthairya)
- 40 defines Gāmbhīrya.
- 41 defines Audārya.
- 42 defines Lalita.
- 43 The author now proposes to define and treat of the Types of Heroine.
- 44 Definition of heroine and her four types

- 45 These (four types of heroine) are :
 1. Svakīyā, 2. Parakīyā, 3 Anūdhā and
 4 Sādhāraṇa, according to some Anūdhā
 is Parakīyā only, hence there are only three
 types of heroine.
- 46 Definition of Svakīyā and Anyā.
- 47-48 Description of Svīyā (=Svakīyā) and her
 excellences
- 49 Illustration of Svīyā
- 50 Definition of Anūdhā.
- 51 Illustration of Anūdhā.
- 52-53 According to some Parakīyā should be trea-
 ted as Anūdhā for there is very little differ-
 ence between the two . Anūdhā, who is
 herself fallen in love, desires the company
 of her hero; Parakīyā approaches the hero
 at the behest of her Sakhī. According to
 some others, however, there is absolutely no
 difference between the two
- 54-55 "Parakīyā is a woman, may be married or
 unmarried, who is not the mistress of her-
 self. An amour with a married woman may
 not form the subject of the dominant senti-
 ment in the play but that with a maiden
 may occur as an element in the principal
 or the secondary action."

- 56 Illustration of Princesses cherishing love for Rāyavanga.
- 57 defines Sādhārana Nāyikā
- 58 She should accept the rich as lover and avoid the poor.
- 59 Illustration of such Nāyikās
- 60 The hero's wife may be 1 mugdhā (inexperienced), 2 madhyā (partly experienced) and 3 pragalbhā (fully experienced and bold)
- 61-62 define and illustrate Mugdhā
- 63-64 define and illustrate Madhyā.
- 65-66 define and illustrate Pragalbhā
- 67 enumerates three types of Madhyā Nayikā
- 68-69 Definition and illustration of Dhīrā Madhyā.
- 70-71 Definition and illustration of Adhīrā Madhyā.
- 72 The heroine who is fully experienced and bold is again of three kinds . 1. dhīrā; 2. adhīrā, and 3 dhīrādhīrā
- 73-74 Definition of Pragalbhā-dhīrā.
- 75-76 Illustrations of Pragalbhā-dhīrā.
- 77-78 Definition and illustration of adhīrā-pragalbhā
- 79-80 Definition and illustration of dhīrādhīrā-pragalbhā.

- 81 Madhyā who is of three types is, again, classified into Jyesthā (Senior) and Kanisthā (Junior); thus Madhyā is of six kinds.
- 82 Similarly, Pragalbhā too, is of six kinds.
- 83 Illustration of Jyesthā and Kanisthā.
- 84-86 After having defined heroines and their types the author now treats of the heroine's eight different relations to her lover 1 Svādhīnapatikā, 2 Vāsikasajjikā (vāsakasajjā), 3 Kalahāntarītā, 4. Vipralabdhā, 5. Virahotkanthitā; 6 Prositabhartikā, 7 Khanditā and 8. Abhisārikā.
- 87-88 Definition and illustration of Svādhīnapatikā.
- 89-90 Definition and illustration of Vāsikasajjikā (= Vāsakasajjā).
- 91-92 Definition and illustration of Kalahāntarītā.
- 93-94 Definition and illustration of Vipralabdhā.
- 95-96 Definition and illustration of Virahotkanthitā
- 97-98 Definition and illustration of Prositabhartikā
- 99-100 Definition and illustration of Khanditā.
- 101-102 Definition and illustration of Abhisārikā
- 103-104 Vipralambha-śiṅgāra and its four kinds .
1 pūrvānurāga 2. māna; 3 pravāsa and
4 karuna.

- 105 Definition of Pūrvānuāga.
- 106 Definition of māna and of Pravāsa
- 107 Definition of Karuna
- 108 Māna and Pravāsa (vipralambha) śingāra have reference to Khaṇḍitā and Prostitapriyā.
- 109 Pūrvānuāga (vipralambha) śingāra has reference to kalahāntarītā vipralabdā and virahotkanthitā
- 110 Karuṇātmaka (vipralambha)—śingāra refers to a woman mourning the death of her husband, or to any one in bereavement.
- 111 The heroine's (female) messenger may be a friend (sakhī), a slave (dāsi), a nun (linginī), a neighbour (prativesīnī), a foster-sister (dhātīeyī), an artist (śilpikā) or a workwoman (kārū) or self.
- 112 Illustration of a messenger.
- 113 The heroines described above, possess twenty excellences, springing from their character, when they are in the prime of youth
- 114-116 These excellences are 1. bhāva, 2 hāva, 3 helā, 4. śobhā, 5 kānti, 6 dīptikā (= dīpti), 7. madhuratva (= mādhurya), prāgalbhya (= prāgalbhatā), 9. vadānyatā = (= audārya), 10 dhairya, 11. līlā,

- 12, vilāsa, 13, vicchitti, 14 vibhrama,
 15 kilakiñcita, 16.mottāyita, 17. kuttamita,
 18 bibboka, 19 lalita, and 20 vihrta.
117. of these twenty, the first three are physical;
 the next seven are alamūkitis; and the remain-
 ing ten are svābhāvika (svabhāvaja)
- 118-120 Definition (and description) of bhāva and
 its illustration
- 121-122 Definition of hāva and its illustration.
- 123-124 Definition of helā and its illustration
- 125-126 Definition of śobhā and its illustration
- 127-128 Definition of kānti and its illustration.
- 129-130 Definition of dīpti and its illustration.
- 131-132 Definition of mādhyurya and its illustration.
- 133-134 Definition of pragalbhatā and its illustration.
- 135-136 Definition of audārya and its illustration.
- 137-138 Definition of dhairya and its illustration
- 139-140 Definition of līlā and its illustration
- 141-142 Definition of vilāsa and its illustration
- 143-144 Definition of vicchitti and its illustration
- 145-146 Definition of vibhrama and its illustration.
- 147-148 Definition of kilakiñcita and its illustration.
- 149-152 Alternative definitions of mottāyita and its
 illustrations
- 153-154 Definition of kuttamita and its illustration
- 155-156 Definition of bibboka and its illustration

- 157-158 Definition of *lalita* and its illustration.
- 159-160 Definition of *vihiṭa* and its illustration
- 161 The hero's good qualities like modesty, etc and a set of eight special excellences have been described. The author refrains from quoting examples but suggests that the wise should find them out for themselves.
- 162 The author states excellences like *bhāva*, *hāva*, and so on, are described with reference to heroines, however, illustrations of these excellences may suitably be found even in clever heroes.
- 163 Conclusion. The author pays tributes to King *Vīramśiṃha* for his eminence as a noble and exalted hero.

CHAPTER V

Daśa-guṇa-niścaya

[A Study of Ten Guṇas]

- 1-3 A poetic composition, devoid of *Guṇas*, is worthless. The author, therefore, following the authoritative works on poetics describes these *Guṇas* and requests King *Kāmirāja* to listen to his exposition.

- 4-5 There are ten Gunas which are proclaimed as the Ten Prāṇas (of poetic styles)
 1. Sukumāratva (= Saukumārya), 2 Audārya, 3 Ślesa, 4. Kānti, 5. Prasannatā (= Prasāda), 6 Samādhi, 7 Ojas, 8. Mādhurya, 9 Arthavyakti, and 10 Sāmyaka (= Samatā).
- 6-7 Definition of Saukumārya and its illustration
- 8-10 Alternative definitions of Audārya and its illustration
- 11-12 Definition of Ślesa and its illustration
- 13-14 Alternative definition of Ślesa and its illustration
- 15-17 Alternative definitions of Kānti and its illustration
- 18-19 Definition of Prasannatā (= Prasāda) and its illustration
- 20-22 Alternative definition of Samādhi and its illustration
- 23-24 Definition of Ojas and its illustration
- 25-26 Definition of Mādhurya and its illustration.
- 27-28 Definition of Arthavyakti and its illustration
- 29-30 Definition of Samatā and its illustration
- 31 Conclusion "May the King Rāyavangendra, find delight in works of Mahākavis, bright with these Gunas."

CHAPTER VI

Rīti-niscaya

[A Study of Rīti]

- 1 Poetry devoid of Rīti is not approved of by connoisseurs
- 2 Hence the author defines (and describes) Rīti and its kinds and urges the King to listen to them attentively.
- 3-5 Set forth the nature and definition of Rīti, and its four kinds : 1. vaidarbhī, 2. gaudikā (= gaudī), 3 lātī and 4 pāñcālī
- 6-8 Definition of Vaidarbhī and its illustration.
- 9-10 Definition and illustration of Gaudī.
- 11-12 Definition and illustration of Pāñcālī
- 13-14 Definition and illustration of Lātī
- 15 Śrīngāra-, Karuna, Śānta, and Hāsya—these Rasas are imbued with sweetness The remaining five Rasas are marked by Ojas-vigour.
- 16 All the nine Rasas are possessed of the quality called “lucidity”. The poet skilled as he is, should employ the remaining seven Gunas according to need.
- 17 Conclusion : “May the King—the royal

Swan—sport in the lake of kāvya dotted by groups of lotuses.

CHAPTER VII

Vṛtti-niscaya

[Nature of Vṛtti—Manner or Style]

- 1-2 Readers do not like poetry if it is devoid of Vṛtti Vṛtti is, therefore, defined and its varieties too, are explained and illustrated.
- 3 Defines Vṛtti and enumerates its varieties .
1. kaiśikī, 2. ārabhatī, 3. bhāratī and
4. sāttvatī
- 4 defines kaiśikī.
- 5 defines ārabhatī.
- 6 defines bhāratī
- 7 defines sāttvatī.
- 8-9 Nature of Rasas.
- 10 illustrates kaiśikī.
- 11 illustrates ārabhatī
- 12 illustrates bhāratī.
- 13 illustrates sāttvatī.
- 14 Madhyamā Kaiśikī is suited to all Rasas
- 15 Madhyamā ārabhatī is suited to all Rasas
The author then brings out the difference between Vaidarbhī and other Rītis on the

one hand and Kaiśikī and others on the other hand, and defines four kinds of Sandarbha.

- 16 Conclusion . "May the fame of King Nādañjanātha endure for long

CHAPTER VIII

Śayya-pāka-niscaya

[Nature of Śayyā and Pāka]

- 1-3 Śayyā
- V1 Śayyā is essential to any literary work.
- V2 defines śayyā as "Mutual Suitability of Words" or "The mairī of Words."
- V3 Illustrates Śayyā.
- 4-9 Pāka
- 4 A poetic composition devoid of pāka is not liked by any one
- 5 defines Pāka as "profundity of fourfold meaning-sense, and speaks of two kinds of pāka . 1. Drāksā and 2. Nālikera.
- 6 defines Drāksā-pāka.
- 7 defines Nālikera-pāka.
- 8 illustrates Drāksā pāka
- 9 illustrates Nālikera-pāka.
- 10 Conclusion

CHAPTER IX

Alamkāra-nirṇaya

[The Nature of Alamkāras]

- 1 A poem devoid of Alamkāras does not look graceful
- 2-5 Alamkāras are the source of poetic charm, are of two kinds depending on śabda and artha (Sound and Sense, Word and Sense) Śabdālamkāras are fourfold: Yamaka, 2. Citra, 3. Vakrokti, 4 Anuprāsa, Arthālamkāras are, however, manifold such as Svabhāvokti.
- 6 request to King Śrīrāyavanga to listen to alamkāras
- 7 Leaves aside śabdālamkāras and defines arthālamkāras.
- 8-13 enumerate 47 arthālamkāras ,
- 14-22 Svabhāvokti or Jāti with its varieties and illustrations
- 14 Svabhāvokti
- 15 Jāti (Sakriya or Niskriya Vastu)
- 16-17 Sakriya
- 18 Niskriya

- 19-22 fourfold Jāti based on Jāti, Kriyā, Guṇa and Dravya.
- 23-64 Upamā
- 23 Upamā
- 24 Dharmopamā
- 25 Vastūpamā
- 26 Viparyāsopamā
- 27 Anyonyopamā
- 28 Niyamopamā
- 29 Anvyamopamā
- 30 Samuccayopamā
- 31 Atiśayopamā
- 32 Utpraksopamā
- 33 Adbhutopamā
- 34 Mohopamā
- 35 Samśayopamā
- 36 Nirnayopamā
- 37 Ślesopamā
- 38 Samtānopamā
- 39 Nindopamā
- 40 Praśaṁsopamā
- 41 Ācikhyāsopamā
- 42 Virodhopamā
- 43 Pratishedhopamā
- 44 Catūpamā
- 45 Tatyākhyānopam.

DETAILED TABLE OF CONTENTS.

- 46 Asādhāraṇopamā
- 47 Abhūtopamā
- 48 Asambhāvitopamā
- 49 Bahūpamā
- 50 Vikriyopamā
- 51 Mālopanā
- 52 Ekevaśabdā Vākyārthopamā
- 53 Anekevaśabdā Vākyārthopamā
- 54 Prativastūpamā
- 55 Tulyayogopamā
- 56 Hetūpamā
- 57-61(ab) Upamādosas
- 61(cd)-62 declare that Upamā occurs when there is intention on the part of the Speaker to refer to Dharma only
- 63-64 enumerate or list words which are expressive or suggestive of Upamā.
- 65-86 Rūpaka
 - 65 Definition of Rūpaka
 - 66 Samastarūpaka
 - 67 Vyasta-rūpaka
 - 68 Samasta-Vyasta-rūpaka
 - 69 Sakala-rūpaka
 - 70 Avayava-rūpaka
 - 71 Avayavi-rūpaka

- 72 Ekāvayava-rūpaka (Dvyavayava-rūpaka,
tryavayava-rūpaka)
- 73 Yukta-rūpaka
- 74 Ayukta-rūpaka
- 75 Viṣama-rūpaka
- 76 Saviśesana-rūpaka
- 77 Viruddha-rūpaka
- 78 Hetu-rūpaka
- 79 Upamā-rūpaka
- 80 Vyatireka-rūpaka
- 81 Āksepa-rūpaka
- 82 Samādhāna-rūpaka
- 83 Rūpaka-rūpaka
- 84 Tattvāpahnuti-rūpaka
- 85-86 The author states that 33 divisions of Upamā and 20 divisions of Rūpaka have been described. The divisions of these two Alamkāras are infinite. Only a few of them are illustrated here.
- 87-90 Āvṛtti
- 87 Āvṛtti and its three varieties
- 88 Arthāvṛtti
- 89 Padāvṛtti
- 90 Ubhayāvṛtti
- 91-97 Hetu
- 91 Definition of Hetu

- 92 Hetu-alaṅkāra is manifold being based on
the statement of Kāraṇa or Jñāpaka-hetu
- 93 Nirvartyakāravāsaya-hetu
- 94 Abhāvarūpa-nirvartyavāsaya-hetu
- 95 Vikārya-vāsaya-kāraka-hetu
- 96 Prāpyavāsaya-kāraka-hetu
- 97 Jñāpaka-hetu
- 98-118 Dīpaka
- 98 Definition of Dīpaka
- 99 Ādivartī-jātīpada-dīpaka
- 100 Ādivartī-Kriyāpada-dīpaka
- 101 Ādivartī-guṇapada-dīpaka
- 102 Ādivartī-dravyapada-dīpaka
- 103 Adivartī-Samjñāpada-dīpaka
- 104 Madhyavartī-jātīpada-dīpaka
- 105 Madhyavartī-Kriyāpada-dīpaka
- 106 Madhyavartī-guṇapada-dīpaka
- 107 Madhyavartī-dravyapada dīpaka
- 108 Madhyavartī-Samjñāpada-dīpaka
- 109 Antyavartī-jātīpada-dīpaka
- 110 Antyavartī-Kriyāpada-dīpaka
- 111 Antyavartī-guṇapada-dīpaka
- 112 Antyavartī-dravyapada-dīpaka
- 113 Antyavartī-Samjñāpada-dīpaka
- 114 Mālādīpaka
- 115 Viruddhārtha-dīpaka

- 116 Ślistārtha-dīpaka
 117 Ekārtha-dīpaka
 118 Antyakriyā-dīpaka. The author states that this variety is illustra'ed here, once more, on account of "Bhāva-Camatkāra"
- 119-126 Utpreksā
 119 Definition of Utpreksā
 120 Words expressive of Utpreksā
 121 Vācya-and Pratīyamāna-Utpreksā; Vācya-Utpreksā-defined
 122 Pratīyamāna-Utpreksā-defined
 123 alludes to 56 and 46 divisions of Vācyotpreksā and Pratīyamānotpreksā respectively.
 124 Their illustrations should be known from other works. Here only the two primary and main divisions are described.
 125 illustrates Vācyotpreksā
 126 gives another illustration of Vācyotpreksā, the author states that following his predecessors he too does not give any illustration of Pratīyamānotpreksā
- 127-137 Arthāntaranyāsa
 127 Definition of Arthāntaranyāsa
 128 Viśvavyāpī-arthāntaranyāsa
 129 also an example of Viśvavyāpī-arthāntaranyāsa

- 130 Viśeṣastha-arthāntaranyāsa.
 131 Śliṣṭa-arthāntaranyāsa
 132 Viruddha-arthāntaranyāsa
 133 Ayukta-arthāntaranyāsa.
 134 Yukta-arthāntaranyāsa.
 135 Yuktāyukta-arthāntaranyāsa
 136 Viparyaya-arthāntaranyāsa
 137 States that there are other divisions also of
 this Arthāntaranyāsa, their examples should
 be known from other works.
 138-146 Vyatireka.
 138 Definition of Vyatireka
 139 Eka-vyatireka.
 140 Ubhaya-vyatireka
 141 Sāksepa-vyatireka
 142 Sahetu-vyatireka
 143 Ādhikyopeta-bheda-laksana-vyatireka.
 144 Sadrśa-vyatireka
 145 Another illustration of Sadrśa-vyatireka.
 146 Sajāti-vyatireka
 147-149 Vibhāvanā
 147 Definition of Vibhāvanā
 148 Kāranāntarakaḷpanā-vibhāvanā
 149 Svabhāva vibhāvanā
 150-174 Āksepa
 150 Definition of Āksepa (Three Divisions)

- 151 Atītāksepa.
 152 Vartamānāksepa
 153 Anāgatāksepa.
 154 Dharmāksepa
 155 Dharmyāksepa.
 156 Kāranāksepa.
 157 Kāryāksepa
 158 Anujñāksepa
 159 Prabhutvāksepa.
 160 Anādarāksepa
 161 Āśīrvacanāksepa
 162 Sācivyāksepa.
 163 Yatnāksepa
 164 Paravaśāksepa
 165 Upāyāksepa.
 166 Rosāksepa.
 167 Anukrośāksepa,
 168 Anuśayāksepa.
 169 Ślistāksepa.
 170 Samśayāksepa.
 171 Arthāntarāksepa
 172 Hetvāksepa
 173 Dharmāksepa is again illustrated on account
 of "Bhāva-Camatkāra".
 174 Other divisions of Āksepa should be known
 (from other works) by the wise.

- 175-179 Atiśayokti,
 175 Definition of Atiśayokti.
 176 illustrates Atiśayokti
 177 Samśayātiśayokti.
 178 Niścayātiśayokti.
 179 Adbhutātiśayokti or Virodhātiśayokti.
- 180-181 Sūksma
 180 Definition of Sūksma.
 181 illustrates Sūksma.
- 182-185 Samāsokti-
 182 Definition of Samāsokti.
 183 Samānaviśesana-bhinna-viśesya-samāsokti.
 184 Bhinnābhinna-viśesana-samāsokti,
 185 Apūriya-samāsokti. This Alamkāra should
 be described by another name, viz,
 Anyāpadeśa.
- 186-188 Lava (Leśa or Nindā stuti).
 186 Definition of Lava
 187 Vacogopana-leśa.
 188 Cestāprakāśana-leśa
- 189-191 Krama
 189 Definition of Krama.
 190 Illustrates Krama
 191 Another example of Krama
- 192-194 Udātta.
 192 Definition of Udātta

- 193 Illustrates Buddhī mahattva-Udāṭṭa
 194 Illustrates Aśvāryamahattva.
 195-200 Apahnava (= Apahnuti)
 195 Definition of Apahnava
 196 Svarūpāpahnava.
 197 Another example of Svarūpāpahnava
 198 Still another example of Svarūpāpahnava.
 199 Viśayāpahnava
 200 States that upamāpahnava has already been described under Upamā; and that the wise should detect from among stanzas other divisions.
 201-202 Preyas
 201 Definition of Preyas.
 202 illustrates Preyas.
 203 207 Virodha.
 203 Definition of Virodha.
 204-206 illustrate Śabdakṛtavirodha.
 207 illustrates Arthakīta-virodha.
 208-220 Rasavat.
 208 Definition of Rasavat
 209 Śiṅgārākhyā
 210 Yuddhavīra-rasākhyā.
 211 Dānavīra-rasākhyā.
 212 Dharmavīra-rasākhyā.
 213 Karuṇākhyā

- 214 Bībhatsākhyā
 215 Hāsyākhyā
 216 Adbhutākhyā
 217 Bhayānakākhyā.
 218 Raudrākhyā.
 219 Śāntarasākhyā.
 220 Speech attains to the state of Rasa on account
 of these nine Rasas, according to others,
 however, eight Rasas excluding Śānta.
 221-222 Ūrjasvī
 221 Definition of Ūrjasvī
 222 illustrates Ūrjasvī.
 223-225 Aprastuta-praśamsā.
 223 Definition of Aprastuta-praśamsā
 224-225 illustrate Aprastuta-praśamsā.
 226-232 Viśesokti
 226 Definition of Viśesokti
 227 Guṇavaikalya-viśesokti
 228 Jātvavaikalya-viśesokti.
 229 Kriyāvaikalya-viśesokti
 230 Dravyavaikalya-viśesokti.
 231 Hetu-viśesokti.
 232 States that there are other divisions of
 Viśesokti. The wise should conceive of
 them.

- 233-237 Tulyayogitā,
 233 Definition of Tulyayogitā.
 234 Two divisions of Tulyayogitā based on Stuti and Nindā.
 235 Stutipara-tulyayogitā.
 236 One more illustration of Stutipara-tulyayogitā
 237 Nindāpara-tulyayogitā
- 238-239 Paryāyokta
 238 Definition of Paryāyokta
 239 illustrates Paryāyokta.
- 240-244 Sahokti
 240 Definition of Sahokti
 241 Guṇasahabhāvākathana-Sahokti
 242 Kriyāsahabhāvākathana-Sahokti
 243 gives an alternative definition of Sahokti
 244 illustrates Sahokti as defined in v243 and designates it Kāryakāraṇa-sahajanma-Kathana-Sahokti.
- 245-247 Parivṛtti (two divisions)
 245 Definition of Parivṛtti
 246 Sadrśārtha parivṛtti
 247 Viśadīśārtha-parivṛtti
- 248-249 Samāhita (= Samādhī)
 248 Definition of Samāhita
 249 illustrates Samāhita.

- 250-260 Ślista (= Ślesa)
- 251 Abhinnaślista (= Śleṣa)
- 252 Bhinnaślista (= Ślesa)
- 253 States that Ślesa accompanying Vyatireka and other Alaṅkāras has already been shown. A few other Ślesas are described hereafter.
- 254 Kriyāka-abhinna-ślesa (= Abhinna-kriyā-ślesa)
- 255 Aviruddha Kriyāślesa
- 256 Viruddhakriyāślesa
- 257 Saṁyama śleṣa
- 258 Niyamanisedhaślesa
- 259 Aviruddha ślesa
- 260 Upamā-ślesa
- 261-263 Nidarśana (= Nidarsanā)
- 261 defines Nidarśana (two kinds)
- 262 Praśasta-nidarśana
- 263 Apraśasta-nidarśana
- 264 267 Vyājastuti
- 264 defines Vyājastuti
- 265 illustrates Vyājastuti
- 266 Ślista Vyājastuti
- 267 States that Vyājastuti has infinite varieties
- 268-270 Āśih
- 268 defines Āśih

- 269-270 illustrate Āśīh
 271-273 Samuccaya
 271 defines Samuccaya.
 272 Atyutkrsta samuccaya
 273 Atyapakīsta Samuccaya
 274-275 Vakrokti
 274 defines Vakrokti
 275 illustrates Vakrokti.
 276-279 Anumāna (three divisions)
 276 defines Anumāna
 277 Vartamāna-Sādhyā-gocara
 278 Atīta-sādhyā-gocara
 279 Bhāvi-sādhyā-gocara
 280-281 Vīsama
 280 defines Vīsama
 281 illustrates Vīsama.
 282-283 Avasara
 282 defines Avasara
 283 illustrates Avasara
 284-285 Prativastūpamā
 284 defines Prativastūpamā.
 285 illustrates Prativastūpamā The author adds
 a remark "according to some this Alamkāra
 is included in Upamā"
 286-287 Sāra
 286 defines Sāra.

- 287 illustrates Sāra
- 288-289 Bhrāntimān
- 288 defines Bhrāntimān
- 289 illustrates Bhrāntimān. The author remarks that this Alamkāra is, according to some, the same as Mohopamā.
- 290-293 Samśaya
- 290 defines Samśaya.
- 291-292 illustrate Samśaya.
- 293 Defines Niścayānta Samśaya. The author remarks that, according to some, Samśaya and Niścayānta-Samśaya are the same as Samśayopamā and Nirnayopamā respectively.
- 294-295 Ekāvalī
- 294 defines Ekāvalī
- 295 illustrates Ekāvalī.
- 296-297 Parikara.
- 296 Defines Parikara.
- 297 illustrates Parikara.
- 298-300 Parisamkhyā.
- 298 defines Parisamkhyā.
- 299-300 illustrate Parisamkhyā. The author remarks that it is, according to some, the same as Sanyama-ślesā.
- 301-304 Praśnottara (three kinds)
- 301 defines Praśnottara

- 302 Vyakta-Praśnottara
 303 Vyaktapraśna-Gūdhottara.
 304 Vyaktagūdhottara-Praśnottara.
 305-308 Saṁkara.
 305 defines Saṁkara.
 306-307 illustrate Saṁkara.
 308 states that Saṁkara is two-fold 1 When there exists the relation of "the principal and the subordinate" and 2. When there is "the state of equal prominence" between the Alaṁkāras constituting Saṁkara.
 309-310 Conclusion
 309 The author states how he has completed this compendium of Alaṁkāras although their scope is vast.
 310 The author expresses his benediction that the fame of King Nrsiṁha (Kāmīrāja) should continue to live through his Kāvya

CHAPTER X

Nature of Doṣas and the Circumstances in which they turn out to be Guṇas

- 1 A poem free from Doṣas leads to fame.
 2-4 enumerate 15 Pada-dosas.

- 5-33 define and illustrate these Padadoṣas.
- 5-6 Asamartha
- 7 Śrutikatu,
- 8-9 Nirarthaka,
- 10-11 Avācaka
- 12 Cyutasamskrti,
- 13-14 Aprayukta,
- 15-16 Grāmya.
- 17-20 Aślīla (three kinds),
- 21-22 Neyārtha,
- 23 Klīsta
- 24-25 Sandīgdha
- 26-27 Anucitārtha,
- 28-29 Avimrsta-vidheyāñśa,
- 30-31 Viruddhamatikrt,
- 32-33 Apralīta,
- 34 points out how these Dosas pertain also to parts of a word.
- 35-39 illustrate a few of these Dosas pertaining to parts of a word
- 40-43 enumerate 22 Vākya-dosas,
- 44-45 Upahatalupta-vīsarga
- 46-50 Hatavṛtta
- 51-52 Garbhita
- 53-54 Samkīrṇa
- 55-56 Nyūnapada

- 57-58 Kathitapada
 59-60 Prasiddhi-hata
 61-63 Akrama
 64-68 Visandhi
 69-70 Pratikūla-varna
 71-72 Asthānastha-pada
 73-74 Asthānastha-samāsa
 75-76 Adhikapada
 77-78 Rasa- cyuta
 79-80 Samāpta-punarātta
 81-82 Anabhīhita-vācya
 83-84 Aprastutārtha
 85-86 Amata-parārtha
 87-88 Ardhāntaraika-vācaka
 89-91 Bhagna-prakrama
 92-94 Abhavanmata-yoga
 95-96 Patatprakarsa
 97-100 enumerate 21 Artha-dosas
 101-142 define and illustrate these Artha-dosas
 101-102 Apusta
 103-104 Kasta
 105-107 (ab) Sandigdha
 107(cd)-108 Vyāhata
 109-110 Grāmya
 111-112 Duskrama
 113-114 Vyarthīkrta

- 115-116 Ahetu
 117-118 Punarukta
 119-120 Aślīla
 121-122 Sākāṅksa
 123-124 Prasiddhi-Viruddha
 125-126 Vidyā-viruddha
 127-128 Ukta-viruddha
 129-130 Samiyama
 131-132 Aniyama
 133-134 Viśesa-parivṛtta
 135-136 Aviśesa-parivṛtta
 137-138 Vidhyānuvāda-vivṛtta
 139-140 Tyakta-punahsvikṛta
 141-142 Sahacarabhīna
 143-166 illustrate and explain how, in certain circumstances Pada-dosas, Vākya-dosas and Artha-dosas turn out to be Guṇas. The circumstances in which Śrutikatū, Asamartha, Kṛta, Neyārtha, Nirarthaka, Aślīla, Sandigdha Apratīta, Nyūnapada, Adhika-pada Punarukta, Nirhetu (Ahetu) these Dosas cease to be so and, in fact, turn out to be Guṇas
 167-176 Under the word Prasiddhi (occurring in the Prasiddhi-viruddha dosa) are included other things also which are not found in

- nature but are Prasiddha according to Kavi-samaya (poetic conventions)
- 177-180 enumerate Rasa-dosas
- 181-186 Rasābhāsa and Bhāvābhāsa
- 187-190 illustrate Svasabdagrahana
- 191 illustrates Kasta-Kalpanā
- 192 illustrates Pratikūlavibhāvādi-grahana
- 193 The author here directs that the reader should refer to the poetic compositions for Rasa-Dosas (those illustrated here and others mentioned in vv178-179 (viz, Punah punah dīptih, Ākāśa (= Akāṇḍa) prathana Ākāśa (= Akāṇḍa) Cheda Angasya ativistih, Angino ananusandhānam Prakrti-viparyayah Anangasyābhidhānam.
- 194-197 In conclusion, the author addresses King Kāmīrāja in glowing terms and wishes him well

श्रीब्रह्मन्तनाथाय नमः । निदिधनमस्तु ।

वर्णगणफलनिर्णयो नाम

प्रथम. परिच्छेद

जयति ससिद्धकाव्यालापपद्माकरेऽय
वरगुणयुतजीवन्मुक्तिपुस (प्रियो य ।
सुमधुमधु) रवाणीसारनिक्वाणरम्यो
जिनपतिकलहंसश्चारुसंतीति^१पक्ष्मा ॥ १ ॥
अमन्दानन्दसदोहपीयूषरसदायिनीम् ।
स्तवीमि शारदा दि(व्या)^२ज्ञानैकफलशालिनीम् ॥ २ ॥
समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरै
कृतप्रबन्धोज्ज्वलसत्सरोवरे ।
लसद्रसालकृतिनीरपङ्कजे
सरस्वती क्रीडति भावबन्धुरे ॥ ३ ॥
श्रीमद्विजय^३कीर्तीन्द्रो सूक्तिसदोहकौमुदी ।
^४मदीयचित्तसताप हृत्वानन्द^५दद्यात्परम् ॥ ४ ॥
श्रीमद्विजयकीर्त्यख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ।
मदीयचित्तकासारे स्थेयात् सगुद्धधीजले ॥ ५ ॥
मलयानिलसकाशो गुणसौरभवर्धक ।
सतापहृज्जनानन्द सुजनो^६जीवताच्चिरम् ॥ ६ ॥

१ वक्ष्य, २ ज्ञानफल, ३ कीर्तीन्द्रो, ४ मदीय च स्म, ५. ददात्,
६ देवता ।

गुणवर्मादिकर्नाटकवीना सूक्तिसचय ।
 वाणीविलास^१ देयात्ते रसिकानन्ददायिनम् ॥ ७ ॥
 राजनीतिमहाशास्त्रनिरूपितफलप्रदाम् ।
 नानातटाककासारनदीवनविभूषिताम् ॥ ८ ॥
 सदे (व) पुरसकाशनानानगरभासुराम् ।
 जिनराजमहाधर्मश्रावकोत्तमराजिताम् ॥ ९ ॥
 अष्टादशमहाश्रेणीभूषिता श्रीमतीतराम् ।
 पश्चिभार्णवपर्यन्ता दश सर्वमुखप्रदाम् ॥ १० ॥
 श्रीमद्भू रतराजेन्द्रनामचक्रवरोपम ।
 श्रीवीरनरसिहाख्यबङ्गभू(मी)श्वरो महान् ॥ ११ ॥
 पालयत्यमला^२ बङ्गवाटीपुरसमन्विताम् ।
 कादम्बवराजनितानेकभूमीशपालिताम् ॥ १२ ॥
 तस्यानुजो^३ गुणाधीश पाण्ड्यबङ्गनरेश्वर ।
 सत्येन रामचन्द्रोऽभूद्धर्मेण भरतेश्वर ॥ १३ ॥
 रत्नत्रयमहाधर्मरक्षको राजशेखर ।
 महाकविजन^४ स्तूयमानसत्कीर्ति(ना)यक ॥ १४ ॥
 सोऽपि श्रीपाण्ड्यबङ्गोऽय जिनपादाब्जषट्पद ।
 अनुक्रमागता भूमि पूर्वोक्ता रक्षति स्म वै ॥ १५ ॥
 तस्य श्रीपाण्ड्यबङ्गस्य भागिनेयो गुणार्णव ।
 विट्टलाम्बामहादेवीपुत्रो राजेन्द्रपूजित ॥ १६ ॥
 श्रीकामिराजवङ्गोऽभून्नाम्ना नृपतिकुञ्जर ।
 वैरिसदोहगन्धेभ घटा(क)ण्ठीरवोपम ॥ १७ ॥

१ देयात्ते, २ वङ्गवाडी I have sanskritised as वङ्गवाटी,
 ३. गुणादी पाण्ड्य, ४ स्तूयमानसत्कीर्ति - यक, ५ कामिराय I
 have sanskritised as कामिराज throughout the text.
 ६ °घटा ° ठिरवो ।

क्रमागतामिमा भूमि पश्चिमाम्बोधिभूषिताम् ।
^१श्रीकामिराजवङ्गेन्द्र पालयत्यमलश्रियम् ॥ १८ ॥
^२स राजा काव्यगोष्ठीषु सभाजनविभूषित ।
 अपृच्छद्विद्वितय नाम्ना कवितागक्तिभासुरम् ॥ १९ ॥
 काव्यस्य लक्षण कि वा वर्णगुद्धिञ्च (की)दृगी ।
 रसभावो कथभूतौ ^३नेतृभेदाश्च कीदृगा ॥ २० ॥
 कीदृग्यलकृती रीति कीदृग्वृत्तिश्च कीदृगी ।
^४कीदृग्दोषो गुण कीदृक् पृच्छति स्मेति मा नृप ॥ २१ ॥
 इत्थ नृपप्रार्थितेन मयालकारसग्रह ।
 क्रियते सूरिणा नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥ २२ ॥
 अदोष सगुणो रीतियृत्तिशय्यारसान्वित ।
 सालकार सपाकरश्च शब्दार्थरचनोत्तम ॥ २३ ॥
 समुद्रनगरीगैलसुधाकरदिवाकर- ।
 (पड)र्तुजलकेलीना वर्णनाभिरलकृत ॥ २४ ॥
^५सभोगविप्रलम्भाभ्या मधुपानै कुमारकै (? रतोत्सवै) ।
 विवाहैर्मन्त्रदूताभ्या प्रयत्नेन विभूषित ॥ २५ ॥
 सग्रामनायकैर्व्यवर्णनाभिर्विभूषित ।
 मनोजभावसदर्भ कवीश्वरनिरूपित ॥ २६ ॥
 धर्मार्थकाममोक्षाख्यसत्फलाना प्रकाशक ।
 महानु ॥ २७ ॥
^६विधुप्रबन्धसजोऽय वुधै काव्य प्रकीर्तितम् ।
 रसभावज्ञलोकाना प्रमोदाय प्रकल्पते ॥ २८ ॥

१ श्रीकामोकाय, २. स राजा का . गोष्ठीषु । ३ ते त्रिभेदाश्च,
 ४ किदृग्दोषो गु णा किदृक्पृच्छति, ५. Could the line be :
 सभोग विप्रलम्भाभ्या कुमारोदयवर्णनैः ? ६ विधुप्रबन्धो य ।

तत् काव्य त्रिविध प्रोक्त पद्य गद्य च मिश्रितम् ।
 उक्तादिच्छन्दसा बद्ध पद्यकाव्य निरूपितम् ॥ २९ ॥
 गद्यकाव्य तु वाक्याना मूलालकृतमीरितम् (समुच्चय इतीरितम्) ।
 गद्यपद्योभय प्रोक्त मिश्रकाव्य बुधोत्तमै ॥ ३० ॥
 उत्तम मध्यम प्रोक्त जघन्य त्रिविध पुन ।
 प्रत्येकमिति तत् काव्यं नवधा सप्रवर्तते ॥ ३१ ॥
 उत्तम ध्वनिभिर्युक्तमव्यक्त मध्यम मतम् ।
 ध्वन्यर्थगून्य काव्य तु जघन्य परिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥
 आशीरलकृत वस्तुनिर्देशपरिभूषितम् ।
 नमस्कृतिसमेत वा तत् काव्यमुखमुच्यते ॥ ३३ ॥
 एतत्काव्यमुखे वर्णगणगुद्धि प्रकीर्त्यते ।
 तथा कवेर्नायकस्य जाघटीति महाशुभम् ॥ ३४ ॥
 तदभावेऽनिष्टफल कविनायकयोर्भवेत् ।
 तस्माद्वर्णगणाना तु गुद्धिरुक्ता बुधैर्यथा ॥ ३५ ॥
 अकारादिक्षकारान्ता वर्णास्तेषु गुभावहा ।
 केचित् केचिदनिष्टाख्य वितरन्ति फल नृणाम् ॥ ३६ ॥
 ददात्यवर्णं सप्रीतिमिवर्णो मुदमुद्वहेत् ।
 कुर्याद्विवर्णो द्रविण तत स्वरचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥
 अपख्यातिफलं दद्यादेव सुखफलावहा ।
 इन्द्रविन्दुविसर्गास्तु पदादौ सभवन्ति नो ॥ ३८ ॥
 कखगघाञ्च लक्ष्मी ते वितरन्ति फलोत्तमाम् ।
 दत्ते चकारोऽपख्याति छकार प्रीतिसौख्यद ॥ ३९ ॥
 मित्रलाभ जकारोऽयं विधत्ते भीभृतिद्वयम् ।
 झ करोति टठौ खेददु खे द्वे कुरुत क्रमात् ॥ ४० ॥

१ °द्यादेव , २ विदत्तेभिभृत् ।

गोभाकरो डकारोऽयमशोभाफलदस्तु ढ ।
 णकारो भ्रमण दत्ते तकार सुखदायक ॥ ४१ ॥
 १थो युद्धदो दधौ सौख्यफलौ नस्तु प्रतापद ।
 पो भय फस्तु सतोष (? फस्त्वसतोष) वो मृत्यु
 क्लेगन तु भ ॥ ४२ ॥
 दाह कमान्मकारो विधत्ते श्रीकरस्तु य ।
 दाहकृप्रेफवर्णस्तु लंबौ व्यसनदायकौ ॥ ४३ ॥
 २गस्तनोति सुख पस्तु ३खेद सस्तु सुख क्रमात् ।
 दाहदो हस्तु कवर्णो ददाति व्यसन फलम् ॥ ४४ ॥
 क्षस्तु सर्वसमृद्धीडयफलदानक्रियान्वित ।
 सम (? सर्व) वर्णफल प्रोक्तमेव प्रत्येकत क्रमात् ॥ ४५ ॥
 मुखे काव्यस्य वर्णाना सयोगस्त्यज्यता बुधै ।
 शुद्धवर्णोऽन्यवर्णेन युक्तो दु फलदो भवेत् ॥ ४६ ॥
 विपत्तामेति कर्पूर तैलयुक्त यथा भुवि ।
 क्षकारस्तु प्रयोक्तव्य ४ काव्यादौ सत्फलावह ॥ ४७ ॥
 वर्णाना शुद्धिरित्युक्ता गणशुद्धि प्रकीर्त्यते ।
 दीर्घोऽनुस्वारयुक्तो वा विसर्गान्त स्वरस्तथा ॥ ४८ ॥
 द्वित्वाक्षरसमेतो वा परतो गुरुरुच्यते ।
 इतरो लघुरुक्तोऽय स्वर छन्दोविगारदौ ॥ ४९ ॥
 स्वरो लघुरपि प्रोक्तो विकल्पेन गुरुर्बुधै ।
 पादान्ते यदि वर्तेत पद्याना द्विविधात्मनाम् ॥ ५० ॥
 गुरुणा लघुना ताभ्या व्याप्ता वा गदिता गणा ।
 अष्ट वा पञ्च वा तेषा प्रत्येक लक्षण यथा ॥ ५१ ॥

१ छोयुद्धदो ददौ, २ अतो व्यसनदायका, ३. शम्नु हति, ४ भेदं,
 ५ युक्तः दु फलादौ, ६ काम्यदौ ।

त्रिगुरुर्भगण प्रोक्तस्त्रिलघुर्नगणो मत ।
 यगणो लघुमानादौ तगणोऽन्त्यलघुर्मत ॥ ५२ ॥
 रगणो लघुमान्मध्ये जगणो मध्यसद्गुरु ।
 सगणोऽन्त्यगुरु प्रोक्तो भगणो गुरुरादित ॥ ५३ ॥
 अष्टावेते गणा प्रोक्ता प्रत्येक त्रिन्निवर्णका ।
 वर्णवृत्ते प्रयोक्तव्या कवितानिपुणैर्बुधैः ॥ ५४ ॥
 चतुर्मात्रागणा पञ्च प्रत्येक गदिता बुधैः ।
 मात्रावृत्ते तु^१ ते ज्ञेयास्तेषा लक्षणमुच्यते ॥ ५५ ॥
 द्विगुरुर्भगण प्रोक्तो नगणश्च चतुर्लघु ।
 भगणो जगणो यश्च सगणो वर्णवृत्तवत् ॥ ५६ ॥
 यरतास्तु न सन्त्यत्र पञ्चमात्रात्मकत्वत् ।
 क्वचित् सन्ति विशेषोक्ते सभवादिति बुध्यताम् ॥ ५७ ॥
 यगणो जलरूपोऽय धनकृद्रगणोऽनल ।
 भयदाहकरस्तस्तु गगन श्रीकरो मत ॥ ५८ ॥
 भगण^२ सुखकृत्सौम्यो जो^३ भानू रोगदायक ।
 वायव्य सगणो दत्ते क्षयरूप फल सदा ॥ ५९ ॥
 शुभदो मगणो भूमिर्नगणो गौर्धनप्रद ।
 एवं गणफल प्रोक्त शुभाशुभविभेदत ॥ ६० ॥
 देवतावाचिशब्दाना भद्राद्यर्थप्रकाशिनाम् ।
 शब्दाना निरवद्यत्व काव्यादौ गणवर्णत ॥ ६१ ॥
 गणवर्णफलं प्रोक्त समान कविभिः कृते ।
 काव्ये सर्वत्र बोद्धव्य गद्यपद्योभयात्मके ॥ ६२ ॥

१. तु वद्ज्ञेया°, २ सुखकृत्साम्यो, ३ भानो ।

एव रम्यकवीश्वरै कृतिमुखे निर्दिष्टनिर्दोषकै-
 वर्णैश्चारुगणोत्करैर्विलसिते काव्ये सरोजाकरे ।
 श्रीमद्वीरनृसिहारायनृपते कीर्तिस्त्वदीयामला
 सत्यत्यागगुणोद्भवा विजयता सा राजहसीसमा ॥६३॥

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्ररविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्ति-
 मुनोन्द्रचरणाञ्जचञ्चरीकविजयवर्णिविग्चिते श्रीवीरनरसिह-
 कामिराजवङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसनिभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गा-
 रार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारमग्रहे वर्णगणफल-
 निर्णयो नाम प्रथम परिच्छेद ।
 श्री ॥ श्री जिनाय नम ॥

इति वर्णगणफलनिर्णयो नाम प्रथम परिच्छेद ।

काव्यगतशब्दार्थनिश्चयो नाम

द्वितीयः पारिच्छेदः.

प्रतिभाशक्तिसपन्नो व्युत्पत्त्यभ्यासभूषित ।
 अष्टादशस्थलार्थानां वर्णनानिपुण कवि ॥१॥
 अथवा शक्तितनैपुण्यकविशिक्षात्रयान्वित ।
 रसभावपरिज्ञानगुणाढ्य कविरुच्यते ॥२॥
 त्यज्यते गृह्यते शब्दोऽर्थो वा तावत्पुन पुन ।
 येन यावद्बुचि स्वस्य रौचिक स कविर्भवेत् ॥३॥
 शब्ददम्बरमात्रार्थी वाचिक कविरुच्यते ।
 अर्थवैचित्र्यमात्रार्थी सोऽयमार्थ कविर्भवेत् ॥४॥
 शब्दार्थद्वयचित्रार्थी शिल्पिक कविरुच्यते ।
 शब्दार्थमृदुताकारी मूर्द्धवानुगनादभाक् ॥५॥
 वाच्यवाचकसबन्धिगुणदोषविदा वर ।
 महाकवीनां मार्गज्ञो नानाशास्त्रार्थकोविद ॥६॥
 विवेकीति कवि प्रोक्तो दिव्यालंकारयोजने ।
 तत्परो भूषणार्थीति नाम्ना कविरुदाहृत ॥७॥
 इति सप्तविधा प्रोक्ता कवयः कविपुङ्गवै ।
 कविप्रयुक्तवाक्यानां चतुर्धार्थं प्रवर्तते ॥८॥
 मुख्योऽर्थो लक्ष्यनामापि गौणाख्यो व्यङ्ग्यनामक ।
 महाकवीन्द्रैः सत्काव्ये प्रयुक्तोऽर्थश्चतुर्विध ॥९॥

१ येन यावद्बुचि स्वस्य स कवी रौचिको भवेत् । २. मूर्द्धवानुगना-
 दुभाक् ।

साक्षात् सकेतविषयो मुख्योऽर्थं प्रणिगद्यते ।
 जाति. क्रिया गुणो द्रव्यमिति सोऽपि चतुर्विधः ॥१०॥
 अश्व-गो-गज-वृक्षादि-शब्दा जातिप्रकाशका ।
 क्रियाभिधायिका याति गच्छतीत्यादयो मता ॥११॥
 शुक्लकृष्णहरिद्रक्तेकिर्मीरादिर्गुणो भवेत् ।
 दण्डिकुण्डलिचैत्रादि-द्रव्यमित्यभिधीयते ॥१२॥
 मुख्यार्थे बाधिते मुख्यसबन्धयर्थोऽपि लक्ष्यते ।
 १ अन्यार्थत्वेन य सोऽय लक्षणेत्यभिधीयते ॥१३॥
 लक्ष्यवाचकशब्दस्य लक्षणाशक्तयस्त्रिधा ।
 जहत्यजहती स्वार्थं जहत्यजहतीति च ॥१४॥
 यत्र स्वार्थं परित्यज्य शब्दोऽन्यत्र प्रवर्तते ।
 तत्सबन्धयुते प्रोक्ता सा जहल्लक्षणा बुधै ॥१५॥
 २ कौमुद वर्धयत्यत्र राजा नीतिविदा वर ।
 घोपो वसति गङ्गायामित्युदाहरण मत्तम् ॥१६॥
 अपरित्यज्य मुख्यार्थं शब्दोऽन्यत्र प्रवर्तते ।
 तत्सबन्धयुते यत्र सा जहल्लक्षणेतरा ॥१७॥
 प्रविशन्ति महादुर्गं कुन्ताश्चापानि शक्तय ।
 खेटखड्गाश्च रक्षार्थमित्युदाहरण स्मृतम् ॥१८॥
 शब्दो जहाति मुख्यार्थं न जहात्यपि यत्र सा ।
 जहत्यजहती प्रोक्ता लक्षणा कविकुञ्जरै ॥१९॥
 व्रजन्ति शिविका मार्गे व्रजन्ति च्छत्रिणोऽपि च ।
 व्रजन्त्यान्दोलिका प्रोक्तमित्युदाहरण बुधै ॥२०॥
 ३ शिविका-दोलिका-च्छत्रशब्दै स्वार्थप्रकाशकै ।
 अन्येषा शिविकान्दोलच्छत्रित्वमिह लक्ष्यते ॥२१॥

१ किमारु०, २. मुख्यार्थत्वेन, ३ कामुदं, ४ शापानि ५. शिविका,
 दोलिका छत्रोन् ।

मुख्यबाधे निमित्ते च फले चारोप्यते बुधै ।
 योऽर्थोऽभेदेन भेदेन स गौणो विदुषा मतः ॥२२॥
 सिंहो नृपतिरित्यत्र गौणोऽभेदेन समतः ।
 राजा सिंह इव प्रोक्तो भेदो गौणो बुधोत्तमैः ॥२३॥
 मुख्यार्थाल्लक्ष्यतो गौणाद्भिन्नो योऽर्थः प्रतीयते ।
 स व्यङ्ग्यो ध्वनिरित्युक्तः कलाशास्त्रविशारदैः ॥२४॥
 कौमुदः वर्धयत्यत्र राजेत्युक्ते प्रतीयते ।
 प्रजोपकारिता राज्ञः सा व्यङ्ग्य इति बुध्यताम् ॥२५॥
 अभिधा लक्षणा गौणी व्यञ्जना च चतुर्विधा ।
 शब्दानां शक्तिरित्युक्ता पुरातनकवीश्वरैः ॥२६॥
 अभिधाशक्तिमाश्रित्य नानार्थान् व्यञ्जयन्ति ये ।
 शब्दास्ते नियतार्थेषु नियम्यन्ति नियामकैः ॥२७॥
 नियमाकरणे काव्येऽनिष्टार्थानां प्रतीतिः ।
 असदर्थप्रसगाख्यदोषदुष्टा कृतिर्भवेत् ॥२८॥
 ते के नियामका ब्रूध्वमिति प्रश्ने नियामकाः ।
 सयोगादय इत्युक्ता गुणशालिकवीश्वरैः ॥२९॥
 सयोगविप्रयोगौ विरोधितासाहचर्यकालाश्च ।
 अर्थः प्रकरणलिङ्गशब्दान्तरसनिधिश्च सामर्थ्यम् ॥३०॥
 औचित्यव्यक्तिदेशाश्च गदितास्तु स्वरादयः ।
 कविप्रयुक्तशब्दानामर्थभेदप्रकाशकाः ॥३१॥
 सचक्रो हरिरित्यत्र चक्रयोगात् प्रतीयते ।
 अचक्रो हरिरित्यत्र तद्वियोगाच्च माधवः ॥ ३२॥
 राजा कमलविरोधीत्युक्ते चन्द्रो विरोधतो ज्ञातः ।
 अर्कः कुमुदविरोधीत्युक्ते तत एव कारणाद् भानुः ॥३३॥
 जिष्णुभीमाविति प्रोक्ते साहचर्यात् परस्परम् ।
 पार्थपार्थाग्रजौ ज्ञातौ कवितानिपुणैर्बुधैः ॥३४॥

भातीन्दीवरमित्युक्ते कालोऽर्थस्य प्रकाशक ।
 दिवसे यदि नीरेज रात्रौ चेदुत्पलं स्मृतम् ॥३५॥
 सप्ताङ्गभासुरो राजेत्यर्थो नृपतिबोधक ।
 अर्जुन समरे पार्थज्ञान प्रकरणादभूत् ॥३६॥
 नर कपिध्वज इति लिङ्गात् पार्थोऽवगम्यते ।
 इन्द्र शचीग इत्यन्यशब्दाद्वासवनिश्चय ॥३७॥
 नीलकण्ठो नरीर्नति गक्तिर्वर्षर्तुबोधिका ।
 अत्रास्ते नृपतिज्ञातमौचित्यात् सिंहविष्टरम् ॥३८॥
 अब्जोऽब्ज राजतीत्युक्ते चन्द्रोऽम्भोज प्रतीयते ।
 पुनपुसकलिङ्गाख्यव्यक्तिभ्या कविकुञ्जरै ॥ ३९ ॥
 गगने राजते राजा देशाच्चन्द्रो विनिश्चित ।
 गानस्वरादिरर्थस्य गमकोऽपि न काव्ययुक् ॥ ४० ॥
 आदिशब्देन चेष्टादिर्गृह्यतेऽर्थप्रकाशक ।
 उदाहरणमेतस्य ज्ञातव्य बुद्धिशालिभि ॥ ४१ ॥
 एव शब्दगतार्थनिश्चययुतैर्धर्मत्कवीन्द्रै कृते
 काव्यव्योम्नि तिरस्कृतारिगुणतारालिप्रभे निर्मले ।
 भो भो वीरनृसिंहरायनृपते ते सत्प्रतापो रवि
 कुर्वन्वैरिनिकायकैरवगणम्लानि सदा वर्तताम् ॥ ४२ ॥
 रति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्ररविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजय-
 क्रीतिमुनोन्द्रचरणवज्रचञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीर-
 नरसिंहकामिराजवङ्गनरेन्द्रगरदिन्दुमनिभकीतिप्रकाशके
 शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलकारसंग्रहे काव्यगत-
 शब्दार्थनिश्चयो नाम द्वितीय परिच्छेद ।
 काव्यगतशब्दार्थनिश्चयो नाम द्वितीय परिच्छेद ।

१. अत्रासे नृपतिज्ञातं, २ धीवान् ।

दृश्यत्वाद् रसभावाना नटे काल्पनिको रसः ।
 सामाजिके तात्त्विकस्तु रसो निजरसस्मृतेः ॥२३॥
 भुवने रसिका लोका रसान् स्वाभाविकानलम् ।
 भुञ्जते निजकर्मानुसारेण बहुधा सदा ॥२४॥
 रसानामिति सर्वेषा सामग्री गदिता मया ।
 शृङ्गाररससामग्री विशेषेण निरूप्यते ॥२५॥
 आलम्बनविभावोऽत्र शृङ्गाराख्यरसे स्मृतः ।
 कान्ताया कामुको लोके कामुकस्य तु कामिनी ॥२६॥
 वसन्तोद्यानकासारगुकध्वनिपिकस्वरा ।
 गिखिताण्डवजीमूतध्वनिहसविकूजनम् ॥२७॥
 चक्रवाकरतिक्रीडाचञ्चरीकालिगुञ्जनम् ।
 मलयानिलसचारश्चन्द्रतापविलासनम् ॥२७॥
 इन्द्रगोपस्य पतन वन्दनादिविलेपनम् ।
 उद्दीपनविभावोऽत्र शृङ्गारे ज्ञायता बुधैः ॥२९॥
 अनुभावास्तु शृङ्गारे कामुकस्याङ्गसभवा ।
 कामुकीकायजाता वा विकारा परिकीर्तिता ॥३०॥
^१अपाङ्गलोकन प्रीतिकरसूक्तिविलासनम् ।
 भ्रूलताक्षेपण कर्णपूरोत्पलविवाहनम् ॥३१॥
 रशनाबन्धन वामचरणाघातन स्मितम् ।
 नीवीविस्र सन नाभिजघनोरुविमर्शनम् ॥३२॥
 आलिङ्गन कुचद्वन्द्वविमर्दनरतिक्रिये ।
 एतेऽनुभावा कथ्यन्ते शृङ्गारे कविकुञ्जरैः ^२ ॥३३॥
 कान्ताकामुकयोरत्र दर्शने स्पर्शनेऽथवा ।
 सात्त्विकां स्वेदरोमाञ्चवैवर्ण्यस्तम्भनादयः ॥३४॥

१ असागलोकनं, २ मञ्जरैः ।

योज्या सचारिभावाश्च शृङ्गारेऽत्र विगारदौ ।
 ग्लानिनिर्वेदनिद्रावबोधशङ्कामदादय ॥३५॥
 सामग्रीमवलम्ब्येमा जात शृङ्गारनामक ।
 सभोगो विप्रलम्भश्च द्विविधो रस उच्यते ॥३६॥
 कान्ताकामुकयो सूक्तिविलासस्पर्शनादिभि ।
 ; मिथ सबन्धरूपोऽत्र सभोग कथ्यते बुधैः ॥ ३७ ॥

अस्योदाहरणम्—

जातीकन्दुकताडन सरसहु कारस्वरोल्लासन
 काञ्चीभूपणवन्धन कृतककोपाविद्धकेशग्रह ।
 भ्रूविक्षेपणवर्जन कपटरम्याक्रोशन शासन
 श्रीरायक्षितिपस्य मोहनकर कान्ताकृत चेष्टितम् ॥ ३८ ॥
 प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा सभोगो द्विविधो मत ।
 प्रकाशो गणिकास्त्रीणामन्यस्त्रीणा परो भवेत् ॥ ३९ ॥
 पूर्वानुरागो मानात्मा प्रवास करुणाभिध ।
 चतुर्धा विप्रलम्भ स्याद् वक्ष्यते तन्निदर्शनम् ॥ ४० ॥
 सभोगविप्रलम्भौ तौ कान्ताकामुकयोरिह ।
 सयुक्तायुक्तयोर्वाच्यौ यथासख्य बुधोत्तमैः ॥ ४१ ॥
 कान्ताया कामुकस्यापि रत्युत्कर्षेण भाविता ।
 अवस्था दग वर्तन्ते तासामुद्देगलक्षणे ॥ ४२ ॥
 नयनप्रीति सक्ति मनस सकल्पजागरौ तनुता ।
 विषयद्वेषो लज्जाविनाशन मोहमूर्च्छने मरणम् ॥ ४३ ॥
 रमणी रमणो यत्र रमणी रमण भृशम् ।
 द्रष्टुमिच्छति सा प्रोक्ता चक्षु प्रीतिर्दशा बुधैः ॥ ४४ ॥
 कादम्बनाथ रमणी रतिनाथवश्या
 सौधाग्रवर्तिमणिनिर्मितविष्टरस्था ।

बाह्यालिभूमिगतजातितुरङ्गमाग्रा-
 रूढ भवन्तमतिचारु विलोकते स्म ॥ ४५ ॥
 रमण्या रमणस्यापि यत्र चिन्ता पुन पुन ।
 प्रतिकृत्यादिना तेन सा मन सक्तिरुच्यते ॥ ४६ ॥
 कादम्बक्षितिनाथ कामवगगाराम गता कामिनी
 दृष्ट्वा पल्लवमञ्जरी सरसिज नीलोत्पल मल्लिकाम् ।
 भृङ्गी कोमलचारुकीरवचन सत्कोकिलाना स्वर
 त्वा पुष्पास्त्रसम मुहुर्मुहुरल सचिन्त्य लीनाभवत् ॥ ४७ ॥
 मनोरथयुतस्वान्ते कान्ताया कामुकस्य वा ।
 प्राप्तिसकल्पन यत्र स सकल्पो मत सताम् ॥ ४८ ॥
 कादम्बनाथमदन निजचित्तगेहे
 कृत्वा मनोजधरणीश्वरराज्यलक्ष्मी ।
 आलिङ्गन मधुरचुम्बनमडिघघात
 सकल्प्य भावरतिमेति वियुक्तकान्ता ॥ ४९ ॥
 यत्र कान्तस्य कान्ताया अलाभे तस्य चिन्तनम् ।
 तस्या वा चिन्तन नित्य स जागर इति स्मृत ॥ ५० ॥
 कादम्बक्षितिनायकस्य विरहे तच्चिन्तया नायिका
 सयुक्ता दरनिद्रयापि रहिना चन्द्रातपै पीडिता ।
 कीरोक्त्या कलकण्ठमोहनरवैर्भृङ्गीकदम्बस्वनै-
 रुद्याने शिखिना विलासघोटनैर्जागर्ति मोमुह्यते ॥ ५१ ॥
 पत्युर्वा नायिकाया वा प्राप्त्यभावात्कृशीकृता ।
 यत्र ज्वरेण कामस्य तनु स्यात्तनुता मता ॥ ५२ ॥
 आयल्लके नृपतिकुञ्जररायवङ्ग
 कामज्वरेण कृशता मृगलोचनागात् ।

चान्द्री कलेव रमणी तव सा विभाति
 नीरेजनालगततन्तुरिवाथवालम् ॥ ५३ ॥
 यत्र न क्षमते स्त्री वा पतिर्वा कामवर्धनम् ।
 भाव न रोचते ताभ्या विषयद्वेषक स हि ॥ ५४ ॥
 कामाग्निप्रशमार्थमालिनिकरैरानीयमान सती
 चूताशोकलसत्प्रवालनिचय दृष्ट्वा भय गच्छति ।
 वृद्ध्या मन्मथवाणजालमिति सा चान्द्री मरीचि मनो-
 भ्रान्त्याकायजमल्लिकाशर इति श्रीरायपुष्पायुध ॥५५॥
 अदृष्ट्वा गौरव यत्र मान त्यजति नायिका ।
 नायको वा त्रपानाश कथितो रसिकै स च ॥ ५६ ॥
 मन्दानिलेन मकरन्दरसेन मत्त-
 भृङ्गीस्वरेण शुककोकिलनि स्वनेन ।
 चन्द्रातपेन शिखिताण्डवडम्बरेण
 त्वा यातुमिच्छति सती विमदा नृपेन्द्र ॥ ५७ ॥
 यत्र पत्यु स्त्रिया वा वा चित्तोन्मादो भ्रमादसौ ।
 मोह इत्युच्यते सद्भि कलागास्त्रविशारदै ॥ ५८ ॥
 चन्द्रातप पिबति चुम्बति पल्लवालि
 चन्द्रोदये निजपदेन निजाकृति सा ।
 सताडयत्युरुगुण सहकारभूज
 ङ्लिष्यत्यहो तव सती भ्रमतो नरेन्द्र ॥ ५९ ॥
 यत्र कामस्य सतापात् कामिनी रमणोऽथवा ।
 न जानाति कमप्यर्थ सा मूर्च्छा गदिता बुधै ॥ ६० ॥
 पुष्पास्त्रवाणपतन क्षमते न सोढु
 या सा सती तव वियोगवगात् प्रयान्ती ।
 मूर्च्छा पटे लिखितमन्मथकामिनीव
 भात्यद्य ता मदनराज नृपेन्द्र रक्ष ॥ ६१ ॥

म्रियते यत्र रमणी रमणो वाप्यलाभत ।
 द्वयोरन्यतरस्यात्र मरण तत् प्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥
 कादम्बनाथ तव पुण्यफल किमत्र
 तस्या पुरातनसुकर्मफल किमत्र ।
 कामस्य बाणनिवहो दगमीभवस्था
 ता नायिका नयति नो खलु रक्ष रक्ष ॥ ६३ ॥
 ज्ञातभावचतुष्केण नीयते व्यक्तरूपताम् ।
 हासाख्यस्थायिभावो यो हास्यनामा रसो मत ॥ ६४ ॥
 आलम्बनविभावोऽत्र रसे हास्ये मतो बुधै ।
 विदूषकजनो निन्द्यपदार्थनिवहोऽथवा ॥ ६५ ॥
 विदूषकस्य भाषा वा तदाकारस्य विक्रिया ।
 उद्दीपनविभावोऽत्र निन्द्यदोषगणोऽथवा ॥ ६६ ॥
 चक्षुर्विकाशो देहस्य चलनादी रसाच्च ये ।
 रसभोक्तृनरे प्रोक्ता अनुभावा विगारदौ ॥ ६७ ॥
 विस्वरत्वाश्रुवैवर्ण्यस्वेदादि सात्त्विको मत ।
 औत्सुक्यगर्हचापल्यश्रमा सचारिणो मता ॥ ६८ ॥
 उत्तमो मध्यमो लोके जघन्यस्त्रिविधो मत ।
 हास्यनामरसस्तत्र स्मित हसितमुत्तमे ॥ ६९ ॥
 ततो विहसित मध्ये तथोपहसित मतम् ।
^३अन्त्येऽवहसितं चात्र रसेऽतिहसित मतम् ॥ ७० ॥
 विकसितगण्ड त्वीषल्लक्ष्यदन्त मृदुस्वनम् ।
 गिर कम्प साश्रुकम्प विक्षिप्तागेषदेहकम् ॥ ७१ ॥
 एतेषा लक्षणं प्रोक्त यथासख्यमित परम् ।
 उदाहरणमेतस्य रसस्य प्रोच्यते मया ॥ ७२ ॥

१. रसादये । २. अन्त्येन हसित ।

श्रीरायक्षितिनायकस्य समरे ता वैजयन्ती परे
 दृष्ट्वा भीतिवशात् पतन्ति कतिचिद्भावन्ति मूर्च्छन्ति च ।
 ता दृष्ट्वा स्मयते हसन्ति विहसन्त्यन्ये परे चेतरे
 केचिच्चोपहसन्ति चावहसन कुर्वन्ति हास परम् ॥ ७३ ॥
 शोकाख्यस्थायिभावो यो व्यक्तो भावचतुष्कत ।
 करुणाख्यरस सोऽत्र प्रोच्यते कविपुगवै ॥ ७४ ॥
 इष्टानिष्टविनागाप्तिजातत्वात् करुणो द्विधा ।
 नष्ट वानिष्टयुक्त वा वस्त्वालम्बनमुच्यते ॥ ७५ ॥
 स्वजनाक्रन्दन बन्धुदर्शनादि निरूप्यते ।
 उद्दीपनोऽनुभावस्तु निश्वासरुदितादिक ॥ ७६ ॥
 विस्वरत्वाश्रुपातादि सात्त्विको व्यभिचारिण ।
 विपादबाध्यदीनत्वमृतिचिन्तादयः स्मृता ॥ ७७ ॥
 कादम्बक्षितिपेन भीकरमहामग्नमभूर्मा हतं
 श्रुत्वा वैरिगण तदीयवनिता शोकाब्धिपार गता ।
 हारालम्बिमनोज्ञमौक्तिकगण नीरेजरागव्रज
 रायक्षमापतिकीर्तिविक्रमसम मुञ्चन्ति दिङ्मण्डले ॥ ७८ ॥
 रायक्षमापतिना भयकरमहायुद्धे विपक्षव्रज
 जित्वानीय सशृङ्खल जडमिम कारागृहे बन्धितम् ।
 श्रुत्वा तद्वनिता परा शुचमिता केशावलि श्यामला
 श्रीरायस्य कृपाणवल्लिसदृशी मुञ्चन्ति मूर्च्छन्ति च ॥ ७९ ॥
 क्रोधाख्यस्थायिभावोऽय व्यक्तो भावचतुष्टयात् ।
 रौद्र सोऽपि रसो द्वेधा मात्सर्यद्वेषजन्मत ॥ ८० ॥
 आलम्बनविभावोऽस्य मात्सर्यद्वेषगोचर ।
 उद्दीपनस्तु तद्भाषा तच्चेष्टादिक उच्यते ॥ ८१ ॥

अनुभावस्तु विक्षेपो भ्रुवा लोचनरक्तता ।
 ऊरुहस्तोष्ठचलनप्रमुख परिकीर्तित ॥ ८२ ॥
 सात्त्विक स्वेदरोमाञ्चविस्वरत्वादिको मत ।
 सचारी द्वेषगर्वोग्रभावादि प्रणिगद्यते ॥ ८३ ॥
 श्रीरायक्षमापशाक्ति पटुतरसमरे भूरिदोर्दण्डचार्वी
 ज्ञात्वा वैरिक्षितीशा अपि निजहृदयोपात्तमात्सर्यदोषा ।
 अस्माक साम्यभाजो नहि नहि भुवने कर्णपार्थादयो वा
 मूले तिष्ठन्तु के वा समरधुरसहा गर्वमेन वदन्ति ॥ ८४ ॥
 घोरश्रीयुद्धरङ्गे समरदुरसह वैरिभूपालवर्ग
 दृष्ट्वा कादम्बनाथो दिशि दिशि विकिरन् कोपवह्निस्फुलिङ्गम् ।
 कल्पान्तश्राद्धदेव प्रकटितमहिमा शत्रुभूमीश्वराणा
 सहार साधु कृत्वा विलसति भुवने युद्धरङ्गत्रिणेत्र ॥ ८५ ॥
 उत्साहस्थायिभावोऽत्र व्यक्तो वीररसो मत ।
 भावैश्चतुर्भि स रसः त्रिविध पुनरुच्यते ॥ ८६ ॥
 दानवीरदयावीरयुद्धवीरप्रकारभाक् ।
 सत्पात्रं दीनपुरुषो वैरिलोको यथाक्रमम् ॥ ८७ ॥
 आलम्बनविभावस्तुद्दीपन क्रमतो मत ।
 दानस्तवनदीनोक्तियुद्धभेरिस्वरादिक ॥ ८८ ॥
 अनुभाव क्रमाच्चित्तप्रसत्ति शस्त्रसग्रह ।
 सात्त्विको रोमहर्षादि सचारी प्रोच्यतेऽधुना ॥ ८९ ॥
 गर्वहर्षमहाक्रोधदृत्यादिर्बहुभेदभाक् ।
 बुध्यता कविताप्रौढिगुणभागिभ कवीश्वरै ॥ ९० ॥
 यद्दानाद्धनदा भवन्ति कतिचित् केचिच्च कर्णा परे
 जायन्ते सुरनायकास्त्रिभुवन व्याप्नोति कीर्ति परा ।
 कल्पानोकहकर्णरामनृपतीन् हित्वा यशस्कामिनी
 य भूप श्रयते स रायनृपति श्रीदानवीरो भुवि ॥ ९१ ॥

दीनानाथजनान् विलोक्य हृदये दुःखाग्निदग्धान् बहून्
 कारुण्यामृतभासुर परिलसद्दानेन पीनेन वै ।
 रक्ष रक्षमतीव याति न हि यस्तृप्तिं परां चेतसि
 श्रीरायक्षितिनायक स भुवने कारुण्यवीरो भवेत् ॥ ९२ ॥
 य दृष्ट्वा प्रलयान्तभैरवमिम दोर्दण्डचण्ड नृप
 वैरिक्षमापगणा भयज्वरमिता धावन्ति मूर्च्छन्ति च ।
 नीर यान्ति तरु श्रयन्ति तृणक चुम्बन्ति वल्मीकक
 चारोहन्ति स रायवङ्गनृपति सग्रामवीरो भुवि ॥ ९३ ॥
 भयाख्यस्थायिभावोऽत्र व्यक्तो भावचतुष्टयात् ।
 भयानकरमस्तस्यालम्बभाव प्ररूपित ॥ ९४ ॥
 निर्घातव्याघ्रसर्पारिभल्लूकेभहरिव्रज ।
 उद्दीपनो घनस्तस्य गर्जनादि प्रकीर्तित ॥ ९५ ॥
 अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यस्वेदकम्पादिको मत ।
 स एव सात्त्विको भाव सवारी तु प्रकीर्त्यते ॥ ९६ ॥
 सभ्रमत्रासमोहोरुदीनभावादिभेदभाक् ।
 एते चतुर्विधा भावा योज्या काव्यविशारदै ॥ ९७ ॥
 युद्धे रायनरेन्द्रहस्तकलित खड्गोरुकालोरग
 दृष्ट्वा भीतिवशाद्विपक्षधरणीनाथा प्रकम्प गता ।
 धावन्तो गिरिगह्वरास्थितमहाघोरान्धकार श्रिता-
 स्तास्तत्रापि भय नयन्ति वनिता दिव्याङ्गसत्कान्तय ॥ ९८ ॥
 जुगुप्सास्थायिभावोऽय व्यक्तो बीभत्सनामक ।
 रसो जुगुप्स्यवैराग्यहेतुजन्मा द्विधा मत ॥ ९९ ॥
 आलम्बनविभावोऽत्र जुगुप्स्योऽर्थो मन प्रिय ।
 उद्दीपनस्तु दुर्गन्वदुष्टदोषादिको मत ॥ १०० ॥

१ उद्दीपनः हनं ।

अनुभावोऽस्य वक्त्रस्य नासिकायाश्च कूणनम् ।
 वेगप्रभृतिक चोक्त पुलकादिस्तु सात्त्विकः ॥ १०१ ॥
 निर्वेगोद्वेगकोपादि सचारी परिकीर्त्यते ।
 इति भावचतुष्क तु योज्य सत्कविकुञ्जरै ॥ १०२ ॥
 श्रीरायक्षितिपेन घोरसमरे जित्वा विनि कासिता
 देशाद् वैरिनृपा निजेष्टरमणीयुक्ताश्चरन्तोऽनिशम् ।
 सर्वाङ्गव्रणपूयजर्जरितकाष्ठाङ्गा जुगुप्स्या जना-
 वर्तन्तेऽ गतिका दरिद्रमनुजा भिक्षाटने तत्परा ॥ १०३ ॥
 श्रीरायवगभूपतिर्निर्जितशात्रवगणस्य कष्ट वै ।
 दृष्टवते लोकेऽसौ जनाय कि रोचते सपत् ॥ १०४ ॥
 विस्मयस्थायिभावस्तु भावैर्व्यक्तोऽद्भुतो मत ।
 जनचेतश्चमत्कारि वस्त्वालम्बनमुच्यते ॥ १०५ ॥
 अहोवचनमित्यादिर्भावस्तूद्दीपनो मत ।
 अनुभावस्तु दृष्ट्यास्यकपोलस्फुरणादिक ॥ १०६ ॥
 रोमाञ्चस्वेदभावादि सात्त्विक परिकीर्तित ।
 हर्षसभ्रमभावादि सचारी तु निगद्यते ॥ १०७ ॥
 श्रीरायक्षितिपस्य राजसदन तत्राद्भुता सत्सभा
 तत्र स्थापितविष्टरं रुचिकर तत्र स्थित भूपतिम् ।
 तद्देह तदनूनभूषणगण तत्कान्तिजाल परं
 तद्व्याप्त जनता विलोक्य परमा चित्रीयते सततम् ॥ १०८ ॥
 शमाख्यस्थायिभावोऽय विभावादिचतुष्टयात् ।
 व्यक्त शान्तरस प्रोक्तो गुणशालिकवीञ्जरै ॥ १०९ ॥
 आलम्बनविभावस्तु पञ्चाना परमेष्ठिनाम् ।
 स्वरूप निजरूप वा निश्चयव्यवहारत ॥ ११० ॥
 उद्दीपनास्तु स्याद्वादवेदिसभापणादय ।
 सर्वत्र समभावादिरनुभाव प्रकीर्तित ॥ १११ ॥

पुलकस्तम्भभावादि सार्विक परिकीर्तित ।
 संचारिभावो निर्वेदधृतिमत्यादिको मत ॥ ११२ ॥
 श्रीरायक्षितिनाथपालितमहादेगे कवीन्द्रस्तुते
 योगीन्द्रा जिनतत्त्वबोधमहिता सम्यक्त्वरत्नाकरा
 रागद्वेषविमुक्तशान्तमनसञ्चारित्रपूज्याङ्गका-
 ध्यायन्त परमात्मतत्त्वममलश्राम्यन्ति सौख्यास्पदम् ॥ ११३ ॥
 रसलक्षणमत्रोक्त रसभेदोऽपि निश्चित ।
 स्थायिभावादिसामग्री रसाना कथिता मया ॥ ११४ ॥
 इत पर रसाना तु वर्णस्तदधिदेवता ।
 कार्यकारणभावञ्च विरोधोऽप्यविरोधिता ॥ ११५ ॥
 निरूप्यते जगत्ख्यात कादम्बाम्बुधिचन्द्र ।
 शृणु राय महीनाथ काव्यगोष्ठिविशारद ॥ ११६ ॥
 स्यादिन्दीवरवर्णस्तु रसशृङ्गारनायक ।
 तस्याधिदेवता लोके वासुदेव प्रकीर्त्यते ॥ ११७ ॥
 मुधाधवलवर्ण स्याद्रसो हास्याभिधानक ।
 लोकेऽधिदेवता तस्य विघ्नराजो निरूपित ॥ ११८ ॥
 कषायवर्णता याति करुणाख्यो रसो भुवि ।
 तस्याधिदेवता प्रोक्ता श्राद्धदेव कवीश्वरै ॥ ११९ ॥
 जपाकुमुमवद् रक्तवर्णो रौद्रो रसो मत ।
 तस्याधिदेवता लोके रुद्रनामा निरूप्यते ॥ १२० ॥
 गौरवर्णेन वाभाति लोके वीररसोऽनिगम् ।
 तस्याधिदेवता लोके गतमन्यु प्ररूप्यते ॥ १२१ ॥
 भयानकरसोऽप्यत्र धूम्रवर्ण प्रकथ्यते ।
 तस्याधिदेवता लोके महाकालोऽनुमन्यते ॥ १२२ ॥
 रसो वीभत्सनामा च नीलजीमूतमनिभ ।
 तस्याधिदेवता लोके नन्दिनामा निवुध्यताम् ॥ १२३ ॥

अद्भुताख्यैरसो लोके हेमवर्णेन राजते ।
 तस्याधिदेवता लोके विधाता प्रणिगद्यते ॥१२४॥
 शान्तनामरसो लोके गुद्धस्फटिकवर्णभाक् ।
 तस्याधिदेवता लोके परब्रह्म प्रकाशयते ॥१२५॥
 शृङ्गाराज्जन्म हास्यस्य करुणो रौद्रजन्मभाक् ।
 अद्भुतो जायते वीराद् वीभत्साच्च भयानक ॥१२६॥
 इतरस्माद्रसाज्जन्म नास्ति शान्तस्य शान्तता ।
 इतरो वा रसो लोके जायते न कदाचन ॥१२७॥
 शृङ्गारस्य विरोधी हि वीभत्स कथ्यते बुधै ।
 भयानकविरोधी तु लोके वीररसो भवेत् ॥१२८॥
 अद्भुतो रौद्रवैरी तु करुणो हास्यवाधक ।
 शान्तस्य केनचिन्नास्ति मित्रत्व वा विरोधिता ॥१२९॥
 नानाभावमनोज्ञभावविलसत्तारावलीराजिते
 नानारम्यरसौघचारुतरसज्ज्योत्स्नावलीभासिते ।
 सत्काव्ये गगने नृसिहनृपते कादम्बवशाम्बुधे
 भो भो धीर भवान् मनोज्ञ^२ विलसत्कीर्तिश्च ते वर्धतात् ॥१३०॥

इति रसभावनिश्चयनामा तृतीय परिच्छेद ।

१ विवरसो । २. °विलसत्कीर्ती च रुद्रायता ।

नायकभेदनिश्चयो नाम

चतुर्थ. परिच्छेदः

गुण्यभावे गुणो नास्ति यद्वन्नेतुरसभवे ।
रसभावा जगत्यत्र सभवन्ति कदापि न ॥१॥
यतस्ततो नायकस्य नायिकायाश्च लक्षणम् ।
तद्भेदाश्च निरूप्यन्ते तन्निश्चयफलार्थिनाम् ॥२॥
जनानुराग प्रियवादिभावो वाग्मित्वशौचे विनय स्मृतिश्च ।
कुलीनतास्थैर्यदृढत्वमाना माधुर्यशौर्ये नवयौवन च ॥३॥
उत्साहो दक्षता बुद्धिस्त्यागस्तेज कला मति ।
धर्मशास्त्रार्थकारित्व प्रज्ञा नेतृगुणा इमे ॥४॥
एतद्गुणविशिष्टोऽय नायक कथ्यते बुधै ।
स नायक पुन प्रोक्तश्चातुर्विध्ययुतो भवेत् ॥५॥
धीरोदात्तस्तथा धीरलालितो धीरशान्तक ।
धीरोद्धत इति ख्याताञ्चत्वारो नायका भुवि ॥६॥
क्षमासामर्थ्यगाम्भीर्यदयागुणविराजित ।
आत्मश्लाघामानशून्यो धीरोदात्तो मत्त सताम् ॥७॥
राजसर्वज्ञकल्पोऽय रायवङ्गमहीपति ।
महासमुद्रदेशीयो भूमिदेश्यो विराजते ॥८॥
भोगे कलाया लोलो यश्चिन्तातीतसुखोदय ।
मन्त्र्यर्पितात्मसिद्धिश्च स्याद्धीरललितो मृदु ॥९॥
श्रीरायवङ्गरमणो निजकामिनीना-
मालोकन दृढतर परिरम्भण च ।

वाणीविलासमधरामृतचारुपान

कुर्वन् महारुचिरसौधतले सदास्ते ॥१०॥

विवेकशौचसौभाग्यसुप्रसन्नत्वभूषित ।

विलासरसिको धीरशान्त इत्युच्यते वुधै ॥११॥

कादम्बनाथ परिपालितरम्यराज्ये

केचिद् विलासरसिकास्सुभगा प्रसन्ना ।

नित्य विवेकगुणभासुरमूर्तयस्ते

स्वेषाङ्गनासु कमनीयतरा रमन्ते ॥१२॥

मायामात्सर्यचण्डत्वचलचित्तसमन्वित ।

आत्मस्तुतिपरो मानी धीरोद्धत इतीरित ॥१३॥

सप्ताम्भोनिधिपानक कुलगिरिव्रातस्य सचालन

दिग्दन्तिव्रजकम्पन गगनतारानीकनिस्फालनम् ।

एपामात्मविलासन प्रकटित तेऽमी वय दुर्दमा

इत्येव वदतो रिपूञ्जयति तान् श्रीरायभूमीञ्चर ॥१४॥

चत्वारो नायका एते रसेषु नवसु क्रमात् ।

अवस्थाभेदत सर्वे वर्तन्ते गुणशालिन ॥१५॥

एषा चतुर्णां नेतृणा धीरोदात्तादिभेदिनाम् ।

शृङ्गाराख्यारसे प्रोक्ता प्रत्येक चतुरात्मता ॥१६॥

अनुकूल शठो धृष्टो दक्षिणो नायका मता ।

शृङ्गाराख्यारसे सद्भिश्चत्वारो गुणराजिता ॥१७॥

एकस्या नायिकाया य सक्तचित्तो न बुध्यते ।

अन्यस्त्रीसगम सोऽत्रानुकूलो नायको मत ॥१८॥

विचकिलकुसुमाना सौरभे मग्नभृङ्ग

परकुसुमपराग याति नैवात्र तद्वत् ।

सुरतमधुरकेल्या नायिकाया प्रसक्तो
 न हि परवन्निताना सगम याति राय ॥१९॥
 एकस्या रागगून्योऽपि सराग इव भासते ।
 सलापादिविगेषेण य सोऽपि गठ उच्यते ॥२०॥
 कादम्बनाथ वचनं सुदयासम ते
 ज्योत्स्नासमानमवलोकनचेष्टित च ।
 तन्मल्लिकादिवरदानमिदं च चित्त
 कार्यं न दृष्टमिति वक्ति वधू शठ त्वाम् ॥२१॥
 दृष्ट्वान्यकामिनीसङ्गचिह्नोऽपि वितथ वदेत् ।
 वैयात्येन स धृष्ट स्यान्नायक कथितो वुधै ॥२२॥
 नमनवचनदम्भो मास्तु मास्तु त्वदीय
 कपटमिदमनेकं दृष्टमत्यन्तदृष्टम् ।
 तव सकलगरीरेऽन्याङ्गनासगचिह्न
 सर सर वरकान्ता रायवङ्गं ब्रवीति ॥२३॥
 एकाङ्गनालोलचित्तं समभावेन वर्तते ।
 अन्याङ्गनासु स प्रोक्तो दक्षिणो नायको वुधै ॥२४॥
 ऋटितं दुर्वोधं च पद्यस्यास्य चरणद्वयं यथा पादटिप्पण्या लिखितम्
 कर्पूराणि वित्तीयं चारुमणीवृन्दाय दूतीजना
 श्रीरायो नृपकुञ्जरं प्रहितवान् साहित्यरत्नाकर ॥२५॥
 इदमपि दक्षिणनायकनिदर्शनम्—
 नीरेज वरमल्लिका किसलय चूतस्य नीलोत्पलं
 कङ्कालिस्थितपल्लवं निजमहामाहात्म्यसमूचकम् ।

१ चित्र, २ रौरागापरमादिवर्णविलसन्नामानि * समुदयकान्ताममहा-
 त्कस्तूरिरागाक्षर ।

दत्वालीजनपञ्चकस्य हि करे कान्ताजनेभ्यो मुदा
 श्रीरायो वरदक्षिण प्रहितवान् शृङ्गारदुग्धाम्बुधि ॥२६॥
 धीरोदात्तादिनेतृणा शृङ्गारे षोडशात्मनाम् ।
 उत्तमादिविभेदेन प्रत्येक त्रिविधात्मता ॥२७॥
 शृङ्गाराख्यरसे नेतृभेदा लोके निरूपिता ।
 अष्टसख्योत्तराश्चत्वारिंशत्सख्या कवीश्वरै ॥२८॥
 एतेषा नायकाना तु सहाया उपनायका ।
 विदूषक पीठमर्दो विटो नागरिको मता ॥२९॥
 नायकस्य^१ प्रसंगे च नानाहासकरो मत ।
 विदूषक सता^२ लोकव्यवहारादिविच्च य ॥३०॥
 नायकोक्तेषु कार्येषु पटुर्नायकसद्गुणात् ।
 किञ्चिन्त्यूनगुण प्रोक्त पीठमर्दो बुधोत्तमै ॥ ३१ ॥
 नायकाना चित्रवृत्तेरानुकूल्यपरो विट ।
 नानाकलाप्रौढियुक्तो मतो नागरिको बुधै ॥ ३२ ॥
^३लुब्धाधीरोद्धता ये च स्तब्धा पापपरायणा ।
 ते पुनर्नायिकाभासा पुरुषा प्रतिनायका ॥ ३३ ॥
 पूर्वोक्ताना नायकाना यौवने तु गुणाष्टकम् ।
 सत्त्वसजातमित्युक्तमधुना तन्निरूप्यते ॥ ३४ ॥
 तेजो विलासो माधुर्य शोभा स्थैर्य गभीरता ।
 औदार्य ललितं चेति गुणाष्टकमिति स्मृतम् ॥ ३५ ॥
 प्राणाभावेऽपि पुरुषो धिक्कारादिपराभवम् ।
 क्षमते जातु नो यत्तत्तेज प्रोक्त विगारदै ॥ ३६ ॥

१ प्रसङ्गे ह, २ व्यवहारादि विध, ३ लुब्धादिरोद्धता
 ऐ च स्तब्धाः, ४. तेषु नर्नायिकाभासा ।

मर्धर्यं गमनं दृष्टिं सधैर्यां स्मितभाषणम् ।
 विलासाख्यगुणं प्रोक्तं गुणोद्भासिकवीज्वरैः ॥ ३७ ॥
 महत्यपि च सक्षोभे सूक्ष्मा चर्चा करोति यत् ।
 तन्माधुर्यं गुणं पसा बुध्यता बुधसत्तमैः ॥ ३७ ॥
 शोभाया दक्षता शौर्यं स्पर्धा नीचैर्गुणाधिकैः ।
 उद्योगाच्चलनाभाव स्थिरत्व विघ्नकोटिभिः ॥ ३९ ॥
 यत्प्रभाववशात् पुंसि विकृतिर्न कदाचन ।
 तद्गाम्भीर्यं सतामिष्टं जगत्त्रयमनोहरम् ॥ ४० ॥
 यत्प्राणानपि तद्वापि प्रियोक्त्या सज्जनानलम् ।
 सत्करोति तदौदार्यं लोकान्तरगुणो मतम् ॥ ४१ ॥
 शृङ्गाराकृतिचेष्टा तु सहजा कोमला बुधैः ।
 ललिताख्यगुणो लोके कथ्यते गुणशालिभिः ॥ ४२ ॥
 लक्षणं नायकानां हि प्रतिपाद्याधुना पुनः ।
 नायिकालक्षणं तासां भेदोऽपि च निरूप्यते ॥ ४३ ॥
 सामान्यनायकप्रोक्तविनयादिगुणान्विता ।
 नारी तु नायिका प्रोक्ता सापि नारी चतुर्विधा ॥ ४४ ॥
 स्वकीया परकीयाप्यनूढा साधारणा स्मृता ।
 अनूढा परकीयैव इत्येकेषां मते त्रिधा ॥ ४५ ॥
 धर्माङ्गकामयुक्तानां स्वकीया नायिका नृणाम् ।
 अन्यान्तु नायिका लोके मता केवलकामिनाम् ॥ ४६ ॥
 त्रिवर्णनायकेनेय देवतागुरुसाक्षिका ।
 उपात्ता नायिका स्वकीया सदाचारक्षमायुता ॥ ४७ ॥
 शीलार्जवधैर्यशौर्यलज्जायुक्ता पतिव्रता ।
 त्रिवर्गमाधिका लोके स्वकीया ललनोत्तमा ॥ ४८ ॥

कादम्बेश्वररायश्चित्तो(?)रुपद्माकरे
 हसी वीरनृसिहरायकृतसद्धर्माम्बुधे कौमुदी ।
 राज्ञी पट्टकृताभिषेकमहिता कन्दर्पकान्तोपमा
 कान्ता शीलवती सती^१ मधुरवाक् श्यामासमा राजते ॥४९॥
 अनुरागवता केनचित् पुसा स्वीकृता तु या ।
 स्वयमप्यनुरक्ता च सानूढा नायिका मता ॥ ५० ॥
 यथा दुष्यन्तनृपतेर्नायिका तु शकुन्तला ।
 तथा लोकानुसारेण सानूढा परिकीर्तिता ॥ ५१ ॥
 परकीयाप्यनूढेव ज्ञातव्या विद्यते तयो ।
 ईपद्भेद स्वयं रक्तानूढा नायकमिच्छति ॥ ५२ ॥
 परकीया^२ सखीवाचा याति नायकसनिधिम् ।
 इति केचिद्वदन्त्येके न हि भेदस्तयोरिति ॥ ५३ ॥

तद्यथा—

परेण परिणीता च परकीया मता पुन ।
 अनूढा कन्यका चापि परकीया प्रकीर्तिता ॥ ५४ ॥
 परेण परिणीता तु नास्ति मुख्यरसे क्वचित् ।
 अनूढा कन्यका प्रोक्ता गौणमुख्यरसे यथा ॥ ५५ ॥
 परपरिणीता नायिका मुख्यरसे उदाहर्तुमयोग्या । अनूढा
 कन्यका तु गौणमुख्ये च रसे उदाहर्तु योग्येत्यर्थ ।
 मनसिजनृपरूप रायबङ्ग सुधाब्धि
 तदमलगुणराश्याकर्णनाद् राजकन्या ।
 मदनकदनबाणै पीडिता कामयन्ते
 नुतरतिसमरूपा दिव्यलावण्यभाज ॥ ५६ ॥

१ काय समा राजते । २ सनिवाचा ।

कलाप्रौढियुता धैर्यराजिता दम्भपण्डिता ।
 वेश्या साधारणा प्रोक्ता नायिका विदुषा वरैः ॥ ५७ ॥
 दातैव नायकस्तस्या न हि कश्चित् परो भुवि ।
 रक्तेव सदने पुंसि निर्धन वर्जयेन्नरम् ॥ ५८ ॥
 कादम्बनाथनृप चारुमहासमृद्ध-
 वेश्याजना रतिसमानमनोज्ञरूपा ।
 कामैन्द्रजालिककृताद्भुतमोहविद्या-
 कल्पा विभान्ति कुसुमास्त्रं शरौघवेश्याः ॥ ५९ ॥
 स्वकीया नायिका मुग्धा मध्या लोके तथा मता ।
 प्रगल्भेति त्रिधा सद्भिस्तासा लक्षणमुच्यते ॥ ६० ॥
 नवीनयौवना नारी नवमन्मथविक्रिया ।
 वक्रा सुरतलीलाया मुग्धा किञ्चिद् रूपा युता ॥ ६१ ॥
 आस्य नापि ददाति चुम्बनविधौ स्वाङ्ग निजालिङ्गने
 नो धत्ते नवमन्मथग्रहयुता लज्जाभरात् कुप्यति ।
 क्षेत्रारम्भसमानयौवनयुता कन्या नवोढा सती
 रायक्ष्मापतिनायकस्य जनयत्युल्लासन चेतसि ॥ ६२ ॥
 उत्पन्नयौवनोद्भूतकामा मध्या च नायिका ।
 रतिक्रियापरवशा न जानाति किमप्यसौ ॥ ६३ ॥
 चुम्बन्त परिरम्भण दृढतर कुर्वन्तमङ्गोद्भव
 श्रीराय निजनायक परमसतोष नयन्ती सती ।
 शृङ्गाराम्बुधिकौमुदी रतिमुखाम्भोधौ निमग्ना पर
 नो जानाति सुखातिरेकवशागा केलि^३ परा कामपि ॥ ६४ ॥
 अत्यन्तयौवनात्यन्तकामा नायकवक्षसि ।
 लीनेव सुरतारम्भे प्रगल्भा पारतन्त्र्यभाक् ॥ ६५ ॥

१ 'महासवेश्याजनारति । २ शवाघ । ३ केशि ।

श्लिष्यन्त स्मररायनायकवर स्पृष्ट्वा प्रगल्भा सती
 मोहोद्वेकवशात् पर परवशा केलीविधौ राजते ।
 लक्ष्मीर्वक्षसि वा स्मरेशलिखित तज्जीव(? सज्जीव)चित्र रते
 शृङ्गाराम्बुधिजातनिश्चलतरा श्रीकल्पवल्लीव सा ॥६६॥
 धीरात्वधीरा लोके हि धीराधीरेति सा मता ।
 त्रिविधा नायिका मध्या गुणशालिकवीश्वरै ॥ ६७ ॥
 उपहासयुता या च वक्रवाचा स्वनायकम् ।
 खेदयेत्सापराध सा मध्या धीरा प्ररूप्यते ॥ ६८ ॥
 श्रीराय ते नभसि वक्षसि कौमुदीय
 भाले वरे मकरिका वरवज्रमस्ति ।
 तत्पुण्यमत्र महदस्ति तथा फल च
 तत्रैव तिष्ठ न तु मा स्पृश याहि याहि ॥ ६९ ॥
 सापराध निजेश या वचसा कर्कगेन हि ।
 रुदती भेदयेत् सा त्वधीरा मध्या मता यथा ॥ ७० ॥
 श्रीराय निजगेहमागतमिम दृष्ट्वा सतीत्यब्रवी-
 न्नाथात्रागमन नवीनमिदमाश्चर्यं च पुण्य मम ।
 मौक्तिक विचकिलस्रग्गन्धवज्र त्वया
 धन्याह सुकृती त्वमेव भुवने नेत्राश्रुवारान्विता ॥ ७१ ॥
 प्रगल्भा नायिका त्रेधा धीराधीरे पुनस्तथा ।
 धीराधीरेति कथिता नेतृनिश्चयकोविदै ॥ ७२ ॥
 कृतापराध सुरते नायक दु खयेद् रुषा ।
 या च या वादरेणास्ते सावहित्था सकोपना ॥ ७३ ॥
 तादृश प्रति भर्तार सावशा वा प्ररूप्यते ।
 प्रगल्भधीरा भुवने कामसिद्धान्तवेदिभि ॥ ७४ ॥

कोपालिङ्गितलोलकेन वचसा मर्मस्पृशा ममसि १७
मालाघातनलीलया निजपति भीति नयन्ती सती ।
श्रीराय निजकामिनी तममल हार गृहे नागसे (? गृहेऽनागत)
कोप भावजपूज्यराज्यसदन(?) चित्तेऽकरोत्कोविदा ॥ ७५ ॥
श्रीराये गृहमागते हरिलसत्पीठ प्रदाय स्वय
ताम्बूल हरिचन्दन विचकिल कर्पूरसारोच्चयम् ।
सा कान्ता चनुरङ्गचारुकलया केलीविधि कुर्वती
नानालीजनसनिधौ गतरति कोप कृतार्थ व्यधात् ॥ ७६ ॥
निजेश तर्जन कृत्वा सताडयति या वधु ।
अधीरा सा प्रगल्भा च नायिका परिकीर्तिता ॥ ७७ ॥
कोपान्नायिकया निजेगनृपति श्रीरायबद्ध गो गृही
मालत्या कृतमालया श्रुतिगतै श्रीकर्णपूरैरपि ।
वामेनाङ्घ्रितलेन रोधनयुजा सताड्यमानो हसन्
शान्तस्तोपपर कृती सुकृतिनामग्रेसरो जायते ॥ ७८ ॥
वक्रवाच सोपहासा या ब्रूते रमणी क्रुधा ।
धीराधीरा प्रगल्भा सा नायिका कथिता बुधै ॥ ७९ ॥
श्रीराय भो नगसि पश्यसि दैन्यवाच
ब्रूये मनोज्ञतरवस्तुततीमुदासी (?) ।
सत्य तथैव भुवने न च कोऽपि क्षोषो
दृष्टस्तथापि यमपाटिजनस्य कोप (?) ॥ ८० ॥
त्रिभेदसयुता मध्या प्रत्येक द्विविधा पुन ।
ज्येष्ठा चेति कनिष्ठा च षड्विधाभूत् सता मते ॥ ८१ ॥
एव प्रगल्भा कथिता षड्विधा कविपुङ्गवै ।
ज्येष्ठाकनिष्ठयोरत्र दृष्टान्त प्रतिपाद्यते ॥ ८२ ॥

१. मम पाटि° ।

कासार जललीलया परिगते दृष्टो रमण्या नृप
 श्रीरायो जलसेचनं परिलसद्यन्त्रेण कृत्वा सतीम् ।
 मज्जन्ती सरसीजले भयवशात्कृत्वा परा कामिनी
 चुम्बित्वाधरपान^१सज्ञजलधौ तन्तन्यते मज्जनम् ॥ ८३ ॥

चुम्ब्यमाना नारी ज्येष्ठा । इतरा कनिष्ठा ।

नायिकालक्षण तासा भेद चोक्त्वाधुना पुन ।

तासामग्राववस्थास्ता प्ररूप्यन्ते भृग मया ॥ ८४ ॥

स्वाधीनपतिका नारी काचिद्वासकसज्जिका ।

कलहान्तरिता काचिद्विप्रलब्धा परा मता ॥ ८५ ॥

विरहोत्कण्ठिता काचित् काचित् प्रीपितभर्तृका ।

खण्डिता रमणी काचित् काचिदन्त्याभिसारिका ॥ ८६ ॥

यस्या सामीप्यमाश्रित्य यदधीन पति सदा ।

स्वाधीनपतिका नारी सा प्रोक्ता रसकोविदै ॥ ८७ ॥

काञ्चीनारी नृपतितिलको रायबङ्ग सदा

स्वारुह्याङ्क पिवति मधुर चाधर प्रेक्षतेऽङ्गम् ।

तत्सलाप निशमयति वै सौरभ जिघ्रतीद

स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा वरकुचयुग मोदते कामतन्त्र ॥ ८८ ॥

प्रियस्यागमन श्रुत्वा मुदा भूषणभूषिता ।

या नारी सा स्तुता लोके सता वासकसज्जिका ॥ ८९ ॥

श्रीरायागमनोत्सुका रतिसमा नारी मनोहारिणी

सालकाररसोरुवृत्तिगुणसद्गीतिप्रभावान्विता ।

नानावर्णनया कवीन्द्रकृतया युक्ता^२ सशय्या सदा

सार्था सूक्तिविलासिनी गतमला चारु प्रबन्धायते ॥९०॥

आगत नायक कोपात्तिरस्कृत्य तदर्थिनी ।

या दु खपीडिता सात्र कलहान्तरिता यथा ॥ ९१ ॥

१ 'सङ्घर्ष' । २ सशय्यासदा ।

भो भो निष्ठुरभापिणि प्रियतमे श्रीरायवद्भ पति-
 निर्धतो रतिनाथव्याहतकरोऽप्यज्ञानदोषात्त्वया ।
 दु ख त्व विदधासि चेत् पुनरसौ नायाति पुण्याम्बुधि
 गेपस्त्रीसरसीजचारुनिकरे श्रीराजहसायते ॥ ९२ ॥

नागते नायके गेह सकेतविषय यदा ।

तदावमानिता नारो विप्रलब्धा मता यथा ॥ ९३ ॥

सरसमधुरवाणीभापिता नायकेन

तदमलवचनेऽह प्रत्यय साधु कुर्वे ।

उरुतरसमयालीप्रापिता तेन दूति

नहि नहि मम नाथ प्रत्ययो नापि कुत्र ॥ ९४ ॥

असत्यरहिते नाथे विलम्बनयुते सति ।

उत्कण्ठा कुरुते या सा विरहोत्कण्ठिता मता ॥ ९५ ॥

श्रीराये निजनायके रतिपतौ काल चिर नागते

नारी चन्द्रमस न पश्यति मनोजातेष्टचापेहया ।

नारीवृन्दवच शृणोति न कलकण्ठाना स्वराणा धिया

द्रष्टु नेच्छति कौमुदी विचकिला (? विचकिता) सारोस्वाण-

भ्रमात् ॥ ९६ ॥

देशान्तर गते नाथे या नारी मानसी व्यथाम् ।

करोति सा मता लोके बुधै प्रोषितभर्तृका ॥ ९७ ॥

राये दिग्विजयाय सैन्यकलिते याते स्वकीया सती

स्नान मुञ्चति भूषण च मलिनं गृह्णाति चीनाम्बरम् ।

माला चन्दनलेपन परिलसत्कस्तूरिकाचित्रक

त्यक्त्वा गायति वीणया निजपते सौभाग्यमाला पराम् ॥ ९८ ॥

ज्ञातमन्मथचिह्ने या नारीर्ष्या विदधाति सा ।

खण्डिता रमणी प्रोक्ता नायके रसिकोत्तमे ॥ ९९ ॥

मनसिज तव कार्यं मन्मथो वेत्ति रार्द-
 महमपि तव काये गोपिते वेद्मि किञ्चित् ।
 अनिकटनिवासी वामपादोऽर्पितोऽस्या
 विलसदरुणवर्णो दृश्यते राय साक्षात् ॥ १०० ॥
 नाथ सरति या नारी दूती वा सारयत्यसौ ।
 प्रोक्ताभिसारिका लोके नायिकाभेदवेदिभि ॥ १०१ ॥
 वञ्चित्वात्मीयलोक या पति गच्छति सागसम् ।
 सा रायवङ्गभूमीशशासनाद्भूतिमृच्छति ॥ १०२ ॥
 रसप्रकरणे प्रोक्तरुचतुर्धा विप्रलम्भक ।
 पूर्वानुरागो मानरुच प्रवास करुणात्मक ॥ १०३ ॥
 वियुक्तनायकस्यासौ वियुक्ताया स्त्रियोऽपि च ।
 शृङ्गारो विप्रलम्भाख्यो वक्तव्यो वदता वरै ॥ १०४ ॥
 नवीनालोकनाज्ञातरागयोरवितृप्तयो ।
 पूर्वानुरागो दम्पत्योरवस्था परिकीर्त्यते ॥ १०५ ॥
 अन्यस्त्रीसगमादीर्घ्या विकारो मान उच्यते ।
 परदेश गते नाथे प्रवासो विरहात्मक ॥ १०६ ॥
 अनुरक्तस्य नाथस्य नायिकायारुच तादृश ।
 एकस्य मरणे जात शृङ्गार करुणात्मक ॥ १०७ ॥
 खण्डिताया नायिकाया शृङ्गारो मान उच्यते ।
 प्रोपितप्रियनारीषु प्रवास परिकीर्तित ॥ १०८ ॥
 कलहान्तरिता या वा विप्रलब्धा च या सती ।
 विरहोत्कण्ठिता या च तासु पूर्वानुरागक ॥ १०९ ॥
 परलोक गते नाथे कामिन्या वा प्ररूप्यताम् ।
 अवशिष्टजने सद्भि शृङ्गार करुणात्मक ॥ ११० ॥

१ अनिकटनिवासी वामपादापितोऽस्या ।

आसा स्त्रीणा सखी दासी लिङ्गिनी प्रतिवेगिनी ।
 धात्रेयी गिल्पिका कारुर्दूत्य प्रोक्ता स्वय तथा ॥ १११ ॥
 भो भो राय मनोजपातकमहो क्रूरेण सपीड्यते
 नारी मुञ्चति वाग्विलाससरणी धत्ते तनुत्व तनो ।
 आहारोऽपि न रोचते भ्रमवशा त्वद्भावचित्र दृशा
 दृष्ट्वाऽलिङ्गति चुम्बति त्वरितमागत्येह ता रक्षतात् ॥ ११२ ॥
 पूर्वोक्तनायिकाना तु यौवने सत्त्वसभवा ।
 अलङ्कारा प्ररूप्यन्ते विशति कविकुञ्जरे ॥ ११३ ॥
 भावहावौ तथा हेला गोभा कान्तिञ्च दीप्तिका ।
 मधुरत्व तथा चोक्त प्रागल्भ्यं च वदान्यता ॥ ११४ ॥
 धैर्यं लीला विलासञ्च विच्छित्तिविभ्रमस्तथा ।
 किलकिञ्चिनमप्युक्त तथा मोट्टायित तथा ॥ ११५ ॥
 अथ कुट्टमित चोक्त विब्रोको ललित तत ।
 विह्वन परिकीर्त्यन्ते लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ ११६ ॥
 एषामाद्यास्त्रयो देहसभवा कथितास्तत ।
 सप्तालङ्कृतयो गीतास्तत स्वाभाविका दश ॥ ११७ ॥
 चित्तवृत्तिविशेषोऽय कन्दर्पविकृतिच्युत ।
 सत्त्व तस्याद्यविकृतिर्भावो मन्मथयोगिनी ॥ ११८ ॥
 भाविहावाद्यलङ्कारसाधनीभूत उच्यते ।
 भावोऽय सर्वशृङ्गाररसहेतुञ्च कोविदै ॥ ११९ ॥
 जात्यञ्चारूढराय पुरसरणिगत राजकन्या विलोक्य
 भ्रूविक्षेपाक्षिलौल्य कुसुमगरशराघातसपीड्यमाना ।
 मन्द मन्द स्वचेतो विगदपि नवपुष्पायुधाञ्चारूढा
 ररम्यन्ते मनोज्ञप्रकटितनिजलावण्यभाजो गृहाग्रे ॥ १२० ॥

१ त्वरितागत्य प्राण रक्षतात् ।

चित्तशृङ्गारभूतोऽय भ्रूलोचनविकारकृत् ।
 भाव एव बुधैर्लोकै हावालङ्कार उच्यते ॥ १२१ ॥
 आस्येन्दुनिर्गतमनोहरचन्द्रिकाभै
 पुष्पेषुवाणसदृशैस्तरलै कटाक्षै ।
 शृङ्गारभावगमकैर्नृपरायवङ्ग
 नारी भवन्तमवलोक्य सुखाब्धिगाभूत् ॥ १२२ ॥
 शृङ्गारगमको हावो य सुस्पष्ट प्रवर्तते ।
 स एव हेला विबुधै कथ्यते गुणराजितै ॥ १२३ ॥
 चकोरीसदृशीदृष्टिकटाक्षायतजिह्वया ।
 रमण्या तव रायेश रूप पेपीयतेऽमृतम् ॥ १२४ ॥
 रूपोपभोगतारुण्यै गरीरालकृति कृता ।
 या सैव शोभा गदिता महाकविमतानुगै ॥ १२५ ॥
 तरुण्या रूपसौन्दर्य स्मरचेतोहर वरम् ।
 दृष्ट्वा चित्रीयते रायो भूषणापेक्षया विना ॥ १२६ ॥
 मनोरगेण निबिडा सैव शोभा निगद्यते ।
 कान्ति स्त्रीणा मनोजाज्ञाशालिनीना बुधोत्तमै ॥ १२७ ॥
 आरामकुञ्जगतमुग्धसती विभेति
 ध्वान्ते गते निजकटाक्षमयूखजालै ।
 पादाब्जचारुनखदीधितिभिश्च राय-
 वङ्गान्विता सुरतकेलिविद सकाशात् ॥ १२८ ॥
 विस्तार याति या कान्ति सैव दीप्तिर्मता सताम् ।
 पुष्पायुधमहासेनादेश्यस्त्रीषु प्रवर्तते ॥ १२९ ॥
 श्रीरायवङ्गसहिता गुरुतुङ्गसौध-
 मारुह्य मारतरुणीनिभकोमलाङ्गी ।
 सिंहासने स्थितवती निजदेहदीप्त्या-
 काश प्रकाशयति चारुतडिल्लतेव ॥ १३० ॥

अवर्णनोयवस्तूना सबन्धेऽपि प्रवर्तते ।
 यद्ब्रव्यत्व तदेवात्र माधुर्यं प्रतिपादितम् ॥ १३१ ॥
 नृपतितिलकराये कोपिते कोमलाङ्गी
 मलिनवसनयुक्ता रम्यता नो जहाति ।
 घनकृतवरणाय कौमुदी सत्कला वा
 शितितनुमदनो वा रम्यता नो जहाति ॥ १३२ ॥

मनोवचनकायेभ्य समुत्पन्नभयस्य या ।
 प्रगल्भता निवृत्ति सा ज्ञातव्या बुधकुञ्जरै ॥१३३॥
 मनोवचनकायजनितभीतिरहित कलागास्त्रप्रयोगचातुर्यं प्रागल्भ्य-
 मिति भाव ।

यद्गान परमामृत श्रुतिहर श्रुत्वा मुदा कोकिलो
 रौति प्राप्तसुखं गुकोऽपि वचन श्रुत्वा यदीय प्रियम् ।
 ब्रूते सूक्तिमिमा यदीयनटन दृष्ट्वा गिखी नृत्यति
 स्वात्मानन्दसमन्विता जयति सा श्रीरायकान्ता सती
 ॥ १३४ ॥

आयासे सति कामिन्या वहावपि गुणोत्तम ।
 विनयोत्कर्ष औदार्यमुच्यते कविनायकै ॥१३५॥
 नवकेलिविनोदेन श्रान्ता पानीयलीलया ।
 तन्वी विमुक्तनिद्रापि रायशय्या न मुञ्चति ॥१३६॥
 चापल्यरहिता चित्तवृत्ति स्थिरतराथवा ।
 तरुणीजनसबद्धा या सा धैर्यं निरूप्यते ॥१३७॥
 रायनाथस्य रागे या यादृशी रमणी तु सा ।
 कोपेऽपि तादृगी जाता महादेवीपदे स्थिता ॥१३८॥

१ लौति श्रातसुखं मुखोपि ।

क्रियाविशेषैरधिकैर्मनोहरतरैरपि ।
 नायकाभिनयो लीला नायिकाविहितो यथा ॥१३९॥
 हसति वसति चास्ते लोकते याति दत्ते
 गदति नदति गेते याचते राजतेऽलम् ।
 लिखति पिवति भुङ्क्ते रोदति^१ मोदते च
 नृपतितिलकरायो यादृशस्तादृशी सा ॥१४०॥
 दृष्टे निजेगे कामिन्या देहसजनितो भृशम् ।
 क्रियाद्यतिगय प्रोक्तो विलासो रसिकैर्यथा ॥१४१॥
 रायेग स्मरसनिभ स्मरसख क्षीराविचन्द्र मुदा
 दृष्ट्वा स्वद्यति कम्पते सृत्तिकर धैर्यं च मुञ्चत्यहो ।
 उत्कण्ठा^२ मनुते न नौति सरसालोक शरच्चन्द्रिका -
 सकाश रमणीमनोजनगठो कन्दर्पसिद्धान्तवित् ॥१४२॥
 तरुणीकायदेशे स्वीकृता स्वल्पाप्यलक्रिया ।
 करोति जनतानन्द या सा विच्छित्तिरुच्यते ॥१४३॥
 किसलययुतकर्णा मल्लिकाकुड्मलौघं
 कृतरुचिकरहारा मालतीस्रग्विभूषा ।
 मलिनवसनयुक्ता माधवी कन्दुकेन
 विहरति रमणी या साकरोद्रायसौख्यम् ॥१४४॥
 आयात नायक श्रुत्वा सभ्रमेण मुदा सती ।
 अस्थाने भूषण धत्ते यत्तद्विभ्रम उच्यते ॥१४५॥
 आगच्छन्त निजेश रतिपतिसदृश रायबङ्ग निशम्य
 प्रोद्भिन्नानन्दमूर्ति परवशगमनादञ्जनैर्लिप्तकण्ठा ।
 पीनोत्तुङ्गस्तनाग्रे मृगमदतिलकालकृता भालभागे
 हारालकारयुक्ता रतिसमरमणी चारुता^३ मूर्तिरास्ते ॥१४६॥

१ रोदते, २ मरुतेन नोति, ३ नूतिचित्ते ।

कृताश्रूणां गङ्गादीनां साकर्यं रमणीजने ।
 किलकिञ्चित्तमित्युक्तं शृङ्गाररसकोविदैः ॥१४७॥
 कादम्बनाथमदनेन सुधाधरेऽल
 सपीडिते मधुरचुम्बनपानपूर्वम् ।
 तन्वी तनोति मुदमश्रु च तर्जनं च
 सीत्कारताडनविनोदपदप्रहारात् ॥१४८॥
 नाथस्य चित्रे वस्त्रे च प्रतिमाभरणादिषु ।
 नाथभावेन या बुद्धिः सा मोट्टायितमुच्यते ॥१४९॥
 स्मृत्वा निजैः स्वाङ्गस्य भङ्गो जृम्भणपूर्वकः ।
 पृष्ठादिनमनादिर्वा मोट्टायितमुद्गीरितम् ॥१५०॥
 रायरूपपटी दृष्ट्वा तन्वी मोहेन चुम्बति ।
 आलिङ्गति च रायेन्द्र इति मत्वा प्रमोदिनी ॥१५१॥
 आलीजनेन नृपकुञ्जररायवङ्गे
 सर्वाङ्गैः मनसि तत्स्मरणं विधाय ।
 गात्रं विवर्तयति बाहुयुगं च तन्वी
 चक्रं करोति मदनग्रहपीडिता सा ॥१५२॥
 आलिङ्गने चुम्बनादौ कृते वा जीवितेशिना ।
 अन्तरङ्गे सुखं बाह्ये रोषं कुट्टमितं यथा ॥१५३॥
 आलिङ्गय चुम्बति नृपे सति रायवङ्गे
 नारी मनोजसुखवार्धिगतापि चित्ते ।
 हस्तेन कम्पनयुतेन निवारयन्ती
 रोषं करोति पुलकालिविराजमाना ॥१५४॥
 गर्वगौरवमालम्ब्य तरुण्यानादरं कृतं ।
 जीवितेऽपि स बिम्बोकं कथ्यते रसिकैर्जनैः ॥१५५॥

आगत्य रायनृपतौ निजपादयुग्मे
 नत्वापराधमखिल रमणि क्षमस्व ।
 इत्युक्तिमात्तविनया वदति प्रवीणा
 मर्मज्ञया वनितया न कृत कटाक्ष ॥१५६॥
 शरीरावयवन्यास स्निग्धकोमलतायुत ।
 तरुणीजनसबन्धो ललित प्रतिपाद्यते ॥१५७॥
 भ्रूविक्षेप किसलयमृदु वाग्विलास सुमाभ
 नेत्रालोक कुवलयनिभ पादपङ्केजयानम् ।
 चन्द्रौपम्य मधुरहसन कौमुदीसाम्ययुक्तं
 कृत्वा कान्ता जनयति मुद रायभूमीश्वरस्य ॥१५८॥
 वक्तु योग्यमपि स्वान्तस्स्थित नारी निजेशिना ।
 न ब्रूते लज्जया यत्तद्विहृत परिभाषितम् ॥१५९॥
 उद्याने प्रीतियुक्ता विमलसलिलसत्क्रीडनेच्छापि कान्ता
 प्रासादारोहरक्ता मधुरतरलसत्कन्दुकक्रीडनेच्छा ।
 दोलालीलामनीषा सुकविकृतमहाकाव्यगोष्ठीप्रसक्ता
 न ब्रूते ब्रीडया या मुदमनयदिमा तन्मनोज्ञो निजेश ॥१६०॥
 विनयादिगुणा प्रोक्ता नेतृसाधारणा हरा ।
 गुणाष्टक च दृष्टान्तास्तेषामूह्या विवेकिभि ॥१६१॥
 यथोचित नायकोक्तभावहावादयो गुणा ।
 तेषामुदाहृतिर्ज्ञेया नायकेऽपि विशारदे ॥१६२॥
 भो भो वीरनृसिहराय नृपते लोकत्रये सन्ति ये
 नेतारो वहवञ्च तेऽपि सुलभाञ्चेतोहरा नो सताम् ।
 नानावाग्मिकवीश्वरस्तुतिपदानेकोरुकीर्तिप्रथ
 धीरोदात्ततया प्रसिद्धपुरुषो लोके भवानेव वै ॥१६३॥
 इति नायकभेदनिञ्चयो नाम चतुर्थ परिच्छेद ।

दशगुणनिश्चयो नाम

पञ्चमः परिच्छेदः

गुणरोतिवृत्तिराय्यापाकाना लक्षणं मया ।
तल्लक्षणार्थिना नृणा बोधाय प्रतिपाद्यते ॥ १ ॥
निर्गुणा रमणी लोके यथा सद्भिर्न पूज्यते ।
निर्गुण काव्यबन्धोऽपि तथा नार्च्यं कवीश्वरै ॥ २ ॥
अतो गुणा प्रकीर्त्यन्ते पूर्वगास्त्रानुसारत ।
कामिराय नराधीन श्रूयता भवताधुना ॥ ३ ॥
सुकुमारत्वमौदार्यं श्लेष कान्ति प्रसन्नता ।
समाधिरोजो माधुर्यमर्थव्यक्तिस्तु साम्यकम् ॥ ४ ॥
एते दशगुणा प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाषिता ।
यथासख्य मया तेषा लक्षण प्रतिपाद्यते ॥ ५ ॥
श्रुतिचेतोद्वयानन्दकारिणा कोमलात्मनाम् ।
वर्णाना रचनान्यास सौकुमार्यं निरूप्यते ॥ ६ ॥
श्रीरायवङ्गक्षितिनायकस्य कीर्तिविशाला वरचन्द्रिकैव ।
न चेत् त्रिलोकीजनचित्तजात सतापजालं क्व निराकरोति ॥ ७ ॥
अर्थचारुत्वगमक पदान्तरविराजितम् ।
पदाना यदुपादान तदौदार्यं मत यथा ॥ ८ ॥
शब्दानामभिधेयानां गुणोत्कर्षा यदाथवा ।
तदौदार्यं मत लोके तदुदाहरणं यथा ॥ ९ ॥
कादम्बनाथस्य मदन्धशूरक्षोणीधरोत्तुङ्गमहागजेन्द्र ।
दिग्दन्तिनैरावतनामकेन स्पर्धा विधत्ते जगदद्भुतोऽसौ ॥ १० ॥

१ °जाता, २ गुणोत्कर्षाय योऽथवा, ३ दिगतिनैरावत° ।

परस्परं प्रयुक्तानि स्यूतानीव पदानि वै ।
 निबिडानि प्रवर्तन्ते यत्र स श्लेष उच्यते ॥ ११ ॥
 यस्योत्तुङ्गविशालकीर्तिविसर दृष्ट्वा जगन्मोदते
 क्षीराब्धिर्दिगिभो महाधवलमा व्योमापगावन्धुरा ।
 नानाकारविचित्रगारदमहामेघावलीप्रोल्लस-
 त्कैलासाचलभूतिसारमिति ता मत्वा जगज्जृम्भितम् ॥१२॥
 अल्पप्राणाक्षराण्येव निबिडानि पदानि वै ।
 यत्र स श्लेष इति वा केचिल्लक्षणमूचिरे ॥१३॥

तदुदाहरणमिदम्—

उल्लसन्ती त्वदीयेय कीर्तिश्रीर्मूर्तिराजिनी ।
 जगद्वर्तिकवीन्द्राणा सूक्तजाले प्रकाशते ॥१४॥
 प्रयुक्तो लौकिकार्थोऽपि यथा भवति सुन्दर ।
 सा कान्तिरुदिता सद्भिः कलागमविगारदै ॥१५॥
 अथवा पदबन्धस्योज्ज्वलत्व कान्तिरुच्यते ।
 उदाहरणमेतस्या गीयते शृणु भूपते ॥१६॥
 उपवनजलकेलीसक्तकान्ताजनाना
 करकृतजलसेक सौधधारानिपेक ।
 विगलितकचबन्धान्मालतीमालिकाया
 विगलनमर्तितोष रायवङ्गे व्यदत्त ॥१७॥
 प्रयुक्तस्य पदस्यार्थो यत शीघ्र प्रतीयते ।
 पदेन वा प्रसन्नोऽर्थो यत्र सा वा प्रसन्नता ॥१८॥
 भो रायवङ्ग कीर्तिस्ते शरदभ्रविलासिनी ।
 व्योमगङ्गाप्रवाहाभा बम्भ्रमीति जगत्त्रये ॥१९॥

१ °भूरिसारमिति का मत्वा ।

अन्यवस्तुगुणारोपोऽन्यत्र योऽय प्रकीर्तित ।
 स समाधिरिति ज्ञेय कवितागुणकोविदै ॥२०॥
 आरोपादन्यधर्मस्य प्रकृतार्थस्य गौरवम् ।
 समाधिरुच्यते सिद्धिरिति वा लक्षण मतम् ॥२१॥
 श्रीरायस्य यशोऽमित कुसुमित त्यागाम्भसा तेजसा—
 नल्प तत्फलित विवेकगुणतो ध्वस्तश्च कल्पद्रुम ।
 खङ्गोऽथ नैरकालराहरमलस्तद्विक्रमस्तुङ्गत
 सूक्ति सारसुधा प्रतापतपनो लोकत्रये द्योतते ॥२२॥
 पद्ये समासबाहुल्य गद्ये वा हृद्यमुच्यते ।
 ओजो गुण कलागास्त्रविगारदकवीश्वरै ॥२३॥
 रङ्गत्तुङ्गतरङ्गसगविलसद्गम्भीर^३ शङ्खध्वनद—
 म्भोराशिसमानभीकरमहासेनासमूहाद्भुत ।
 वन्दिव्रातविनूयमानगुणसन्दोहप्रभावोज्ज्वल
 सग्रामाङ्गणराजमानतुरगो जेजीयते राजराट् ॥२४॥
 सरसो यत्र गव्दञ्च सरसोऽर्थोऽपि जायते ।
 तन्माधुर्यमिति प्रोक्त कर्णानन्दविधायकम् ॥२५॥
 सरसवचनलोला चारुलीला कटाक्षा
 मधुरहृमनचञ्चद्वक्त्रनीरेजशोभा ।
 मदगजगतिराजपादपङ्केजयुग्मा
 रतिसमवरकान्ता रायतोप तनोति ॥ २६ ॥
 अर्थनियत्वमित्युक्ते मुखगम्यत्वमुच्यते ।
 कष्टकल्पनया शून्यमर्थव्यक्तस्तदेव हि ॥२७॥
 श्रीरायकीर्तिजालेन व्याप्त जगदिद सदा ।
 शरच्चन्द्रिकया व्याप्तमिवाभाति मनोहरम् ॥२८॥

१ *धर्मप्रकृतार्थस्य, २ वर°, ३ शुभद्विद्दाम्भो° ।

मृदुस्फुटोभयाकारवर्णविन्यासशालिन ।
 बन्धस्य साम्य समता कथ्यते कविकुञ्जरै ॥२९॥
 श्रीरायवङ्गकान्ताया वदन चन्दिरायते ।
 हासो ज्योत्स्नायते नेत्रयुग्म नीलोत्पलायते ॥३०॥
 एतैर्गुणैर्भासुरकाव्यबन्धं महाकवीना मृदु वाग्विलासम् ।
 श्रुत्वा गुणौघ परिभाव्य चित्ते श्रीरायवङ्गेन्द्र मुद प्रयाहि ॥३१॥

इति दशगुणनिश्चयो नाम पञ्चम परिच्छेद ।



रीतिनिश्चयो नाम

षष्ठ परिच्छेद.

रीतिगून्या यथा कन्या न मान्या धरणीतले ।
तथा काव्य रीतिगून्य न मान्य रसिकैर्जनै ॥१॥
रीतीना लक्षण तस्माद् वर्ण्यते भेदसगतम् ।
शृणु रायनराधीन काव्यसारविगारद ॥२॥
माधुर्यादिगुणोपेतपदाना घटनात्मिका ।
रीतिरित्युच्यते सा च चतुर्भेदा सता मता ॥३॥
वैदर्भी-गौडिका-लाटी-पाञ्चालीति चतुर्विधा ।
इय रीतिश्च काव्यस्य स्वरूपमिति बुध्यताम् ॥४॥
शब्दाश्रितप्रसादादिगुणवेगिप्रयसभवात् ।
रीते काव्यस्वरूपत्व निश्चित कविपुङ्गवै ॥५॥
प्रसादादिगुणोपेता समामरहिताथवा ।
समस्तद्वित्रपदका स्वल्पघोपाक्षरावली ॥६॥
वर्गद्वितीयवहुला वैदर्भी रीतिरिष्यते ।
उदाहरणमेतस्या कथ्यते शृणु धीवन ॥७॥
छत्र सित दण्डयुत धृत ते सनीलरत्न कृपराय भाति ।
मञ्चञ्चरीक खरदण्डमब्ज सित यथा राज्यपदस्य चिह्नम् ॥८॥
ओज कान्तिगुणोपेता महाप्राणाक्षरान्विता ।
अत्यद्भुत (?अत्युद्भूट)ममामा च गौडी रीतिरितीष्यते ॥९॥
कल्मान्तानिलवेगधूर्णितचलत्तुङ्गोरुभृङ्गावली-
राजद्वीकरशीकरान्वितमहाडिण्डोरिषिण्डाकर. ।

श्रीमद्भूरिमहासमुद्रसमसेनानीकसभूतधु-
 लिजालस्थगिताशुमालिकिरणो जेजीयते रायराट् ॥१०॥
 सुकुमारत्वमाधुर्यकान्त्योजोगुणसयुता ।
 पञ्चषट्पदसक्षिप्ता पाञ्चाली रीतिरुच्यते ॥११॥
 नानारत्नविराजमानमुकुटो हारावलीभूषितो
 राजद्राजकदम्ब्रपूजितपदो गाम्भीर्यवीर्यान्वित ।
 त्यागोपात्तविशालकीर्तिविसर सिंहासनाधीश्वरो
 जीयाद् वीरनृसिहरायनृपति ससारसारोदय ॥१२॥
 उक्तरीतित्रययुता भूरिद्वित्वाक्षराच्युता ।
 अल्पघोषाक्षरा लाटी वृत्ति कोमलतायुता ॥१३॥
 गङ्गातुङ्गतरङ्गशारदघनक्षीराब्धिचन्द्रातप
 श्रीराजद्वरकीर्तिभासुरगुणो गम्भीरचित्तस्मर ।
 नानावाग्मिकवीश्वरस्तुतगुण सर्वज्ञकल्पो महान्
 श्रीवीरो नरसिंहबङ्गनृपतिर्जीयाद्धरित्रीतले ॥१४॥
 शृङ्गार करुण शान्तो हास्यो मधुरतागुण ।
 ओजोगुणयुता शेषा रसा पञ्च निरूपिता ॥१५॥
 प्रसादगुणसयुक्ता रसा सर्वे नव स्मृता ।
 शेषा सप्तगुणा योज्या यथायोग विशारदै ॥१६॥
 रीतिनीरेजषण्डेद्धमहाकाव्यसरोवरे ।
 कुरु केलीविधि राजहसदेशीयरायराट् ॥१७॥

इति रीतिनिश्चयो नाम षष्ठ परिच्छेद ।



वृत्तिनिश्चयो नाम

सप्तम. परिच्छेद.

वृत्तिशून्यो न सूत्रार्थो नृणा चेतसि भासते ।
वृत्तिरिक्त तथा काव्य रसिकाय न रोचते ॥१॥
वृत्तीना लक्षण तासा भेदोऽपि प्रणिगद्यते ।
शृणु कादम्बदुग्धाब्धिजातकौस्तुभ रायराट् ॥२॥
सरसार्थौघसदर्भलक्षणा वृत्तिरिष्यते ।
कैशिक्यारभटी भारती मता सात्वती वुधै ॥३॥
अत्यन्तकोमलार्थाना शृङ्गाररसयोगिनाम् ।
करुणाख्यरसे वाचा सदर्भो वाथ कैशिकी ॥४॥
अत्यन्तकर्कशार्थाना रौद्रवीभत्सयोगिनाम् ।
सदर्भरूपारभटी वृत्तिरुक्ता कवीश्वरै ॥५॥
हास्यशान्ताद्भुतरसोपेतार्थाना पृथक् पृथक् ।
ईषन्मृदूना सदर्भो भारतीवृत्तिरुच्यते ॥६॥
ईपत्कठिनवाच्याना सदर्भ सात्वतीष्यते ।
भयानकेन वीरेण रसेन सह योगिनाम् ॥७॥
शृङ्गारकरुणी लोकेऽत्यन्तकोमलता गतौ ।
अत्यन्तकठिनौ रौद्रवीभत्सौ रसनामकौ ॥८॥
हास्य शान्तोऽद्भुतरचेति स्वल्पकोमलता गता ।
ईपत्काठिन्यसंपृक्तौ मतौ वीरभयानकौ ॥९॥
चतसृणा वृत्तीना क्रमेण निदर्शनानि निरूप्यन्ते ।

१. तस्या, २ करुणाख्यरसेदाना ।

कैशिकी यथा -

शृङ्गारसारतरुणीजनकोमलाङ्ग-
 सर्वस्वचारुवनवृन्दवसन्तकल्प ।
 नारीकटाक्षशरजालविताडयमान
 श्रीरायनायकवर सुकृतीति भाति ॥१०॥

आरभटी यथा -

घण्टाटङ्कारभीकृद्रणपटुतरगन्धेभविभ्राजमान
 कोपाजापेन राजत्प्रलयगतमहावह्निकीलाभकेन ।
 धिक्कुर्वन् वैरिवर्गं गुरुविपिनसर्मं शाकिनीढाकिनीभ्यो
 दत्त्वा रक्तास्थिमज्जाबहुपललबलि भाति रायो रणाग्रे ॥११॥

भारती यथा—

कीर्तिस्तेऽप्यतिलङ्घते जगदिदं गम्भीरिमा वारिधि
 हस्त कल्पतरु पराक्रमगुण कण्ठीरव धीरता ।
 स्वर्णाद्रि नयजालमुग्रभरत सत्यं च भीमाग्रज
 रूप मन्मथभूभुज मृदुवचपीयूषपिण्ड नृप ॥१२॥

सात्वती यथा—

सग्रामाङ्गणभूतले प्रलयकालाग्निस्फुलिङ्गाकृति-
 क्रोधाडम्बररक्तलोचनयुगं श्रीरायचक्रेश्वरम् ।
 दृष्ट्वा वैरिनृपा भयज्वरवशान्मूर्च्छन्ति केचित् परे
 दानन्ति प्रतपन्ति यान्ति शरणं वल्मीकवीराधिकम्(?) ॥१३॥
 अत्यन्तकोमलार्थार्थेऽल्पप्रौढसदर्भलक्षणा ।
 मध्यमा कैशिकी सर्वरससाधारणा मता ॥१४॥

१ नयजालमुदधभरत ।

ईषन्मृदुसदर्भाप्यतिप्रौढार्थगोचरा ।

मध्यमारभती सर्वरससाधारणा स्मृता ॥१५॥

शब्दगतप्रसादमाधुर्यादिदशगुणाश्रितानामर्थविशेषनिरपेक्षाणा वैद-
भ्यादिरीतीनामर्थविशेषापेक्षविशिष्टकैशिक्यादिवृत्तिभ्यो भेदो द्रष्टव्य ।

असयुक्तमृदुवर्णबन्धोऽतिमृदुसदर्भः । सयुक्तकोमलवर्णबन्ध ईष-
न्मृदुसदर्भः । अविकटपरुषवर्णबन्ध ईषत्प्रौढसदर्भः । प्रागुक्तसदर्भ-
चतुष्टयस्य लक्षणचतुष्टय ज्ञातव्यम् ।

सद्वृत्तिबालविलसद्भ्रूगणप्रभावे

सत्काव्यबन्धगगने तत्र कीर्तिचन्द्र ।

लोकस्य तापहरणे चतुरो मनोज्ञ

कादम्बनाथ चिरकालमय विभातु ॥१६॥

इति वृत्तिनिश्चयो नाम सप्तम परिच्छेद ।

शय्यापाकनिश्चयो नाम

अष्टमः परिच्छेदः

अशय्या कामकेली वा कृत्तिलोके न शोभते ।
यतस्ततो बुधैर्वाच्य शय्यालक्षणमुत्तमम् ॥ १ ॥
पदानामानुगुण्य वान्योन्यमित्रत्वमुच्यते ।
यत् सा शय्या कलाशास्त्रनिपुणैर्विदुषा वरै ॥ २ ॥
कादम्बेश्वररायवङ्गनृपते सत्कीर्तिजालं मह-
ल्लोकाभोगविराजितं कविजनै क्षीराब्धिरित्युच्यते ।
कल्पानोकहपुष्पमम्बरनदीनीहारजालं हर-
स्तत् सर्वं सदृशं न तेन तदिदं तस्योपमा गच्छतु ॥ ३ ॥
अपूर्वं भोज्यमप्यत्र नि पाकं नैव रोचते ।
अपाककाव्यबन्धोऽपि तत् पाको निरूप्यते ॥ ४ ॥
चतुर्विधानामर्थानां गाम्भीर्यं पाक उच्यते ।
द्राक्षापाको नालिकेरपाकोऽयं द्विविधो मत ॥ ५ ॥
आलम्ब्य शब्दमर्थस्य द्राक् प्रतीतिर्यतोऽजनि ।
स द्राक्षापाक इत्युक्तो बहिरन्तस्फुरद्रस ॥ ६ ॥
आलम्ब्य शब्दमर्थस्य द्राक्प्रतीतिर्यतो न हि ।
स नालिकेरपाक स्यादन्तर्गूढरसोदय ॥ ७ ॥

द्राक्षापाको यथा—

रायनाथमनोज्ञाङ्गे लावण्यममृतोपमम् ।
आलकनेन तरुणी पीत्वा पीत्वा प्रमोदते ॥ ८ ॥

१. नालिकेरपाकश्च ।

नालिकेरपाको यथा—

चन्द्र दृष्ट्वा सरोज विकसति मधुरं नीलनीरेजयुग्मं

सकोच याति कोकद्वयममितसुख याति राहुश्च याति ।

भृङ्गीसकाशमन्द तिमिरमभिमुख याति बालातपश्च

श्रीराय कामतन्त्री मनसिजनृपतन्त्रस्य जानाति तत्त्वम् ॥९॥

शय्याविरेजसयुक्ते पाकपानीयभासुरे ।

काव्यपद्माकरे रायकीर्तिहसो विराजताम् ॥ १० ॥

इति शय्यापाकनिश्चयो नाम अष्टम परिच्छेद ।



अलंकारनिर्णयो नाम

नवमः परिच्छेदः

स्त्रीरूप निरलंकार न विभाति यथा भुवि ।
 तथा काव्य ततो ब्रूहि नानालकारसग्रहम् ॥ १ ॥
 काव्याङ्गभूतौ शब्दार्थौ श्रिताश्चित्रोपमादय ।
 अलकारा प्रकीर्त्यन्ते काव्यचारुत्वहेतव ॥ २ ॥
 काव्यशोभाकर काव्यधर्मोऽलकार उच्यते ।
 काव्यप्रयुक्तशब्दार्थान्समालम्ब्य प्रवृत्तिमान् ॥ ३ ॥
 शब्दार्थयोरलकारौ द्विविधौ परिकीर्तितौ ।
 यमक चित्रवक्रोक्तिरनुप्रासश्चतुर्विध ॥ ४ ॥
 शब्दालकृतय प्रोक्ता अर्थालकृतय पुन ।
 स्वभावोक्त्यादिभेदेन बहुधा प्रतिपादिता ॥ ५ ॥
 गम्भीरामलसूक्तिरत्नविलसत्सत्कीर्तिफेनाम्बुधे
 वैरिध्वान्तविघातदक्षसकलोपायाम्बुजश्रीकर ।
 भानो भासुररूपचारुललनारत्युत्सवानन्दकृत्-
 कन्दर्पाद्भुतभूषणानि शृणु भो श्रीरायबङ्गप्रभो ॥ ६ ॥
 विहाय शब्दालकारमर्थालकार उच्यते ।
 अर्थमाश्रित्य काव्यस्य चारुत्व जनयत्यसौ ॥ ७ ॥
 स्वभावोक्त्युपमे रूपकावृत्ती हेतुदीपके ।
 उत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासौ व्यतिरेकविभावने ॥ ८ ॥
 आक्षेपातिशयौ सूक्ष्मसमासौ च लवक्रमौ ।
 उदात्तापह्नुती प्रेयोविरोधौ रसवत्तथा ॥ ९ ॥

ऊर्जस्व्यप्रस्तुतस्तोत्रे विशेषस्तुल्ययोगिता ।
 पर्यायोक्त सहोक्तिश्च परिवृत्ति समाहितम् ॥ १० ॥
 श्लिष्ट निदर्शन व्याजस्तुतिराशीस्समुच्चय ।
 वक्रोक्तिरनुमान च विषमावसरौ तथा ॥ ११ ॥
 प्रतिवस्तूपमा सार भ्रान्तिमत्सशयौ तथा ।
 एकावली परिकर परिसख्या तत परम् ॥ १२ ॥
 प्रश्नोत्तर सकरश्च समुद्देश कृत क्रमात् ।
 एतेषा लक्षण लक्ष्य प्रोच्यते च यथाक्रमम् ॥ १३ ॥
 येन रूपेण यद्वस्तु वर्तते तस्य वस्तुन ।
 तेन रूपेण कथन स्वभावोक्ति प्रकीर्त्यते ॥ १४ ॥
 सक्रिय निष्क्रिय वस्तु यथा जगति वर्तते ।
 तथा तद्रूपकथन जातिरित्युच्यतेऽथवा ॥ १५ ॥

सक्रियवस्तुजात्युदाहरण यथा—

कारुण्योपेतचित्त सकलजनतते पालको धैर्यशाली
 राजद्राजाधिराजोत्करमणिमुकुटप्रोल्लसत्पादपद्म ।
 राज्यश्रीभारधारी सकलगुणगणोद्भासिपञ्चाङ्गमन्त्र
 सिद्धीशो रायबद्धक्षितिपतिरधुना भाति शक्तित्रयाढ्य ॥१६॥
 हरिनीलच्छविभासुरा वनगजोदीर्णोरुमुक्तावली-
 कृतदिव्याभरणा वरालिनिभधम्मिल्लास्ता मृगीलोचना ।
 वरझिण्टीकृतमालिका निजकराग्लिष्टात्मजातोत्करा
 वररायावनिप किरातवनिता पश्यन्ति दूरादिमा ॥ १७ ॥
 हीनेषु त्रस्तेषु बालादिषु च विशेषतो रम्या जातिरिति द्वितीय-
 निदर्शनम् ।

निष्क्रियोदाहरण यथा—

अय श्रीरायभूमीशस्त्रिवगंकलितो महान् ।
 शूरो धीरो महात्यागी राजनीतिविशारद ॥ १८ ॥
 आरामे रायबङ्गस्य कोकिला श्यामविग्रहा ।
 मधुरस्वरसपृक्ता वसन्ते चित्तहारिण ॥ १९ ॥

कलकण्ठजातिस्वभाववर्णनम् ।

चुम्बति स्पृशति प्राणनायिका जिघ्रति क्षणम् ।
 पिबति प्रेक्षते गाढमालिङ्गति च रायराट् ॥ २० ॥

क्रियास्वभाववर्णनम् ।

रतौ रायमहीनाथे सुखमन्तातिग महत् ।
 कामसिद्धान्तविज्ञान कामिनीचित्तरञ्जकम् ॥ २१ ॥

कलाज्ञानकामसुखगुणस्वभाववर्णनम् ।

कोटीरराजितो हारदिव्यकुण्डलभूषितः ।
 सिंहासनसमारूढो रायबङ्गो विराजते ॥ २२ ॥

किरीटहारादि विशिष्टद्रव्यस्वभाववर्णनम् । जातिक्रियागुण-
 द्रव्यस्वभावापेक्षया जात्यलंकारश्चतुर्विधः । पक्षान्तरमिदम् ।

येनोपमीयते यत्र यत्किञ्चिद्येन केनचित् ।
 प्रकारेणोपमा सा तस्या भेदोऽय प्रतन्यते ॥ २३ ॥

कादम्बनाथ सा कीर्तिर्धवला कौमुदीव ते ।

प्रतापमण्डलं रक्तं भाति बालार्कबिम्बवत् ॥ २४ ॥

धावल्यरक्तत्वधर्मभ्यामुपमेति धर्मोपमा ।

श्रीरायभूप कीर्तिस्ते शारदी कौमुदीव सा ।

तेजोमण्डलमुद्याति बालभास्करबिम्बवत् ॥ २५ ॥

अत्र धर्मनिरूपणं न कृतमिति उपमानोपमेयवस्तुमात्रकथनाद्
 वस्तूपमा ।

महाभागस्य रायस्य कामं दोग्धि महात्करं ।
 कामवेनुरिवागेषजगदानन्ददायिनः ॥ २६ ॥
 कामवेनौ कामदोहकत्वप्रसिद्धिं । विपयसिन हस्ते निरूप्यत इति
 विपर्यायोपमा ।

कादम्बनाथ कीर्तिस्ते गारदी कौमुदीव ना ।
 गारदी कौमुदी भाति त्वत्कीर्तिरिव विष्टपे ॥ २७ ॥
 परस्परोत्कपेणसिनी चान्योन्योपमा ।
 श्रीराय कीर्तिजालं ते तुल्य क्षीराब्धिनैव तत् ।
 अन्येन केनचित् साम्यं न प्रयाति जगत्त्रये ॥ २८ ॥
 परवस्तुनादृश्यं व्यावृत्तेनियमोपमा ।
 कादम्बैश्वर कीर्तिस्ते चन्द्रातपसमाभवत् ।
 अस्ति चेत् सदृश वस्तु तत्समापि विराजताम् ॥ २९ ॥
 अन्यनादृश्यसंभवकथनादनियमोपमा ।
 इन्दुमन्वेति कीर्तिस्ते कान्त्या बाल्लादनेन च ।
 भानुमन्वेति तेजस्ते महिमा रागतोऽपि च ॥ ३० ॥
 बाल्लादनकान्तिमहत्त्वारुणत्ववर्मनमुच्चयात् समुच्चयोपमा ।
 श्रीराय भवत. कीर्तिविशाला भवदायया ।
 मुवाकरायया ज्योत्स्ना भिर्देवेयं न चेतया ॥ ३१ ॥
 भेदान्तरनिरामेन अतिशयोपमा ।
 त्वत्कीर्तविव वावल्य न कौमुद्या तदस्ति चेत् ।
 गारदाभ्राभ्रगङ्गादावपि श्रीराय विद्यते ॥ ३२ ॥
 साधारणवावल्यस्य अन्यथाकल्पनादुत्प्रेक्षोपमा ।
 गारदी कौमुदी मप्तवार्धिं यदि विलङ्घ्यते ।
 वर्तते यदि नित्यं सा घनां कीर्तिस्तदोपमाम् ॥ ३३ ॥

१ °निमित्तेनियमोपमा ।

सप्तवर्धिलङ्घननित्यवर्तनस्य असभविन कथनादद्भुतोपमा ।
 चकोरनिकरो दृष्ट्वा त्वत्कीर्तिरिति कौमुदीम् ।
 उपेक्ष्य भवत कीर्ति याति ज्योत्स्नेति विभ्रमात् ॥ ३४ ॥

मोहोपमा ।

सकलङ्क सुधाशु कि कि साकाशं यशस्तव ।
 कम्पते जनताचित्तमिति श्रीरायभूपते ॥ ३५ ॥

संशयोपमा ।

इन्दुना जीयते पुण्डरीक त्वत्कीर्तिरेव तत् ।
 सकलङ्केन्दुजयिनी पुण्डरीक यतस्तत् ॥ ३६ ॥

निर्णयोपमा ।

धवला श्रीमती सर्वजनसंतापहारिणी ।
 कादम्बराय कीर्तिस्ते राजते कौमुदी यथा ॥ ३७ ॥

श्लेषोपमा ।

साम्बरराज विभाति (च) कौमुद्यत्यन्तवर्धिनो भाति [?] ।
 रायनृप कौमुदी वा कीर्तिस्ते सर्वदा भुवने ॥ ३८ ॥

उपमानोपमेययो सदृशरूपशब्दवाच्यत्वात् सतानोपमा ।

क्षीराब्धिना समानापि कीर्तिस्ते शीतभानुना ।
 क्षीराब्धि पीडितो देवै सकलङ्क सुधाकर ॥ ३९ ॥

निन्दोपमा ।

क्षीराब्धिरमृतस्थान चन्द्र सतापहृत् सदा ।
 क्षीराब्धिचन्द्रौ त्वत्कीर्त्या सदृशौ राय धीधन ॥ ४० ॥

प्रशसोपमा ।

१. In Kāvyaḍars'a this variety of Upamā is known as Samānoparā (v l सन्दानोपमा, सरूपोमा)

क्षीरवाराशिना तुल्या त्वत्कीर्तिरिति मे मन ।
 आचिख्यासति दोषो वा गुणो वा भवतु प्रभो ॥४१॥
 आचिख्यासोपमा ।
 पुण्डरीक चन्द्रबिम्ब त्वद्यशस्त्रितय प्रभो ।
 परस्परविहृद्ध भो भाति कादम्बरायराट् ॥४२॥
 विरोधोपमा ।
 भुवनव्यापिनी कीर्ति भवदीया सदातनीम् ।
 पुण्डरीक न शक्नोति जेतु तादृक् क्रमोज्झितम् ॥४३॥
 प्रतिषेधोपमा ।
 - त्वत्कीर्ति स्वाङ्गसजाता क्षीराब्धिजनितो विधुः ।
 - तथापि सम एवेन्दुर्नाधिको रायभूपते ॥४४॥
 चटूपमा ।
 न कौमुदीय कीर्तिस्ते न भानुस्तेज एव हि ।
 न राहु खड्ग एवाय प्रचण्डतरविक्रम ॥४५॥
 सुव्यक्तसादृश्यसभवात्तत्त्वाख्यानोपमा ।
 क्षीराब्धिशारदाभ्रादिवस्तूनामुपमा सदा ।
 विलङ्घ्य भूरिकीर्तिस्ते धत्ते स्वेनैव तुल्यताम् ॥४६॥
 असाधारणोपमा ।
 क्षीराब्धिगरदिन्द्रादिश्वेतवस्तुप्रभावति ।
 एकत्रमिलितेवेय कीर्तिस्ते राय राजते ॥४७॥
 वृत्तिरिय कदापि नाभूदिति अभूतोपमा ।
 'अमावास्यातिथौ रात्रौ शारदी चन्द्रिका यथा ।
 कलौ काले तथा भाति कीर्तिस्ते रायमन्मथ ॥४८॥
 असभावितोपमा ।
 शरच्चन्द्रनभोगङ्गाशारदाभ्रपयोर्णवान् ।
 अन्वेति हारनीहारौ कीर्तिस्ते रायकायज ॥४९॥

बहूपमा ।

शरदिन्दोरिवोत्पन्ना जनितेव पयोम्बुधे ।

शरदभ्रादिवोद्भूता कीर्तिस्ते भाति रायराट् ॥५०॥

विक्रियोपमा ।

इन्दौ ज्योत्स्नेव दुग्धाब्धौ चन्द्रो वा दुग्धवारिधि ।

धरायामिव कीर्तिस्ते भाति श्रीरायभूपते ॥५१॥

मालोपमा ।

श्रित्वा रायनृप भाति कीर्तिर्लोकत्रये भृशम् ।

श्रित्वा सुधाकर व्योम्नि कौमुदीव सुनिर्मले ॥५२॥

वाक्यार्थेन कश्चिद्वाक्यार्थो यद्युपमीयते सा वाक्यार्थोपमा । सा पुनर्द्विविधा एकेवशब्दा अनेकेवशब्दा इतीयमेकेवशब्दा वाक्यार्थोपमा ।

इन्दोरिव नृसिंहस्य कीर्ति ज्योत्स्नामिवामलाम् ।

चकोरीव विलोक्यासौ जनता याति समदम् ॥५३॥

इयमनेकेवशब्दा वाक्यार्थोपमा ।

नृसिंहराय कीर्तिस्ते जगत्येकैव राजते ।

एक एव नभोमार्गे ननु भाति सुधाकर ॥५४॥

इवादिशब्दप्रयोगाभावेऽपि साम्यप्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा ।

आह्लादनाय देवाना ज्योत्स्ना वसति चन्द्रिरे ।

नृलोकवर्तिजीवाना कीर्ति कादम्बभूपतौ ॥५५॥

एकक्रियाविधौ अधिकेन हीनं सदृशीकृत्य कथनं तुल्ययोगोपमा ।
रूपेणाङ्गजवत्कलायुततया शीताशुवत्तेजसा

तीक्ष्णेनार्कवदद्भुतोन्नततया देवाद्विवत् सपदा ।

देवाधीशवदुद्धतविक्रमतया पञ्चास्यवद्राजते

गाम्भीर्येण समुद्रवज्जयति स श्रीरायबङ्गो भुवि ॥५६॥

हेतूपमा ।

उद्वेगो विदुषा यत्र नास्ति तत्रोपमा मता ।
लिङ्गस्य वचनस्यापि भेदे हीनेऽधिकेऽपि च ॥५७॥
शारदाभ्रमिवापूर्वा कीर्तिस्ते चन्द्रिका इव ।
भवानिव महामेरुस्त्व सुरेन्द्र इवासि भो ॥५८॥

चतुर्णामिक श्लोक ।

उद्वेगो यदि वर्तेत भिन्नलिङ्गादिके सति ।
तत्रोपमा न वक्तव्या कलागमविशारदै ॥५९॥
बलाकेव शरच्चन्द्रो वेशन्त इव वारिधि ।
ग्रामस्वामीव देवेन्द्र प्रदीपो भानुबिम्बवत् ॥६०॥
एतादृशी सभासद्भिर्न वक्तव्या कदाचन ।
धर्ममात्रविवक्षायामुपमा कीर्त्यते बुधै ॥६१॥
शृगालवत्पुरालोकी मुनिराजो विराजते ।
अकृतावासको लोके फणीव मुनिसत्तम ॥६२॥
यथेववाद्यव्ययानि कल्पादिप्रत्ययास्तथा ।
अब्जास्यादिसमासश्च निभादिसमवाचका ॥६३॥
उपमालकृतात्रेते शब्दा वाच्या कवीश्वरैः ।
स्पर्धते हसतीत्यादि शब्दा वाच्याश्च कोविदैः ॥६४॥
यत्रोपचर्यतेऽभेद उपमानोपमेययो ।
तद्रूपकमलंकारस्तस्य भेदः प्रतन्यते ॥६५॥
कान्ता ताटङ्गचक्रं विरचितकबरीबन्धकान्तारदुर्ग
लावण्याम्भस्सुदुर्ग घनकुचगिरिदुर्ग नखोदारखड्ग ।
चक्षुर्लीलावलोकामितनुतशरजाल लसद्दृष्टिकेतु
कन्दर्पालापमन्त्रो विलसति चतुरो रायकन्दर्परराज्ये ॥६६॥

समस्तरूपकम् ।

श्रीरायो जलधि सुधाशुरमृत मेरु सुरानोकहो
भानु सिद्धरसो मनोजनपतिश्चिन्तामणिर्देवराट् ।
भोगीन्द्र सुरधेनुरम्बरमिद काले कलौ सर्वदा
भूत्वा तीर्थकरोऽपि सर्वजनतानन्दाय सर्वर्तताम् ॥ ६७ ॥

व्यस्तरूपकम् ।

कामिन्या पदपङ्कजेद्धमधुपो वक्त्राब्जसर्वधिता-
म्बोधिस्त्व वरनाभिचारुसरसि श्रीराजहस सदा ।
अङ्कालाननिबद्धभावजगजस्तुङ्गस्तनाद्रिस्थित-
व्याधोऽपाङ्गनिरीक्षणेषुविलसलक्ष्योऽसि बङ्गप्रभो ॥ ६८ ॥

समस्तव्यस्तरूपकम् ।

श्रीरायस्य मुखेन्दुस्ते (? इच) स्मितज्योत्स्नाविराजित ।
कस्तूरीतिलकाङ्गेद्धो भाति सूवितसुधारस ॥ ६९ ॥

स्मितादिषु ज्योत्स्नादित्व मुखे च चन्द्रत्वमारोप्य तद्योग्यस्थान-
विन्यासादेतत् सकलरूपकम् ।

स्मितज्योत्स्ना मुखे धत्ते कस्तूरीतिलकाङ्गनम् ।
सूक्तिपीयूषसार ते कादम्बेश्वर-रायराट् ॥ ७० ॥

मुखस्यावयवानां स्मितादीनां ज्योत्स्नादिष्वारोपाद् अवयविनां
मुखस्यानारोपाद् अवयवरूपकम् ।

मुखेन्दुस्ते जनानन्द करोति भ्रूविराजित ।
विशालनेत्रो निटिल धरन् श्रीरायभूपते ॥ ७१ ॥

अत्र भ्रूनेत्रनिटिलानामवयवानामनारोप अवयविनां मुखस्य चन्द्र-
त्वारोपाद् अवयविरूपकम् ।

१. व्याधोपाग, २ मुखदत्ते ।

मुख विगलनेत्र ते कपोलादर्शभासुरम् ।

दृष्ट्वा रज्यति लोकोऽय रायकादम्बनायक ॥ ७२ ॥

अत्र मुखस्यावयविनोऽनारोपाद् एकस्यावयवस्य कपोलस्य दर्पणत्व-
मारोप्य नेत्रस्यानारोपाद् एकावयरूपकम् । एव द्वयवयरूपक
त्रयवयरूपकमित्यादि योज्यम् ।

स्मितज्योत्स्नाविलास ते चारुनेत्रचकोरकम् ।

दृष्ट्वा मुख मुद याति नारीवृन्द नृसिंह भो ॥ ७३ ॥

अत्र ज्योत्स्नाचकोराणां सगे सति युक्तरूपकमिदम् ।

नारीजनो मुख दृष्ट्वा नेत्रेन्दीवरभासुरम् ।

स्मितचन्द्रिकया युक्त मोदते तव रायराट् ॥ ७४ ॥

अत्र चन्द्रिकेन्दीवरयोरयोगाद् अयुक्तरूपकमिदम् ।

मुखेन्दुना कपोलाक्षिभ्रूयुगाधरशालिना ।

त्व रूपकेतुर्नारीणां करोषि रतिसमदम् ॥ ७५ ॥

अवयविनो रूपणाद्रवयवानां रूपणारूपणाद् विषम रूपकम् ।

कादम्बनाथ लोकेऽत्र भवानेव विराजते ।

जगन्मोहकरापूर्वरूपभासुरमन्मथ ॥ ७६ ॥

विशेषणविशिष्टमन्मथारोपणात्सविशेषणरूपकम् ।

रायप्रतापभानुस्ते न मीलयति कैरवम् ।

अस्मत्पतिविभूत्यब्जपण्ड सकोचयत्यहो ॥ ७७ ॥

भानुकार्यस्य अकरणदर्शनादितरकार्यस्य करणदर्शनाच्च विरुद्धरूपकम् ।

तुङ्गत्वेन महामेरुर्मन्मथो रूपसपदा ।

विभूत्या सुरराजोऽसि रायकादम्बनायक ॥ ७८ ॥

तुङ्गत्वादिहेतुना कनकाचलादिरारोप्यत इति हेतुरूपकम् ।

अतिरक्त बालभानु विडम्बयति गर्वत ।

तेजोभानुरय रक्तो भवतो रायभूपते ॥ ७९ ॥

तेजोभानुबालभान्वोर्गौणमुख्ययो साधर्म्यदर्शनादुपमांरूपकम् ।

अरुण पद्मिनी तेजोभानुवीर श्रियं तव ।
 आनन्दयति रक्तोऽसौ कदाचित्सर्वदाप्ययम् ॥ ८० ॥
 अनयोर्भन्वोर्वैधर्म्यदर्शनाद् व्यतिरेकरूपकम् ।
 तेजोभानुस्समो भानुर्यदि तापविधानतः ।
 ततोऽन्योऽपि ततस्तस्य न सवादी तवाधिप ॥ ८१ ॥
 भानुसाम्यप्रतिषेधादाक्षेपरूपकम् ।
 कटाक्षचन्द्रिकापीयं परसंतापहारिणी ।
 सतापयति मा देव मत्पाप तव रायराट् ॥ ८२ ॥
 आक्षेपस्य समाधानकरणात् समाधानरूपकम् ।
 सत्कीर्तिचन्द्रिकाहार धृत्वा दिक्कामिनीरति ।
 श्रीरायचन्द्रकन्दर्पं श्रुत्वा गायति गायति ॥ ८३ ॥
 रूपकरूपकम् ।
 नाय राय सुधासूतिर्नेयं कीर्तिश्च कौमुदी ।
 नेद तिलकमङ्गोऽय नाधरो वटपल्लवम् ॥ ८४ ॥
 रायनृपत्वादिक निवर्त्य चन्द्रादित्वेन रूपणात् प्रकटीकृतगुणातिशय
 तत्त्वापह्नुतिरूपकम् ।
 त्रयास्त्रिशत् समाख्याता उपमालकृतेभिदा ।
 विशती रूपकस्यापि भेदा प्रोक्ता मया पुन ॥ ८५ ॥
 अन्तो नास्ति विकल्पानामुपमारूपकद्वये ।
 दिङ्मात्रं कथित शेषो विचार्यो बुद्धिशालिभि ॥ ८६ ॥
 उक्तस्य पुनरुक्ति स्याद्बहुधावृत्तिरीरिता ।
 अर्थावृत्ति पदावृत्तिरुभयीति त्रिधा मता ॥ ८७ ॥
 अर्थावृत्तिर्यथा -
 रुवन्ति कोकिला कीरा वदन्ति मधुपा वने ।
 वदन्ति राजहसाश्च रणन्ति श्रीधरेशितु ॥ ८८ ॥
 १. श्रीधरेशिन. ।

पदावृत्तिर्यथा -

श्रीरायक्षितिनाथकीर्तिवनिता भाति त्वदीया भृश
सप्ताम्ब्रोधिपु भाति सर्वगगने सर्वत्र दिग्मण्डले ।
भाति क्षमासु च भाति भाति सकले स्वर्गेऽप्यधोविष्टे
भातीय कविराजचारुवचने भातीयमत्यद्भुता ॥८९॥

उभयावृत्तिर्यथा -

क्रीडयत्यङ्गनालोको भवान् नृपगृहे सदा ।
गुहामु क्रीडयत्यद्य नारीवर्गं रिपुत्रज ॥९०॥
एतदावृत्त्यलकारत्रय दीपकालकारस्थान एव समतम् ।
हिनोति कार्यं व्याप्नोति ज्ञाप्य वा हेतुरुच्यते ।
उत्पत्तिसाधनत्वेन ज्ञप्तिसाधनतोऽपि वा ॥९१॥
कारकजापकौ हेतू उत्पत्तिज्ञप्तियोग्यकौ ।
यत्रोच्येते स हेत्वाख्योऽलकारोऽनेकधा मत ॥९२॥
हरिचन्दनहारेण मल्लिकामालया युत ।
प्रीतिं करोति नारीणां शृङ्गारार्णवचन्द्रमा ॥९३॥
निर्वर्त्यकारकविषयहेत्वलंकार ।

आरक्तमालतीमालातिलकाभरणोज्ज्वल ।
आलिङ्ग्य नायिका नाथश्चिन्ताभावाय कल्पते ॥९४॥
अभावरूपनिर्वर्त्यविषयहेत्वलंकार । पूर्वो भावविषय ।
रूपातिशयसपन्नो नुतदक्षिणनायक ।
रायबद्धो व्यधात् स्त्रीणां मन कौतूहलान्वितम् ॥९५॥
विकार्यविषयकारकहेत्वलंकार ।
इक्षुचापसमाकार कामसिद्धान्तवेद्यसौ ।
रायबद्धोऽवनीनाथो नारीरूपं प्रपश्यति ॥९६॥

प्राप्यविषयकारकहेत्वलकार ।

तव पल्लववज्रेण ^१मुक्तेनार्धमुधागुना ।

मन सुवोधमित्येव नायिका वक्ति नायकम् ॥१७॥

ज्ञापकहेत्वलकार ।

जातिक्रियागुणद्रव्यसज्ञाभेदाभिधायिना

आदिमध्यान्तवृत्तेन पदेवैकत्रवर्तिना ।

वाक्यार्थनिर्णयो यत्र भवेत्तद्दीपक मत

बहुधा वर्तमानस्य तस्य लक्ष्य प्रतन्यते ॥१८॥

कोकिला रणन कृत्वा नृसिह मोदयन्त्यलम् ।

खेदयन्ति च कान्ताया खण्डिताया मन परम् ॥१९॥

आदिवर्तिजातिपददीपकालकार ।

चरन्ति मदनोद्याने नृसिहरमणीजना ।

त्वद्वैरिवनितालोका विपिनेषु गुहासु च ॥१००॥

आदिवर्तिक्रियापददीपकालकार ।

रक्त कादम्बनाथेऽस्मिन् कामिनीना मनो भृशम् ।

प्रजाना मित्रलोकाना चित्त च विदुषामपि ॥१०१॥

आदिवर्तिगुणपददीपकालकार ।

हारेण रायवङ्गस्य कण्ठस्थेन मनो हृतम् ।

नारीजनस्य शीताशोर्मयूखोऽपि तिरस्कृत ॥१०२॥

आदिवर्तिद्रव्यपददीपकालकार ।

चैत्रेण सेवकेनासौ रायवङ्गो विनम्यते ।

पश्चाद्राजाधिलोकस्य वार्ता सम्यग्निरूप्यते ॥१०३॥

आदिवर्तिसज्ञापददीपकालकार ।

आरामे रायवङ्गस्य नृत्य कुर्वन्ति केकिन ।

प्रेक्षकाणा जनाना च जनयन्ति मनोमुदम् ॥१०४॥

मध्यवर्तिजातिपददीपकालकार ।

रायवङ्गमनोजात नारीलोको विलोक्ते ।

दिदृक्षावशतो गत्वा देवनारीजनोऽपि च ॥१०५॥

मध्यवर्तिक्रियापददीपकालकार ।

सत्कीर्त्या रायवङ्गस्य नृलोको धवलीकृत ।

पाताललोकसर्वस्वमूर्ध्वलोकोऽपि भामुर ॥१०६॥

मध्यवर्तिगुणपददीपकालकार ।

कादम्बनायको हारभूपितो नृनरायराट् ।

आस्ते सिंहासने दिव्यं पूज्यते च नरेश्वरै ॥१०७॥

मध्यवर्तिद्रव्यपददीपकालकार ।

कादम्बेगेन रायेण डित्थोऽय परिपालित ।

अत एव निजावासे स्थित्वा दीर्घं प्रमोदते ॥१०८॥

मध्यवर्तिसज्ञापददीपकालकार ।

कादम्बरायसदनाद्वहिरुद्यानवासिन ।

वदन्ति मधुरालाप फल चुम्बन्ति ते शुका ॥१०९॥

अन्त्यवर्तिजातिपददीपकालकार ।

कादम्बरायभूनाथ कुसुमायुधसनिभम् ।

दृष्ट्वा मुद स्वकीयोऽपि परकीयोऽपि ढौकते ॥११०॥

अन्त्यवर्तिक्रियापददीपकालकार ।

कादम्बरायनाथस्य सत्कीर्त्या विमलात्मना ।

जायते मानवाना च स्वर्गिणामपि सत्मुखम् ॥ १११ ॥

अन्त्यवर्तिगुणपददीपकालकार ।

सिंहासने महारत्नकीलिते प्रतिभासते ।

क्रीडत्यारामसदोहे हारालकृतरायराट् ॥ ११२ ॥

अन्त्यवर्तिद्रव्यपददीपकालकार ।

कादम्बनाथ रायेन्द्र लोकते प्रणमत्यपि ।

नानादेशगता वार्ता ब्रूते रम्या कपिध्वज ॥ ११३ ॥

अन्त्यवर्तिसज्ञापददीपकालकार ।

शास्त्र धर्मस्य सवृद्धयै स च पुण्यस्य तच्छ्रिय ।

सा श्री रायमहीनाथे सुखस्य खलु जायते ॥ ११४ ॥

इति दीपकत्वेऽपि पूर्वपूर्वापेक्षया वाक्यमाला प्रयुक्तेति
मालादीपकम् ।

श्रिय विपक्षवर्गस्य वर्धयन्ति चलानि वै ।

ह्लासयन्ति नृसिंहस्य मन्त्रा पञ्च सुनिश्चिता ॥ ११५ ॥

क्रियाया परस्परविरोधाद् विरुद्धार्थदीपकम् ।

मनोवेगयुता सत्त्वा दिव्यलक्षणभूषिता ।

दिवि भान्ति पतङ्गाश्वा भुवि रायतुरगमा ॥ ११६ ॥

मनोवेगादिधर्मेण^१ उभयेषा समानाना भानुक्रियासबन्धात् श्लिष्टार्थ-
दीपकम् ।

कान्तास्य वरमीक्षते घनकुचद्वन्द्व स्पृशत्युन्नत

श्लिष्यत्यङ्ग^२मनङ्गतन्त्रविदिय श्रीरायबङ्गो दरम् ।

चुम्बत्यङ्गति भावयत्यमति सस्त्रीणाति समोदते

जानीते विनयत्युदेति कुरुते संभाषते भासते ॥ ११७ ॥

१ उभस्वाना २ गमन ।

नानाक्रियाणामेककर्तृकारकेण सवन्धादेकार्थदीपकम् ।

अब्ज कूर्ममनङ्गराजशरधि कामेभसद्वन्धना-

लानं सिंहमपूर्वसारमरमी नाग गिरि वल्लरिम् ।

शङ्ख शीतकर तिलस्य कुसुम वज्र प्रवाल झष

चाप भृङ्गतति मयूरमसम दृष्ट्वा सदा मोदते ॥ ११८ ॥

श्रीरायवङ्ग इति अध्याहार कर्ता । एतदन्त्यक्रियादीपक प्राक
प्रदर्शितमपि भावचमत्कारसभवात्पुन प्रदर्शितम् । अनया दिशा
विचक्षणैर्दीपकान्तराण्यभ्यूह्यानि ।

यत्रार्थस्य स्वरूपेण विद्यमानस्य कल्पना ।

अन्यथा तमलकारमुत्प्रेक्षाख्य प्रचक्षते ॥ ११९ ॥

नून प्रायो ध्रुव शङ्के मन्ये सत्यमिवादिभि ।

शब्दे प्रकाशयते सेयमुत्प्रेक्षा कविपुङ्गवै ॥ १२० ॥

वाच्या प्रतीयमानेति सा चोत्प्रेक्षा द्विधा मता ।

मन्ये शङ्के ध्रुवादीना प्रयोगे प्रथमा मता ॥ १२१ ॥

मन्ये शङ्के ध्रुवादीना शब्दानामप्रयोगत ।

प्रतीयमानोत्प्रेक्षा तु द्वितीया विबुधैर्मता ॥ १२२ ॥

वाच्योत्प्रेक्षा पुन प्रोक्ता पदपञ्चागद्विधा बुधै ।

प्रतीयमानोत्प्रेक्षाष्टचत्वारिंशद्विधा मता ॥ १२३ ॥

तदुदाहृतिरन्यत्र बोद्धव्या बुद्धिशालिभि ।

मूलभेदौ निरूप्येते द्वाविमौ सग्रहत्वत ॥ १२४ ॥

शशधरमुरगङ्गा क्षीरवाराशिमुख्यान्

धवलगुणविशिष्टान् केचिदाहु स्वतोऽमून् ।

तव विशदयगोऽशस्पर्शनादर्जुनास्ते

सुकविविनुतवङ्गक्षमाप मन्ये सदाहम् ॥ १२५ ॥

स्वभावेन धवलाना चन्द्रादीना कीर्त्यंगस्पर्शनाद् धावत्य-
मन्यथा कल्पितम् । इय वाच्योत्प्रेक्षा ।

तव तेजोगुण लब्धु बालभानुरय पुन ।

पुन पूर्वाद्रिमारुह्य वसतीव तपस्यलम् ॥ १२६ ॥

क्रियायोगिना इवशब्देन व्यञ्जितोत्प्रेक्षा इयमपि वाच्योत्प्रेक्षा ।
प्रतीयमानोत्प्रेक्षायास्तु (? गुरुत्वा) तिगयाभावादुदाहरण पूर्वशास्त्रे
न कृतमिति नास्माभिरपि कृतम् ।

प्रस्तुतीकृत्य यत्किञ्चिद्वस्तुतस्सिद्धये पुन ।

अन्यस्यार्थस्य योग्यो योऽर्थान्तरन्यास एव स ॥१२७॥

कीर्तिप्रतापौ रायेण भुवनत्रयवर्तिनौ ।

लब्धौ पुण्यवता केन कि कि पुसा न लभ्यते ॥१२८॥

विश्वव्यापिनामार्थान्तरन्यास ।

वक्षोरङ्गनिवासिनी श्रियमिमा कृत्वा मुखाब्जस्थिता

वाग्देवी जयकामिनी विलसिता दोर्दण्डसद्मस्थिताम् ।

कादम्बक्षितिपे स्थिते वरयशस्कान्ता गृहान्निर्गता

लोके स्त्री सहते विवर्धनगता का वा सपत्नी श्रियम् ॥१२९॥

अयमपि विश्वव्यापी ।

श्रीकामिरायबङ्गोऽय कलौ काले सता मुदम् ।

उत्पादयति शीताशु कलावपि मुदे न किम् ॥१३०॥

विशेषस्थार्थान्तरन्यास ।

कान्तास्यचुम्बने सक्तो रायेन्द्रो याति समदम् ।

पद्मिन्या पङ्कजासक्तो भ्रमर कि न तुष्यति ॥१३१॥

श्लिष्टार्थान्तरन्यास । भ्रमर मधुकर कामुक इति ध्वनि ।
मधुद्रो भ्रमरश्चेति द्वाविमौ कामुकेऽपि च ।

नृसिंहोऽप्यभय दत्ते श्रीरायो जगता सदा ।
लोके विचित्रशक्तीना वस्तूना शक्तिरीदृशी ॥१३२॥

विरुद्धार्थान्तरन्यास ।

नीतियुक्तोऽपि रायस्य विक्रमो वैरिणा मन ।
सतापयति गत्रूणा पूर्वपाप हि तादृशम् ॥१३३॥

अयुक्तार्थान्तरन्यास ।

तिलकाङ्कितरायास्य मोदयत्यङ्गनाजनम् ।
साङ्कचन्द्रसम तोषवर्धन युज्यते ननु ॥१३४॥

युक्तार्थान्तरन्यास ।

रायप्रतापभानुस्तान् सतापयतु वैरिण ।
कीर्तिचन्द्रो धुनोतीमान् किं किं युक्त सदोषिण ॥१३५॥

युक्तायुक्तार्थान्तरन्यास ।

कीर्तिज्योत्स्नापि तापाय न किं तेजो वनानल ।
धुनोति चन्द्रपक्षश्चेद्वह्निपक्षो दहेन्न किम् ॥१३६॥

विपर्ययार्थान्तरन्यास ।

जगत्यर्थान्तरन्यासभेदा अन्येऽपि सन्ति हि ।
तेषा निदर्शन ज्ञेय यथाशास्त्र विचक्षणं ॥१३७॥
शब्दस्य वा प्रतीतेर्वा सादृश्ये विषये सति ।
वस्तुनोर्भेदकथन व्यतिरेकस्तयो पुन ॥१३८॥
जगन्मोहनरूपेण कुसुमास्त्रस्य सनिभ ।
रायवङ्गस्ततस्तस्य भेदो दृश्यत्वधर्मत ॥१३९॥

रायबङ्गवर्तिना - दृश्यत्वधर्मेण भेदकथनादुभयगतभेदस्य प्रतीति-
सिद्धत्वादेकव्यतिरेकालकार ।

यश प्रतापौ भवतो जगद्व्याप्तौ कविस्तुतौ ।

यश शारदचन्द्राभ बालभानुसम पर ॥१४०॥

यश प्रतापोभयभेदसाधकधात्रल्यरक्तत्वधर्मद्वयस्य पृथक्कथनादुभय-
व्यतिरेकालकार ।

उन्नतस्थानवृत्तोऽपि तेजस्व्यपि महानपि ।

राय त्वत्समता याति न भानू राहुपीडित ॥१४१॥

^२साक्षेपव्यतिरेकालकार ।

धरन्नपि महाभाग्यजनिता पूर्णसपदम् ।

एकदिक्पालनादिन्द्रस्त्वत्तो राय निकृष्यते ॥१४२॥

सहेतुव्यतिरेकालकार ।

उक्तव्यतिरेकालकारपञ्चक गब्दोपात्तसादृश्यम् । बालातप प्रतापश्च
धरतो भेदमीदृशम् । बालातपो भानुवर्ती प्रतापस्त्वयि वर्तते ।
रक्तत्वधर्मेण प्रतीयमानसादृश्ययोर्बालातपप्रतापयोर्भेदकथनात्प्रतीय-
मानसादृश्यभेदमात्रव्यतिरेकालकार ।

सकलङ्को निराधार कलाहीनश्च चन्द्रमा ।

श्रीरायबङ्गभूमिश त्वत्सम कथमुच्यते ॥१४३॥

जगदानन्दजनकत्वजगत्सतापहारित्वादिधर्मेण प्रतीयमानसादृश्ययो-
श्चन्द्ररायबङ्गयोर्मध्ये रायबङ्गस्याधिक्योपेतभेदकथनादाधिक्योपेत-
भेदलक्षणव्यतिरेकालकार ।

कादम्बरायो मारश्च रूपवन्तौ मनोहरौ ।

राय सिंहध्वजो मारो मीनकेतुर्विराजते ॥१४४॥

२ आक्षेपालङ्कार ।

शब्दोपात्तसादृश्ययो श्रीरायमारयो सदृशध्वजद्वयस्य भेदगमकत्वा-
त्सदृशव्यतिरेकालकार ।

राय कादम्बनाथोऽय नारीलोलदृगीक्षित ।

कुसुमास्त्रधरो भाति रत्तिदेवीदृगक्षित ॥१४५॥

प्रतीयमानसादृश्ययोर्मराराययो सदृशरतिलोचननारीलोचनाना
भेदगमकत्वादपर सदृशव्यतिरेकालकार ।

मुरराजश्रियो रम्य भोगीन्द्रमुखलालितम् ।

रायस्य राज्यं क्रमते प्रजापालनभासुरम् ॥१४६॥

रायराज्य प्रजापालनभासुरत्वेन राज्यजातेस्तुल्य सुरेन्द्रविभूति-
भोगीन्द्रमुखलालितत्वेन भिन्नमिति सजातिव्यतिरेकालकार ।

प्रकृत कारणं त्यक्त्वा यत्र हेत्वन्तर मतम् ।

विभाव्यते स्वभावो वा यत्र सा हि विभावना ॥१४७॥

अचन्द्रा चन्द्रिका कीर्ति प्रतापो भानुना विना ।

वालातपो मुग्ध चन्द्रो क्षीराब्धेस्ते नृमिह भो ॥१४८॥

चन्द्रादिकारण परित्यज्य कीर्तिचन्द्रिकादे श्रीरायनामकारणान्तर-
कल्पनात्कारणान्तरकल्पनाविभावना ।

अकारणमहाबन्धुकारणमहद्भवान् ।

अकारणदयालुश्च जनाना रायभूपते ॥१४९॥

अकारणपदेन हेतु निराकृत्य स्वभावेन बन्धुत्वादिकथनात्स्वभाव-
विभावना ।

प्रतिपेक्षस्य कथन प्रतीतिर्वा प्रजायते ।

न यत्राक्षेप इत्युक्तस्त्रिधा कालत्रयाश्रयात् ॥१५०॥

१ भास्करम् २. आचन्द्रा ।

रायो रणाङ्गणेऽरीणा जलं प्रविशता तृणम् ।
दशता कृतवल्मीकारोहणान्न व्यधाद्वधम् ॥१५१॥

अतीताक्षेपालंकार ।

कुतो ललाटे तिलकं करोति नृपरायराट् ।
साङ्गमिन्दु स्वकीयस्य सममिच्छति किं कृती ॥१५२॥

वर्तमानाक्षेपालकार ।

सापराधो नृपो राय कान्ताडम्बरकोपत ।
भीत्वा रतिगृहं रम्यं सोत्कण्ठोऽपि न यास्यति ॥१५३॥

अनागताक्षेपालकार ।

कीर्तिचन्द्रातपे शैत्यं न सत्यं तव रायराट् ।
यदि सत्यं विपक्षाणां सतापयति किं पुन ॥१५४॥

शैत्यविरोधिना संतापकर्मणा केनचित्पुसा शैत्यधर्मस्य आक्षिप्तत्वाद्ध-
र्माक्षेपालकार ।

रायबङ्गस्य कीर्तिर्वा नेति को बुध्यते भिदाम् ।
दृश्यते गुद्धधावलयप्रभा जगति नाश्रय ॥१५५॥

धावलयप्रभालक्षण धर्ममाश्रित्य कीर्तिरूपो धर्म्याक्षिप्त इति
धर्म्याक्षेपालंकार ।

राय कल्पान्तक युद्धे दृष्ट्वापि^१ रिपवोऽवशा ।
भयं न यान्ति वल्मीकतृणपानीयसश्रिता ॥१५६॥

भीते कारणं वधो वल्मीकाद्याश्रितैर्वैरिभिर्निषिद्ध इति कारणाक्षेपा-
लकार ।

रायस्यायल्लके ज्योत्स्नाहिमाम्बुमलयानिल- ।
कर्पूरसगमेऽप्यस्या शीतभावो न जायते ॥१५७॥-

१. रिपदोवदा ।

चन्द्रातपादिवस्तुसगमे कारणे सनिहितेऽपि शैत्यकार्यं न जातमिति
कार्याक्षेपालकार ।

रणे गृहीतो रायेण रिपुवर्गो वदत्यलम् ।

वधाभिलाषो यदि ते हन्तव्यो रणभैरव ॥१५८॥

हन्तव्य इत्यङ्गीकारमुखेनैव काक्वा स्ववधो निषिध्यत इत्यनुज्ञाक्षे-
पालकार ।

कलौ काले महादुष्टाँल्लुष्टाकादिकदुर्जनान् ।

निराकरोति श्रीराय प्रभुत्वेनैव राजते ॥१५९॥

आदिपदेनैव दुर्जननिषेधात् प्रभुत्वाक्षेपालकार ।

स्थितिर्वा ते गतिर्वा ते रमणास्तु ममाकृति ।

द्रष्टु न शक्यते पश्चात्तदेतत् सुविचार्यताम् ॥१६०॥

इति वदन्त्या नायिकया सादर वचन प्रयुक्तमिति सामर्थ्यादिनादरो
निषिद्ध इति अनादराक्षेपालकार ।

पश्य पश्यसि चेदन्यामस्तु तद्दर्शनं शुभम् ।

यावदागमनं तावत्तच्चिन्तास्तु मम प्रिय ॥१६१॥

इति वदन्त्या कान्तयाशीर्वचनमुखेन काक्वा कान्तगमनं निषिध्यत
इत्याशीर्वचनाक्षेपालकार ।

दास्यामि हारं गन्तव्यं त्वया तुभ्यं नमो नमः ।

अन्यथा वामपादो मे तव बुद्धिं वदिष्यति ॥१६२॥

इति ब्रुवाणयातिरक्तया कान्तया गमनसहायताकरणव्याजेन
प्रियप्रयाणं निषिद्धमिति साचिव्याक्षेपालकारः ।

याहि याहि निजेगं त्वं मम यत्नस्तथैव भो ।

तव प्रयाणे पाथेयं प्रागेव विहितं मया ॥१६३॥

प्रियगमनकार्ये यत्नकरणव्याजेन प्रियया निजेशगमन निषिद्धमिति यत्नाक्षेपालकार ।

क्षणालिङ्गनविघ्नाय रोमहर्षाय कुप्यता ।

प्रेम्णा निषिद्ध गमन तवेश न मया पुन ॥१६४॥

प्रेमाधीनतया कान्तया निजेशगमन निषिद्धमिति परवशाक्षेपालकार ।

पुनरुज्जीवनोपाय सजीवनमहापदम् ।

दत्त्वा याहि निजेश त्व कन्दर्पो मा हनिष्यति ॥१६५॥

जीवनोपायदुर्घटत्वनिवेदनव्याजेन निजेशगमन निषिद्धमित्युपाया-
क्षेपालकार ।

यामीति वचन नाथ ते मुखान्निर्गत वरम् ।

याहि वा वस^१ यत्त्वत्तो मम किञ्चित् फल न हि ॥१६६॥

अत्यधिकस्नेहया^२ सकोपया सुकान्तया कान्तगमन निषिद्धमिति
रोषाक्षेपालकार ।

स्पृष्ट मया न ताम्बूल न दृष्ट स्वदित न वा ।

^३शून्य तवास्तु नष्ट वा मार्जारो वात्तु मत्प्रिय ॥१६७॥

प्रागनागत्य पुनरागतेन जीवितेशेन सहैवमुक्त्वा कान्तया ताम्बूलस्य
सानुक्रोश दोषोद्भावन कृतमित्यनुक्रोशाक्षेपालकार ।

कलौ काले प्रजा धर्म नाचरन्ति न चासते ।

न्यायमार्गे अहो कष्ट^४मनुगोचरति हि रायराट् ॥१६८॥

धर्मपालचूडामणिना रायधरणीगेन कलौ प्रजाना धर्माचारव्यावृत्त्या-
दिक दृष्ट्वा पश्चात्ताप कृत इत्यनुशयाक्षेपालकार ।

१ मत्त्वतो २ सकोपयासि कान्तया ३. शून्यास्तत्रास्तु ४ मनु-
शेषते ।

विपक्षतमसा शत्रौ सुहृत्पद्मप्रकाशके ।

रायप्रतापमार्तण्डे सति कि भानुना भुवि ॥१६९॥

साम्यं दर्शयित्वा मुख्यभानुनिपिद्ध इति श्लिष्टाक्षेपालकार ।

किमिय चन्द्रिकाहोस्वित् कीर्ति कि रायभूभुज ।

रात्रावह्नि च दृश्यत्वात् कीर्तिरेव न चन्द्रिका ॥१७०॥

सदादृश्यत्वधर्मेण चन्द्रिका निषिध्यते इति सगयाक्षेपालकार ।

कृत्वापि दान जगतो न तृप्यति हि रायराट् ।

इष्ट दत्त्वापि भुवने न तृप्यति सुरद्रुम ॥१७१॥

अर्थान्तराक्षेपालकार ।

कादम्बराय कीर्तिस्ते कविराजैर्न वर्ण्यते ।

वाचामगोचरत्वात्ता दृष्ट्वा नन्दन्ति मानसे ॥१७२॥

हेत्वाक्षेपालंकार ।

कादम्बक्षितिपस्य तीर्थममले गौरीगौरं हृदि

श्रीनाथामरनाथ कर्ण नृपते पुष्पायुध क्षमापते ।

भोगीन्द्रार्जुन धर्मराजनृपते भानो सुधाशो गुरो

वार्धे मेरुगिरीन्द्र चन्दनतरो भूमौ नभो मा कुरु ॥१७३॥

गर्वरूपधर्मनिषेधाद् धर्माक्षेपालंकार । भावचमत्कारसभवात्

पुनरप्युक्त ।

अन्ये विकल्पा द्रष्टव्या आक्षेपाणा विचक्षणं ।

मया शास्त्रानुसारेण दिग्मात्रं संप्रदर्शितम् ॥१७४॥

मनोवद् वक्तुरिष्टस्योत्कर्षं वक्तु निरूप्यते ।

यत्रासभवि सा सद्भिर्बुध्यतेऽतिशयाभिधा ॥१७५॥

१ मनो वक्तुमिष्टं ।

शैलाग्रे स्थितवानहं तव गुणं तेजोऽभिधान तपो
लब्धु वै विदधामि चारुवचसा प्रासादयत्त नृपम् ॥१८७॥

वचोगोपनलेशालकार । निन्दास्तुतिर्वा ।

सेवार्थमागतमहाधरणीश्वराणा-
मालोकनेन करुणास्मितभाजनेन ।

सिंहासने स्थितवता नृपकुञ्जरेण
चेत प्रसत्तिरमला प्रकटोकृताभूत् ॥१८८॥

चेष्टाप्रकाशनलेशालकार ।

उक्ताना यत्र वाच्याना योगो वाच्यान्तरै सह ।
क्रमेण कथित सोऽत्र क्रमालकार उच्यते ॥१८९॥

रूप वचोऽधररसं स्तनकुम्भयुग्म
नि श्वासगन्धविषय तरुणीतनुस्थम् ।

आलोकनश्रवणपानसमागमोरु-
घ्राणक्रियाभिरनुभूय सुखी नृपोऽभूत् ॥१९०॥

क्रमालकार ।

भ्रूलोचनकटाक्षान् वै रायस्यालोक्य कामिनी ।
चापभृङ्गशरान्मत्वा जायते भयविह्वला ॥१९१॥

अयमपि क्रम ।

बुद्धेर्महत्त्व भूतेर्वा तन्यते यत्र कोविदै ।
उदात्त तमलकार वदन्ति कविपुङ्गवा ॥१९२॥

काले कलौ स्वहितमङ्गलचारुबुद्ध्या
पाति प्रजा करुणया न बिभेति शत्रो ।

शीताशुभानुसमनीतिपराक्रमाभ्या
जेजीयतेऽरिनृपतीभघटामृगेश ॥१९३॥

१. प्रच्छन्तवास्ता कृद ।

बुद्धिमहत्त्वोदात्तालंकारः ।

आस्थानमण्डपगते सुरशैलतुङ्गे

सिंहासने मदनरूपनृसिंहवङ्ग ।

आस्ते सता फणिपतिर्वरसार्वभौमो

गीर्वाणराज इति वाखिलमन्यमान ॥१९४॥

ऐश्वर्यमहत्त्वोदात्तालंकार ।

सत्यरूपमपह्नुत्य यत्रान्यार्थो निरूप्यते ।

अपह्नवमलकार तमाहु काव्यकोविदा ॥१९५॥

अय श्रीरायवङ्गो न क्षीरवाराशिरेव वै ।

अन्यथा वरगाम्भीर्यगुणशाली कथ भवेत् ॥१९६॥

रायवङ्गत्वलक्षण स्वरूपमपह्नुत्य क्षीराम्बुधित्वस्य पररूपस्य
निरूपणात् स्वरूपापह्नवालंकार ।

अय श्रीरायवङ्गो न समुद्रनवनीतक ।

कादम्बक्षीरवारगिरुत्पत्तिर्घटते कथम् ॥१९७॥

अयमपि पूर्वं एव ।

अय श्रीरायवङ्गो न सुरभूजोऽन्यथा कथम् ।

समस्तजनसकल्पदायको जाघटीत्ययम् ॥१९८॥

अयमपि तथैव ।

युद्धरङ्गत्रिनेत्रोऽय रायवङ्गमहीपति ।

कल्पान्तसमवर्त्येव किलान्यत्र दयानिधि ॥१९९॥

दयानिधित्व परेष्वभ्युपगम्य स्वेषु रिपुवर्गेण तस्य प्रलयान्तकत्व-
दर्शनाद्विषयापह्नवालंकार ।

उपमालकृती पूर्वमुपमापह्नव स्मृत ।

अन्यापह्नुतिभेदाना विस्तरौ लक्ष्यता बुधै ॥२००॥

१ कादम्बक्षीरवाराशो उत्पत्ति^० ।

यत्र प्रियतरा वाणी प्रेमाधिक्यप्रकाशिनी ।
 निरूप्यतेऽसौ विद्वद्भिः प्रेयोऽलकार उच्यते ॥२०१॥
 तरुणि चरणघातो मल्लिकापुष्पसङ्ग-
 स्तव घनकुचघात. कौमुदीस्पर्शकल्प ।
 सरसमधुरकाञ्ची दामबन्ध प्रबन्धो
 वदति सुरतकेल्या रायबङ्गक्षितीन्द्र ॥२०२॥
 प्रेयोऽलकार ।

उक्तार्थानां विरुद्धत्व यत्र वाक्ये परस्परम् ।
 शब्दार्थविहित नास्ति तत्त्वतः स विरोधक ॥२०३॥
 कलाधरो न शीताशुस्तेजस्व्यपि न भास्कर ।
 अभीष्टदो न मन्दारो रायबङ्गो गुणाम्बुधि ॥२०४॥
 शब्दकृतविरोध ।

उत्तुङ्गोऽपि न मेरुर्न तापहृच्चन्दनद्रुमः ।
 श्रीमानपि न गोविन्द कादम्बाम्बुधिचन्द्रमा ॥२०५॥
 अयमपि शब्दकृत एव ।

दयालुना पुण्यजनेन चापि देवेन सुज्ञातगुणेन तेन ।
 श्रीरायबङ्गप्रभुणा विपक्षा जिता.सुलोका परिपालिताश्च

॥२०६॥

अयमपि तथैव ।

श्रीरायक्षितिनाथ येन समये प्रस्थानभेरी महा-
 कोणेन प्रहता जना रिपुहरे भीत्वाध्वनन्त्यद्भुतम् ।
 लोकेषु ध्वनिमत्सु तेषु धरणीभृद्भिः तयो दिग्गज-
 व्रातस्य श्रुतयो विमानततयो भिन्ना वितीर्णा भृशम् ॥२०७॥

अयमर्थकृतविरोधालंकारः ।

शृङ्गारादिरसाना तु नवाना यत्र कथ्यते ।
 रूपोत्कर्ष पृथक्सोऽप्यलकारो रसवान् भवेत् ॥२०८॥

तरुण्या देहलावण्ये स्नात्वा स्नात्वा प्रमोदते ।
अधरामलपीयूष पीत्वा पीत्वामरायते ॥२०९॥

शृङ्गाराख्यरसवदलकार ।

रणसद्मनि गत्रूणा वर्ग दत्त्वा बलिं धराम् ।

सागरान्ता विजित्याय रायगूरो विराजते ॥२१०॥

युद्धवीररसाख्यरसवदलकार ।

कृत्वा तृप्त जगत्सर्व सुराग विपिनद्रुमम् ।

कृत्वा दानेन महता पात्र नास्तीति मन्यते ॥२११॥

रायबङ्ग इति कर्तुरध्याहारः । दानवीररसाख्यरसवदलकार ।

दृष्ट्वा शान्तिजिन नत्वा स्तुत्वा स्मृत्वा समर्च्य च ।

आनन्दक्षीरवार्शौ रायबङ्गो निमज्जति ॥२१२॥

धर्मवीररसाख्यरसवदलकार ।

आयल्लकानलो दग्ध्वा तन्वङ्गी पीडयत्यहो ।

इति दूतीवच श्रुत्वा करुणाब्धौ निमज्जति ॥२१३॥

राय इति कर्ता । करुणाख्यरसवदलकार ।

मक्षिकाजालपूयार्द्रव्रणकोटियुतान् रिपून् ।

भिक्षार्थमागतान् दृष्ट्वा जनो वमति राय ते ॥२१४॥

बीभत्साख्यरसवदलकार ।

पश्चाद्गतेशबिम्ब सालोक्य चुम्बति दर्पणे ।

मत्वा निजेश श्रीरायं दृष्ट्वा हसति कौतुकात् ॥२१५॥

हास्याख्यरसवदलकार ।

रायारामस्थितान् वृक्षान् स्वनन्दनगतान् बहून् ।

दृष्ट्वावचिनुते पुष्पाण्यमरेन्द्रो विलासतु ॥२१६॥

अद्भुताख्यरसवदलकार ।

रायस्य दोर्बलं स्मृत्वा रिपुवर्गो गुहास्थित ।

भीतो गच्छामि कुत्रेति भयज्वरगतो मृत ॥२१७॥

भयानकाख्यरसवदलंकारः ।

कादम्बरायभूपस्य क्रोधाग्नौ विक्रमार्चिपि ।
दग्धवैरीन्धने लोकं व्याप्ते शुष्यन्ति वार्धयः ॥२१८॥

रौद्राख्यरसवदलंकारः ।

देवसेवनकालेऽस्य रायवङ्गस्य चेतसि ।
शीते शान्तरसे व्याप्ते शीतिभूतं जगत्त्रयम् ॥२१९॥

शान्तरसाख्यरसवदलंकारः ।

रसवत्त्व गिरा लोके रसैर्नवभिरुच्यते ।
रसैरष्टभि रित्येके शान्तवर्ज्यैर्वदन्त्यलम् ॥२२०॥
उत्कर्षो यत्र गर्वस्य कथ्यते मानशालिनाम् ।
तमलकारमूर्जस्विनामानं मन्यते बुध ॥२२१॥
पीत वारिधिसप्तक जगदिद हस्तेन संचारितं
भोगीन्द्रस्य किरीटवर्तिमणय शोणीकृता पर्वताः ।
सचूर्णा विहिता मयेति कदने यो वक्ति गर्व निजं
त जित्वा नृपकुञ्जरो विजयते कादम्बवशोत्तम ॥२२२॥

ऊर्जस्व्यलकारः ।

यत्राप्रस्तुतवस्तूना वर्णना क्रियते जनैः ।
निर्विण्णमानसैस्तच्चाप्रस्तुतागंसनं विदुः ॥२२३॥
हरिततृणं भक्षिणोऽमी हरिणा हर्षैर्वसन्ति पीतजलाः ।
इति वक्ति रायवङ्गक्षितिपतिशत्रुव्रजो वने सोऽयम् ॥२२४॥
रायनृपतिना तिरस्कृतत्वान्निर्विण्णमानसेन शत्रुवर्गेण हरिणानाम-
प्रस्तुताना प्रशसा कृता यस्मात्तस्मादप्रस्तुतप्रशसालंकारः ।

१ रित्येते । २ भक्षिणो मि हरिणा हर्षैर्वसन्ति पीतजलाः ।

३ वनसोयम् ।

देशोऽयं स्वर्गभूमिर्नृपसदनमिदं देवराजस्य गेहं
 कान्तेयं कामभार्या मदभरितगजो दिग्गज सार्वभौम ।
 अश्वोऽय शक्रसप्त सुरतरुमलो जैनधर्मो जिनेन्द्रो
 देवोऽय रायवङ्गक्षितिपतिरधुना दिव्यपुण्यो विभाति ॥२२५॥
 येन केनचित् कारणेन निर्विण्णचित्त कश्चित् पुमानस्य नृपस्य
 विभूति धृत्वा वर्णयति तस्मादियमपि अप्रस्तुतप्रगसा ।
 यत्र वैकल्यकथन गुणादीना विधीयते ।
 विशेषदर्शनार्थं सा विशेषोक्तिर्निरूप्यते ॥२२६॥
 न शीतोऽपि यशोराशिर्जगत्ताप हरत्यसौ ।
 नोष्णोऽपि विक्रम शत्रून् रायस्य दहति ध्रुवम् ॥२२७॥
 शैत्यगुणवैकल्येऽपि जगत्तापहरणविशेष । उष्णतागुणविकलत्वेऽपि
 वैरिदहनविशेषो यतस्ततो गुणवैकल्यविशेषोक्ति ।
 न कोकिला न वीणा वा न कीरा न च किन्नरी ।
 कान्ता तथापि रायस्य चेतो हरति गानत ॥२२८॥
 कोकिलादिजातिवैकल्येऽपि कान्ता स्वरेण रायचेतोहारिणी यतस्ततो
 जातिवैकल्यविशेषोक्ति ।
 न कृप्यति न वञ्चति काञ्च्या कर्णोत्पलेन सा ।
 न ताडयति रायेन्द्र भय नयति कामिनी ॥२२९॥
 कोपनादिक्रियावैकल्येऽपि भयप्रापणमिति क्रियावैकल्यविशेष-
 कथनम् ।
 सरससुरतयुद्धे विक्रमो नास्ति यस्या ।
 परमनिशितशस्त्रं नास्ति खेटादिकं च ।
 मदनतुमुलयुद्धाधीशकादम्बनाथ
 जयति सरसविद्या सा सती चित्रमेतत् ॥२३०॥
 शस्त्रखेटादिद्रव्यवैकल्येऽपि जयति विशेषकथनमिति द्रव्यवैकल्य-
 विशेषोक्ति ।

न सन्मित्र न सत्संगो न सम्यग्धर्मदेशना ।

तथापि पुण्यवान् रायो वसत्यानन्दसागरे ॥२३१॥

सन्मित्रादिसुखकारणवैकल्येऽपि, पुण्यवानिति हेतुर्गर्भितविशेषणाद्धेतु-
विशेषोक्ति ।

अन्येऽपि भेदा सन्त्येव विशेषोक्तेर्विदावरै ।

अभ्यूह्या शास्त्रमार्गेण विस्तरौ न मयोच्यते ॥२३२॥

यत्र किञ्चित्समीकर्तुं युज्यते केनचित् क्रिया ।

एककाला समासो हि तुल्ययोगाभिधो भवेत् ॥२३३॥

स्तवन निन्दन चापि समाश्रित्य द्विभेदभाक् ।

अलकारस्तुल्ययोग कथ्यते विदुषा वरै ॥२३४॥

भरतस्सगरश्चक्री श्रेणिको बङ्गभूपति ।

श्रोतृमुख्यपद प्राप्ता भवन्ति भुवनत्रये ॥२३५॥

स्तुतिपरतुल्ययोगितालकार ।

चिन्तामणि कामधेनु रायबङ्गं सुरद्रुमः ।

परोपकारे निरता इति रूढिर्जगत्त्रये ॥२३६॥

अयमपि पूर्वं एव ।

रायबङ्गक्षितोशस्य शत्रुजातश्रियं क्षणम् ।

सुरचापश्रियो विद्युन्मालालक्षा न चासते ॥२३७॥

निन्दापरतुल्ययोगितालकार ।

यत्र प्ररूप्यमाणेन वस्तुना तत्परत्वत ।

इष्टार्थो गम्यते तद्विपर्यायोक्त सता मतम् ॥२३८॥

अस्मद्वैरिपुर त्वया बलपते श्रीमद्विधेय भृशं

कादम्बाम्बुधिचन्दरे निगदतीत्येवं बलाधीश्वरः ।

१ कादम्बाम्बुनि चन्दरे

नानावज्रभुजङ्गकाञ्चनशिवामन्दारराजामरी—

स्त्रीबिम्बार्कमय ह्यदान्मदनकान्तावासमप्यद्भुतम् ॥२३९॥

पर्यायोक्तालकारः ।

गुणानां कर्मणा यत्र सहभावः प्ररूप्यते ।

सहोक्तिनामकं प्राहुस्तमलकारमुत्तमा ॥२४०॥

रायस्य कीर्त्या धवलः शत्रुकान्ताजनः सह ।

विक्रमेणारुणं सार्धं तत्कान्ताजनलोचनम् ॥२४१॥

गुणसहभावकथनसहोक्तिः ।

श्रीरायक्षितिनाथः विक्रमगुणे नामा सदा वर्धते

वीरश्रीशरदभ्रकीर्तिवनिता त्यागेन साकं तव ।

लक्ष्मीः पुण्यपदेन साकममलज्ञानेन वाणी समं

कोशेनाहवदक्षदण्डनिकरः सग्नारङ्गोद्भुर ॥२४२॥

क्रियासहभावकथनसहोक्तिः । अथवा

कार्यकारणयोर्यत्र वक्तुं युगपदुद्भवः ।

कार्योत्पादनसामर्थ्यं ता सहोक्तिः प्रचक्षते ॥२४३॥

पुण्येन सार्धमाधत्ते धर्मं यानेन दिग्जयम् ।

त्यागेन कीर्तिं शौर्येण वीरलक्ष्मी च रायराट् ॥२४४॥

कार्यकारणसहजन्मकथनसहोक्तिः ।

यत्राधत्ते पुनर्दत्त्वा किञ्चित्किञ्चित् समं न वा ।

तामाहुर्निपुणा लोके परिवृत्तिमलक्रियाम् ॥२४५॥

सुरलोके पुरी दत्त्वा रिपुभ्यः स्त्रीविराजिताम् ।

नरलोके पुरी हृत्वा तादृशी भाति रायराट् ॥२४६॥

सदृशार्थपरिवृत्तिः ।

१ विक्रमेणारुणं सार्धं... 'जनलोचनम्' २ रिहभ्यः ।

ज्ञानं स्त्रीकुरु वृङ्गराज विनयं दत्त्वा गुरुभ्य सदा
 पुण्य स्त्रीकुरु देवस्तुनिकर दत्त्वा गुरुभ्य सदा ।
 वैरिभ्य सुरलोकसौख्यपदवी दत्त्वा तदीय महा—
 देश स्वीकुरु युद्धरङ्गरमणीप्राणेश भूमीग भो ॥२४७॥
 विसदृशार्थपरिवृत्ति ।

कार्यमारभमाणेन दैवात्तत्साधनागम ।
 लभ्यते यत्र तत्प्राहुरलंकार समाहितम् ॥२४८॥
 कोप निवारयितुमिष्टनिजाङ्गनाया
 प्रारब्धवान् नृपतिकुञ्जरबङ्गनाथ ।
 तावत् सुधाशुरुदयाद्रिमुपैति पूर्णो
 रोरौति कोकिलगणो भगणश्चकास्ति ॥२४९॥
 एकवाक्यमनेकार्थं यत्र श्लिष्टं तद्दुच्यते ।
 अभिन्नपदमुद्दिष्टं श्लिष्टं भिन्नपदं द्विधा ॥२५०॥
^१देवोऽयमम्बरोद्भासी लोकाह्लादः कविस्तुत ।
 महत्सहायो राजाग्रे भासते भुवनोत्तम ॥२५१॥

अभिन्नपदश्लिष्टम् ।
 सदैव बलसपन्नो न दीनो जडसग्रह ।
 कविरम्यो रायबङ्गो राजते मन्दरागत ॥२५२॥

भिन्नपदश्लिष्टम् ।
 व्यतिरेकाद्यलकारे श्लेषा प्राग् दर्शिता परे ।
 अन्ये केचन दृश्यन्ते श्लेषास्तत्कथनं यथा ॥२५३॥
 आह्लादयन्ति^२राय च सानुरागा प्रजा प्रजा ।
^३साकूत रक्षिता वृद्धा करमार्दवलालिता ॥२५४॥

१ देवोऽयमम्बरोद्भासि । लोकाह्लादी कविस्तुत २ रायस्य

३ साकूत ।

प्रजा जना प्रजा पुत्रा आह्लादयन्तीति क्रियाश्लेष
 रायबङ्गे न दृश्यन्ते श्लिष्यन्ते च पयोधरा ।
 उत्तुङ्गा अम्बराधारा मुक्ताफलविभूषिता ॥२५५॥

अविरुद्धक्रियाश्लेष ।

वियोग प्राप्य रायेन्द्रो मोदते हृदये परम् ।
 नारीजनस्तु क्लिश्नाति पयोधरसहायक ॥२५६॥

विरुद्धक्रियाश्लेष ।

श्रीरायराज्ये काठिन्य तरुणीस्तनमण्डले ।
 अपवादो निरोष्ठ्येषु काव्येषु न परत्र च ॥२५७॥

सन्नियमश्लेष ।

मन्दानिला लुण्टयन्ति दिव्योद्यानेषु सौरभम् ।
 अथवा चञ्चरीकाश्च चोरयन्ति हि लोलुपा ॥२५८॥

नियमनिषेधश्लेष ।

रायबङ्ग समुद्रश्च भूभृदास्पदगौरव ।
 गम्भीरो भूरिरत्नाढ्यो लावण्याढ्यो विराजते ॥२५९॥

अविरुद्धश्लेष ।

पयोधरविलोलोऽय नृसिंहश्चातकायते ।
 सन्मानसगतो बङ्गो राजहसायते सदा ॥२६०॥

उपमाश्लेष ।

अर्थयोर्यत्र समयोरन्वय क्रिययाजनि ।
 तन्निदर्शनमित्युक्त सदसल्लक्ष्मगोचरम् ॥२६१॥
 सुजनसुरकुजोऽय रायबङ्गक्षितीशो
 वित्तरति फलमिष्ट सर्वलोकाय लोके ।
 गगनतलनिवासी कौमुदीकामिनीशो
 विलसदमृतदीप्ति कि न लोकाय धत्ते ॥२६२॥

प्रशस्तनिदर्शनालंकारः ।

अन्याय इति शब्द च न वादयति बङ्गराट् ।
अपशब्द स्वशिष्यौघ न वादयति शाब्दिक ॥२६३॥

अप्रशस्तनिदर्शनालंकारः ।

निन्दाव्याजेन यत्रार्थं स्तौति कचिच्च सा मता ।
व्याजस्तुतिर्गुणा एव दोषा इव चकासते ॥२६४॥
वक्षोरङ्गे महाश्रीर्वरमुखकमले शारदा वीरलक्ष्मी-
र्दोर्दण्डे रायबङ्गक्षितिप तव महाशासनाद्वर्ततेऽसौ ।
आज्ञामुल्लङ्घ्य लोके तव विशदयशस्कामिनी बम्भ्रमीति
राज्ये सेय तवाज्ञा सुकविजननुता तत्कथ जाघटीति ॥२६५॥

व्याजस्तुत्यलंकारः ।

देवताघ्निसंस्तुत्या कीर्तिं सशोभते कथम् ।
सागरान्ता धरा कान्ता कथं जीवति राय ते ॥२६६॥

श्लिष्टव्याजस्तुतिः ।

व्याजस्तुतिविशेषाणामपर्यन्तं प्रविस्तरः ।
बुद्धिशालिभिरभ्युह्यस्तस्मान्नास्माभिरुच्यते ॥२६७॥
इष्टानां यत्र वस्तूनामाशसनमिदं मतम् (? °मिदं च यत्) ।
तामाशिषमलंकारं वदन्ति कविकुञ्जरा ॥२६८॥
सुरेन्द्रपूज्यं परिपूर्णसौख्यं
सुज्ञानसाम्राज्यमहापदस्थं ।
जिनेन्द्रचन्द्रो वरदानरुद्र
श्रीबङ्गराजस्य मुदेऽस्तु देव ॥२६९॥

आशीरलंकारः ।

नरेन्द्रकन्या परिपूर्णरूपा
 शृङ्गारदुग्धाम्बुधिकौमुदी सा ।
 तुङ्गस्तनी मङ्गलहारभूषा
 श्रीवङ्गराजस्य मुदेऽस्तु कान्ता ॥२७०॥

इयमप्याशी ।

यत्रानेकपदार्थानामत्युत्कृष्टैतरात्मनाम् ।
 एकत्र कथन जातं स समुच्चय उच्यते ॥२७१॥
 श्रीशान्तिनाथदेवोऽय स्याद्वादोऽमोघलाञ्छनो
 धर्मश्रीरायवङ्गोऽत्र लोके रत्नानि त्रीणि वै ।
 कादम्बवार्धिवचन्द्रो लक्ष्मी कीर्त्यङ्गना गिरा देवी
 जयकामिनी च पूज्या चत्वारि हि दिव्यवस्तूनि ॥२७२॥

अत्युत्कृष्टसमुच्चयालकार ।

रायवङ्गक्षितीशस्य सन्ति शत्रुपुरेष्वमी ।
 जम्बुका घूकभल्लूका तिन्दुका युगपत्रका ॥२७३॥

अत्यपकृष्टसमुच्चय ।

यत्र ^१कोऽपि जनो वक्ति प्रीतियुक्तमिवाप्रियम् ।
 अलकृति ता वक्रोक्ति प्राहुः काव्यविशारदा ॥२७४॥
 श्रीवङ्गेश्वर साधु साधु भवतः शृङ्गारशोभा परा
 मुक्ताजालमलकृत परिलसद्वज्रच संभूषितम् ।
 श्रीचन्द्राभरण महोदयकरं सर्वं त्वया संवृतं
 वस्त्रेणेति निजालयागतपति सा^३ वक्ति कान्ता गिरा ॥२७५॥
 वक्रोक्त्यलंकार ।

१ श्रीशान्तिनाथ देव स्याद्वादामोघलाञ्छनो धर्मश्री रायवङ्गभूपो
 रत्नानि श्रेणि लोकेऽत्र (?) । २. कोपाध्वजो ३. वानक्ति ।

प्रसिद्धसाधनाद्यत्र कालत्रितयगोचरम् ।

साध्य निश्चीयते प्राज्ञैरनुमान तदुच्यते ॥२७६॥

मानसोल्लासन दृष्टि शीला साधवगम्य सा (?) ।

कान्ता श्रीरायबङ्गस्य ^१शृङ्गाराब्धौ निमज्जति ॥२७७॥

वर्तमानसाध्यगोचरानुमानालकार ।

श्रीरायभूपदिव्याङ्गे मुक्ताजाल विलोक्य सा ।

कान्ता कुप्यति बध्नाति काञ्चीदाम्ना निजेश्वरम् ॥२७८॥

अतीतसाध्यगोचरानुमानालकार.

कादम्बवार्ध्चिन्द्रस्य वाग्विलासादनागतम् ।

फल निश्चित्य सा कान्ता निजेशेऽगात् परा मुदम् ॥२७९॥

भाविसाध्यगोचरानुमानालकार ।

यत्रासभाव्यसबन्धो वस्तुनोऽन्येन केनचित् ।

अनौचित्येन सप्रोक्तो विषमं त प्रचक्षते ॥२८०॥

कादम्बनाथ करुणारसदुग्धवार्धि

क्वायं त्वदीयहृदये सकलप्रजासु ।

रुद्रावतार धर धीर रिपुव्रजेपु

क्वायं चकास्ति च रसो वररौद्रनामा ॥२८१॥

उत्कृष्टतान्तर यत्र प्रकृतस्योपलक्षणम् ।

कथ्यतेऽवसर सोऽयमलकारो विबुध्यताम् ॥२८२॥

येन जिष्णुरपि ध्वस्य शत्रुर्भूमोऽपि सङ्गरे ।

तस्य श्रीरायबङ्गस्य दोर्दण्डेऽभूज्जयाङ्गना ॥२८३॥

अवसरालकारः ।

यत्र साम्य प्रतीयेत वस्तुन प्रतिवस्तुना ।

इवादीनामप्रयोगे प्रतिवस्तूपमा हि सा ॥२८४॥

१ शृङ्गारा * निमज्जति

कादम्बवंशे विस्तीर्णे स एको रायभूपति ।
 अब्धौ सकलरत्नानि कौस्तुभाख्या भजन्तु किम् ॥२८५॥
 प्रतिवस्तूपमा । अस्या उपमायामन्तर्भाव इति केचित् ।
 यत्सारं निश्चित यत्र तस्मात्सार ततोऽपि तत् ।
 सार निश्चीयते व्याप्त्या सा सारालकृतिर्मता ॥२८६॥
 कादम्बाब्धौ सुसारो वरगुणनिलयो रायवङ्गामृताशु-
 स्तस्मिन् सारा विवेकामलतरविलसत्कौमुदी लोकपूज्या ।
 तस्या सतापहृत्व सुकविजननुत सारमस्मिन् सुसार
 सत्सौख्यापादकत्वावरविशदयशोदायकत्व हि तस्मिन् ॥२८७॥
 सारालकार ।

अन्यस्य वस्तुनोऽन्यस्मिन् साम्याद्वस्तुविनिश्चय ।
 स्वकारणवशाज्जातो यत्र स भ्रान्तिमान् भवेत् ॥२८८॥
 सध्याराग वनाग्नि गिरितटगतधातुव्रज बालभानु
 कूपाराग्नि नभोऽन्तर्गतदिवि जनधीरक्तनीरेजषण्डम् ।
 दृष्ट्वा च बेभीयतेऽसौ सकलरिपुगणैस्त्वत्प्रताप सुतापो
 मत्वेति श्रीविलासास्पदविजयरमानर्तकीनृत्यरङ्ग ॥२८९॥
 भ्रान्तिमदलकार । मोहोपमेति केचित् ।
 एतद्वेदमिद वेति चलद्बुद्धिस्तु सशय ।
 हेतुना निश्चयो यत्र निश्चयान्तोऽपि सत्कृत ॥२९०॥
 शत्रुक्षयज्ञापकधूमकेतु कि वैरिचन्द्रस्य विधुतुद किम् ।
 त्वद्वस्तखड्ग कवयो विलोक्य सञ्जेरते वीर नृसिंहभूप ॥२९१॥
 सशयालकार ।

कि कि कराब्जनिपतन्मधुपावली भो
 वीरश्रिय कविनुतावररोमराजि ।

१ दृष्ट्वा भोयते २ स्वप्रतापो सुतापो ।

त्वद्धस्तखङ्गमवलोक्य कवीश्वराणा
बुद्धि. स्फुरत्यमलबोधपराक्रमेश ॥२९२॥

अयमपि संशय ।

चिन्तामणि. किं न जडत्वमस्य
किं वा सुरागो नहि पुष्पजालम् ।
विवेकवाक्प्रौढियुतेन तेन
त्यागेन कादम्बनृप प्रबुद्ध ॥२९३॥

निश्चयान्तसशयालकार । सशय सशयोपमा, निश्चयान्तो
निर्णयोपमेति केचित् ।

पूर्वपूर्वो विशिष्टोऽर्थो रच्यते तद्विशेषणम् ।
उत्तरोत्तरतन्निष्ठं यत्र सैकावली मता ॥२९४॥
श्रीराय क्षितिपालको वरमहालक्ष्मीपति सा रमा
वीरश्रीसहचारिणीजयवधू कीर्त्यङ्गना भूषिता ।
सा कीर्तिर्वरशारदासहचरी सा शारदामञ्जुल-
श्रीतुण्डाब्जनिवासिनीनुत्तमुखं सपूर्णसीमोपमम् ॥२९५॥

एकावल्यलकार ।

अप्रयुज्यविशेष्य तद्विशेषणपदानि वै ।
साकूतानि प्रयुज्यन्ते यस्मिन् परिकर स हि ॥२९६॥
कुवलयकरसारं श्रीचकोरीप्रमोद
नववररसपीयूषाश्रयं सत्कलेशम् ।
कविदिविजसहायं सर्वलोकप्रिय क
वदति निजसमान रायबङ्गप्रवीण ॥२९७॥

परिकरालंकार ।

वस्तुसाधारणं यत्र किञ्चिदेकत्र रूप्यते ।
निषिध्यते तदन्यत्र परिसख्या हि सा मता ॥२९८॥

कादम्बनाथसाम्राज्ये काठिन्य करपीडनम् ।
कान्तापयोधरद्वन्द्वे तत्केल्यामेव ताडनम् ॥२९९॥

परिसख्यालकार ।

याचन चुम्बनादाने वन्धन दुष्टनायके ।
वियोग पञ्जरे भीति. क्रुद्धकान्तावलोकनात् ॥३००॥
इयमपि परिसख्या । सनियमश्लेष इति केचित् ।
प्रश्नोत्तरद्वय यत्र व्यक्त गूढ च बोभयम् ।
उच्येते तमलकारमाह प्रश्नोत्तराह्वयम् ॥३०१॥
प्रजाना पालन कस्मान्निवृत्ति पीडनस्य च ।
रायबङ्गमहीपालाह्याम्भोनिधिचन्द्रिरात् ॥३०२॥

व्यक्तप्रश्नोत्तरालकार. ।

पयोनिधिसमानस्य रायबङ्गमहीपते ।
क्रमाब्जभासुरस्याप्यमेयस्य श्री क्व वर्तते ॥३०३॥
व्यक्तप्रश्नगूढोत्तरालकार । अस्मिन् श्लोके पादचतुष्टयस्य प्रथमा-
क्षरचतुष्टये गृहीते पराक्रमे इति भवति तदेव गूढोत्तरम् ।
तव सबन्धि निष्काम तव सबोधन कथम् ।
कीदृशस्त्व पुन कीदृग्मानवेश प्रपूजित ॥३०४॥

व्यक्तगूढोत्तरप्रश्नोत्तरालकार ।

अलकृतीनामुक्तानामुपमादिभिदात्मनाम् ।
मध्ये द्वयोस्त्रयाद्रीना सगो यत्र स सकर ॥३०५॥
श्रीवङ्गराज वदन तव पूर्णचन्द्र
पादद्वयं कमलयुग्ममिव प्रभाति ।
नायं भुजोऽरिनृपवृन्दमुधाशुराहु.
कीर्ति करोति सकलाम्बुधिलङ्घनं च ॥ ३०६ ॥
संकरालंकार ।

सकोशमपि नीरेज सदण्डमपि निर्जितम् ।

रायबङ्गमुखाब्जेन निष्पुण्यस्य तथा भवेत् ॥३०७॥

अयमपि सकर ।

अलकृतीना सर्वासा गुणमुख्यव्यवस्थया ।

समकक्षतया यस्य सकरस्य द्वयी गति ॥३०८॥

अलकृतीना संगृह्यान्तविस्तरमप्यमूमम् ।

एष मार्गं प्रमाणेन दर्शितोऽस्माभिरुत्तम ॥३०९॥

नानालकाररत्ने विशदत्तररसोदारपिण्डीरडिण्डे

नानाभावोरुरङ्गत्तरलतमरसञ्चारुकल्लोलमाले ।

शय्यापाकोरुवृत्तिप्रसरबहुगुणोदात्तरीत्यभ्रजाले

काव्यक्षीराम्बुराशौ जयतु तव महाकीर्तिचन्द्रो नृसिंह ॥३१०॥

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्रविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्ति-

मुनीन्द्रचरणबज्जचञ्चरीकविजयवर्णविरचिते श्रीवीरनरसिंह-

कामिरायबङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसनिभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारा-

र्णवचन्द्रिकानाम्नि अलकारसग्रहे अलकारनिर्णयो

नाम नवम परिच्छेद ।

अलकारनिर्णयो नाम नवम परिच्छेद ।



दोषगुणनिर्णयो नाम

दशम परिच्छेदः

निर्दोषधर्मं पुण्याय यथा शक्तस्तथा भुवि ।

निर्दोषकाव्य सत्कीर्त्यै वर्ज्यदोषानतो ब्रुवे ॥१॥

असमर्थं श्रुतिकटुं निरर्थकमवाचकम् ।

च्युतसस्कृत्यप्रयुक्तं ग्राम्यमश्लीलकं परम् ॥२॥

नेयार्थं क्लिष्टसदिग्धे ततोऽप्यनुचितार्थकम् ।

अविमृष्टविधेयांश्च विरुद्धमतिकृत्तथा ॥३॥

अप्रतीतमिति प्रोक्ता पददोषा विशारदै ।

प्रथमं लक्षणं तेषां कथ्यते क्रमतो मया ॥४॥

अङ्गीकृतार्थं यद्वक्तुं न शक्तं तत्पदं तदा ।

असमर्थमिति प्रोक्तं तदुदाहरणं यथा ॥५॥

ग्रामं भवति चैत्रोऽसौ नगरं हन्ति माधव ।

दिव्यन्ति साधवो मोक्षं दयतेऽरिं धराधिप ॥६॥

अत्र भवति—हन्ति—दिव्यन्ति—पदानां गत्यर्थसंभवेऽपि गत्यर्थे सामर्थ्या-

भावात् पदत्रयसमर्थम् । दयते-पदं हिंसार्थे सामर्थ्याभावादसमर्थम् ।

कठिनाक्षरसदर्थं पदं श्रुतिकटूदितम् ।

सूष्ट्रा विनिर्मिते वात्र राष्ट्रे भाति पुरं सदा ॥७॥

अत्र सूष्ट्रां राष्ट्रे इति पदद्वयं श्रुतिकटुं ।

पादपूरणमात्रार्थं यत् पदं प्रतिपाद्यते ।

तन्निरर्थकमित्युक्तं गुणदोषविशारदै ॥८॥

भाति वै नगर चात्र खलु शक्रपुरोपमम् ।

तदेव तु हि गन्तव्य त्वया सुखफलार्थिना ॥९॥

अत्रे च वै खलु तु हि पदानि स्वार्थानि (न) सन्तीति निरर्थकानि ।

स्वाभिप्रेत न वक्त्यर्थं प्रयुक्तमपि यत्पदम् ।

तदवाचकमित्युक्त काव्यसारविचक्षणै ॥१०॥

रणे जयाङ्गना चैत्रो भटत्वाल्लभते पराम् ।

शूरत्वादिति हेत्वर्थे भटत्व पदमीरितम् ॥११॥

अत्र भटसामान्यवाचक भटपद शूरवाचक न भवतीत्यवाचक
ज्ञेयम् ।

शास्त्रोक्तलक्षण नास्ति यत्र तच्च्युतसस्कृति ।

भाते विधुर्नभोभागे नगर तिष्ठते नर ॥१२॥

अत्र भाते तिष्ठते पदयोरात्मनेपदस्य लक्षण नास्ति । नगरमित्य-
धिकरणे द्वितीयाया लक्षण नास्ति ।

प्रसिद्धमपि यच्छास्त्रे कविभिर्न प्रयुज्यते ।

तदप्रयुक्तं ज्ञातव्यं पदं दुष्टं विशारदै ॥१३॥

अणिमादिगुणोपेतो दैवतस्तं निरूपयन् ।

कविभिर्दैवतं शब्दं पुल्लिङ्गे न प्रयुज्यते ॥१४॥

यत्पदं नोचितं यत्र तत्र तद्ग्राम्यमुच्यते ।

ग्रामवर्तिजनश्लाघ्यं निपुणैर्निन्द्यते यथा ॥१५॥

अधरं भक्षयित्वासौ तरुण्यां स्तनमण्डलम् ।

हस्तेनावृत्य तद्देहे शेते कश्चिन्नरो मुदा ॥१६॥

अत्र अधरभक्षणं हस्तेन स्तनावरणं कान्ताशरीरशयनं ग्राम्यवचनम् ।

१. खलु मही पदाशी स्वार्था न । २. निरूपि सन् । ३. कुण्डलम् ।

पदेन येनासभ्यार्थो ज्ञाप्यते तत्पद मतम् ।
 अञ्जलील त्रिविध व्रीडामङ्गलार्थंजुगुप्सकम् ॥१७॥
 तरुण्या मदनावासो राजते सुखदायक ।
 मदनावासशब्दोऽय लज्जोत्पत्तिविधायक ॥१८॥
 कामिनीवदन पद्म विनाशयति लीलया ।
 विनाशयति नीरेजमेतत्पदममङ्गलम् ॥१९॥
 रत्नी तरुण्या नाथस्य क्षुते सति विशङ्क्यते ।
 क्षुते सति पद चैतज्जुगुप्साजन्मकारणम् ॥२०॥
 स्वसकेतितमर्थं यत्पदं मूलार्थसूचने ।
 सामर्थ्यरहितं वक्ति तन्नेयार्थं विदुर्वुधा ॥२१॥
 अनन्तरानुजो धर्मपुत्रस्य परिपातु व ।
 रुद्रकान्तेक्षुवाटेपु प्रभाते रोरवित्यलम् ॥२२॥

अत्र धर्मपुत्रस्य अनन्तरानुज भीमः । भीमो नाम महेश्वर इति
 स्वसकेत । रुद्रकान्ता शिवा । शिवा नाम जम्बुका इति स्वसकेत ।

अर्थं व्यवहितं वक्ति तत्पदं क्लिष्टमुच्यते ।

विनतानन्दनारोहकान्तापुत्रो जयत्यलम् ॥२३॥

विनतानन्दनो गरुड तदारोहको विष्णु तत्कान्ता लक्ष्मी तत्पुत्रो
 मन्मथ इति व्यवहितार्थद्वयोक्तम् ।

अर्थं विवक्षितं तस्मादन्यार्थमपि यत्पदम् ।

प्रकाशयति सदिग्धं तदुक्तं दोषवेदिभिः ॥२४॥

देवो नभसि यातीति सदिग्धं पदमुच्यते ।

निर्जरो वा घनो वेति सशयस्य समुद्भवात् ॥२५॥

पदस्य यस्यानुचितो गम्यतेऽर्थस्तदुच्यते ।

बुधैरनुचितार्थं हि तस्योदाहरणं यथा ॥२६॥

पुरुषो राजते राजसभाया वरधीवर ।
 प्रकाशयत्यनुचित कैवर्त धीवर पदम् ॥२७॥
 प्राधान्येन न वर्तेत स्वार्थे यत्पदमीरितम् ।
 अविमृष्टविधेयाश तत्पद प्रणिगद्यते ॥२८॥
 मार्गे याति नर कश्चिन्महाशूरो धनाधिप ।
 धनाधिपमहाशूरपदे प्राधान्यतो न हि ॥२९॥

सङ्ग्रामदानप्रस्तावे महाशूरधनाधिपपदद्वयेन सार्थपरामर्शस्य
 प्राधान्येन सभवान्मार्गे तदसभवात् अविमृष्टविधेयाशत्वम् ।

इष्टार्थादन्यदुष्टार्थप्रतीतिजनकक्षमम् ।
 विरुद्धमतिकृच्चोक्त तत्पद विदुषा वरै ॥३०॥
 सुरतरवे लोकोऽय गुरवे तुभ्य सदा नमति ।
 जननी या भवत सा परोपकारे सदा क्रमते ॥३१॥

‘सुरतरवे’ ‘जननी या भवत’ इति पदद्वय विरुद्धार्थप्रतीतिकरम् ।
 सुरतरवे सुरत-रवे ‘जननी या भवत’ ‘जननी याभवत’ ।

स्वकीयशास्त्रसिद्धार्थं यत्पद वक्ति तत्पदम् ।
 अप्रतीतमिति प्रोक्तं कथ्यते तदुदाहृति ॥३२॥
 त्रैलोक्य वर्तते जीवसुखदुःखविधायकम् ।
 सृष्टिसंहारकरणे बहुधानकमुच्यते ॥३३॥

सांख्यागमे त्रैलोक्यमिति बहुधानकमिति पदद्वय प्रधानतत्त्ववाचक
 तद् आगमप्रसिद्धत्वाद् अप्रतीतम् ।

उक्त्वा पदगतदोषान् पदैकदेशेषु पूर्वकथितास्तान् ।
 दोषान् वदामि शृणु भो राय नृपाधीश भो यथायोगम् ॥३४॥
 सरसत्वान्मृदुत्वाच्च सुभगत्वाच्च सुन्दरी ।
 जगन्मोहकरो चित्र कामेनापि विलोक्यते ॥३५॥

अत्र पदैकदेशस्य त्वत्प्रत्ययस्य बाहुल्यात् सरसत्वादिपदत्रयं श्रुति-
कटूच्यते ।

आलिङ्ग्य कामुक सौख्य प्रमदाया पयोधरान् ।

यात्योदन भूपकार पचतेऽल ' धरेशिने ॥३६॥

अत्र पयोधरान् इति एककान्ताया बहुवचन पदैकदेशरूपं निरर्थकम् ।
पचते इत्यात्मनेपदमपि पदैकदेशरूप निरर्थकं फलेशत्वाभावात् ।

मा समानो न यातीत साधरामृतसौष्ठवाम् ।

अत्र मासमृतेत्येतत्पदागोऽश्लीलमुच्यते ॥३७॥

अत्र मासेति जुगुप्साकरमश्लील मृतेत्यमङ्गलमश्लीलम् ।

देवतमा पूज्योऽय नरनायो धर्मसाररसगाली ।

देवेति तयेति तथा देवतया वेति भवति सदेह ॥३८॥

अत्र पदैकदेशरूप सदिग्धम् ।

त्यागवा कुर्वते युद्ध गीर्वाणैस्सर्वदा समम् ।

लक्षको दानशब्दस्य त्यागशब्देन वाचक ॥३९॥

अत्र त्यागवा इति पदैकदेशस्त्यागशब्द दानशब्दगमको भवति । न
पुनरसुरार्थवाचक ।

पददोष निरूप्याह वाक्यदोष ब्रुवेऽधुना ।

शृणु राय महीनाथ काव्यगोष्ठिविशारद ॥४०॥

उपहतलुप्तविसर्ग हतवृत्त गर्भित तथाकीर्णम् ।

न्यूनपद कथितपद प्रसिद्धिहतमक्रम विसधि तथा ॥४१॥

प्रतिकूलवर्णमपदस्थितपदमस्थानगतसमास च ।

अधिकपद रसरहित समाप्तपुनरात्तमनभिहितवाच्यम् ॥४२॥

अप्रस्तुतार्थममतपरार्थमर्धन्तरैकवाचि तथा ।

भग्नप्रक्रममभवन्मतयोगपतत्प्रकर्षयोर्युगलम् ॥४३॥

असकृद्याति विसर्गो यत्रोकार विलोप्यभाव वा ।

उपहतलुप्तविसर्ग तद्वाक्य दुष्टमिति वदन्ति बुधा ॥४४॥

नरो वरो हितोऽर्च्यो वा गम्भीरो दुर्लभो भुवि ।

अवरा अहिता ज्ञानहीना जीवा गृहे गृहे ॥४५॥

असकृद्विसर्गो पूर्वार्धे उकाररूप याति लोपमपरार्धे ।

यत्र च्छन्दोभङ्गो वर्णानां हीनतादित्त्व वा ।

गुरुलघुवर्णस्थाने लघुगुरु तद्वाक्यमेव हतवृत्तम् ॥४६॥

कान्तेन नारीसमाना विदग्धा विलोकितापि प्रमद न याति ।

स्मरेण कान्ता हरिणनयना निपीडयतेऽसौ^१ कुसुमोरुवाणैः ॥४७॥

अत्र पूर्वार्धे समानेत्यत्र माकारस्थाने लघुना भवितव्यम् । अपरार्धे

हरिणनयनेत्यत्र णकारस्थाने यकारस्थाने च गुरुणा भवितव्यम् ।

गुरुलघोर्व्यत्ययाद्धतवृत्तम् ।

मृगाङ्ककरा शीता^२ हरन्ति तमसा ततिम् ।

वने चूतकिसलयानि वसन्ते भान्ति सर्वत ॥४८॥

अत्र पूर्वार्धे प्रथमपादे न्यूनाक्षरत्व तृतीयपादेऽधिकाक्षरत्व हतवृत्त तत ।

आरामस्यामलदेशे नारी सकलभूरिगुणरम्या ।

सक्रीडय पुन क्रीडति सरोवरे विदलदखिलकमलाढ्ये ॥४९॥

अत्र प्रथमपादे गणत्रयमतिक्रम्य यति छन्दोभङ्ग । द्वितीयपादे

नारीति पादमध्ये यति छन्दोभङ्ग । ततो हतवृत्तम् ।

१. कुसुमोरवाणैः । २. शिता ।

छन्द शास्त्रे यति प्रोक्तो यादृगस्तादृशस्य वै ।
 यतेरभावो विद्वद्भिः छन्दोभङ्गो निरूप्यते ॥५०॥
 अन्यवाक्यस्य मध्येऽस्ति यत्रान्यद्वाक्यमीरितम् ।
 तद्वाक्य गर्भितं प्राहुः काव्यालंकारकोविदाः ॥५१॥
 शृगाररसवारांशौ निमग्नाङ्गी विलोकते ।
 रमते प्रमदारामे तरुणी निजनायकम् ॥५२॥

अत्र रमते प्रमदारामे इति वाक्यं वाक्यान्तरमध्यगतमिति गर्भितम् ।

बहुवाक्यानां यत्र प्रविशन्ति पदानि मिश्रितानि मिथ ।
 तत् सकीर्णं कथितं क्लिष्टं पुनरेकपदवाक्यवृत्तिः ॥५३॥
 कुप्यति रमणो नारी नमति रुषं च चरणपङ्कजे त्यजति ।
 परिरभ्य मोदतेऽसौ चुम्बति मज्जति वरार्णवे सौख्ये ॥५४॥

अत्र नारी कुप्यति रमणश्चरणपङ्कजे नमति । नारी रुषं त्यजति
 रमणं परिरभ्य चुम्बति वरार्णवे मोदते रमणं सौख्येऽर्णवे मज्जतीति
 बहूनां वाक्यानां पदानि परस्परमिश्रितानि इति सकीर्णम् । एक-
 वाक्यगतपदानि मिथो मिश्रितानि चेत् क्लिष्टं वाक्यं ज्ञेयम् ।

पदेन येन यद्वाक्यं विना न्यूनं भवेद्यदा ।
 तद्वन्यूनपदमित्युक्तं तस्य लक्ष्यं प्ररूप्यते ॥५५॥
 रतिक्रियार्थी रमणी जगन्मोहनरूपिणीम् ।
 विलोक्यालिङ्ग्य सौख्याब्धौ निमज्जति मनोहरे ॥५६॥

अत्र नायक इति विशेष्यपदाभावाद् न्यूनपदवाक्यम् ।

पदस्य कथनं यत्र कथितस्य पुनर्यदा ।
 तदा सद्भिस्तु कथितपदं तद्वाक्यमुच्यते ॥५७॥
 स्मरकेलिविनोदेन कान्ता कान्तस्य ताडनम् ।
 करोति केलिनीलाब्जकर्णपूरेण चारुणा ॥५८॥

अत्र केलीति प्रागुक्त पुनरपि केलीति कथितं तत कथितपद
वाक्यम् ।

प्रसिद्धिरहित यत्र पदमुक्त तदुच्यते ।

प्रसिद्धिहतमेतद्धि वाक्य द्रुष्ट विचक्षणै ॥५९॥

पद्माकरे सरोजाक्षी केका हसा विकुर्वते ।

ता निगम्य मम स्वान्त विभेति मदनातुरम् ॥६०॥

अत्र केकाशब्दो मयूरवाण्या प्रसिद्धो न हसध्वनौ इति प्रसिद्धिहतं
वाक्यम् ।

लोकशास्त्रक्रमो नास्ति यत्र तद्वाक्यमक्रमम् ।

तदुदाहरणं वक्ष्ये तद्वाक्यप्रतिपत्तये ॥६१॥

उद्यानकैरवाम्भोजवृद्धीना हेतवो मताः ।

दिवाकरवसन्ताब्जा मोदयन्तु सता मन ॥ ६२ ॥

अत्र कमलारामकैरवाणा वृद्धिहेतुत्वे भानुवसन्तचन्द्राणा वाच्ये
व्यत्ययकरणादक्रम वाक्यम् ।

योगसौगतसाख्याना मते देवा प्ररूपिता ।

कपिलेश्वरबुद्धास्तु क्षणिकेतरवादिन ॥६३॥

अत्र स्पष्टमुदाहरणम् ।

यत्र वाक्ये विरूपत्व विश्लेषोऽश्लीलता तथा ।

कष्टता सधिदोषा स्यु विसधि तदनुस्मृतम् ॥६४॥

वने आस्ते वरा नारी तद्दृष्टी अतिचञ्चले ।

तद्गुरू अधिकौ भातस्तज्जङ्घे अतिमोहने ॥६५॥

अत्र प्राप्तेऽपि संधौ सकृदविहिते सति, निपिद्धेऽपि संधौ तथैव
असकृद्विहिते सति वैरूप्य दोष , ततो विसधि वाक्यम् ।

ईश आगत उदात्तसपदा भूपितो^१ रमणि पश्य पश्य ते ।

एष ऊर्जितगुणस्तवाधुना कामसौख्यममित करोत्यलम् ॥६६॥

अत्र निषिद्धे सन्धौ तथैवासकृद्विहिते सति विश्लेषो दोष । ततोऽपि विसन्धि वाक्यम् ।

सुभगेशं निजं नारी विलोक्य परिरभ्य चुम्बति प्रमदम् ।

अरुणामृत अमृताभं (अधरामृतममृताभं) पाय पायं रसाब्धि-

मग्नाभूत् ॥६७॥

अत्र सुभगेशमिति सुभगमीशं सुष्ठु भगेशमिति त्रीडाकरमश्लीलं सधिकरण ततोऽपि विसधि वाक्यम् ।

गुर्वालोकनपात्रचार्वमलं पूर्वपूर्वसौन्दर्यम् ।

ऊर्वंङ्गजगजनिगडं चित्रमिद भाति कामिनीरूपम् ॥६८॥

अत्र बहुकृत्व श्लिष्टतया सधेर्दोष कष्टत्वमुच्यते । ततोऽपि विसधि वाक्यम् ।

रसानुकूलवर्णातिरिक्त यद्वाक्यमुच्यते ।

तदुक्त प्रतिकूलादिवर्णं काव्यविचक्षणै ॥६९॥

शठेन दृढमालिङ्ग्य नाथेन कठिनस्तनौ ।

कम्बुकण्ठ्या मन खेद विभिद्याप्त स्थिर सुखम् ॥७०॥

अत्र श्रृंगाररसे कठिनाना ठादिवर्णानामनुकूलता नास्तीति प्रतिकूलवर्णं वाक्यम् ।

यत्रास्थाने पद वृत्त तद्वाक्य दीर्घदर्शिभि ।

अस्थानस्थपद प्रोक्त तस्य लक्ष्य निरूप्यते ॥७१॥

तन्वङ्गीतनुमालोक्य सोत्कण्ठो नायको मुदम् ।

परमा याति लावण्यवार्धिचन्द्रकलोपमाम् ॥७२॥

अत्र लावण्येत्यादिपद सोत्कण्ठ इत्यादिपदेभ्य पूर्व वाच्यम् ।
तस्मादस्थानस्थपदवाक्यम् ।

यत्र वाक्ये समासोऽयमस्थाने वर्तते यदा ।

अस्थानस्थसमास तद्वाक्यमुक्त तदा बुधै ॥७३॥

अस्मिन् लोके तमो व्याप्तमिति क्रोधादिवारुण ।

भाति पूर्वाचलाग्रस्थतीव्रलोहितमङ्गल ॥७४॥

अत्र रौद्ररसस्थाने समासबाहुल्यस्यौजोगुणस्य प्रस्तुतत्वात्समास
कर्तव्य । अस्थाने कविवचने न कर्तव्य समास । आदित्यस्य
रौद्ररसाभावाद् अस्थानस्थसमास वाक्यम् ।

विनापि पदेन येनेद वाक्य सपूर्णता गतम् ।

तेनाधिकपदमुक्त वाक्य दुष्ट विचक्षणै ॥७५॥

चन्द्राकारसमा कीर्तिर्भानुबिम्बसम परम् ।

तेजो विभाति भूपस्य पूर्वपुण्यविपाकत ॥७६॥

अत्र आकारपदेन बिम्बपदेन च विनापि वाक्य पूर्ण भवतीत्यधिकपद
वाक्यम् ।

यत्र वाक्ये रसो नास्ति तद्वाक्यं रसविच्युतम् ।

उच्यते कविभिस्तस्य दृष्टान्त कथ्यतेऽधुना ॥७७॥

द्विहस्त एककण्ठोऽय सपादयुगलो नर ।

डित्थस्य पुत्रो वस्त्रेण युक्तो ग्रामाय गच्छति ॥७८॥

अत्र वाक्यस्य नीरसत्वाज्जातिरप्यलकारो नास्तीति रसच्युतं
वाक्यम् ।

समाप्तपुनरात्त तद्यस्य यत्समाप्य पुन स्मृतम् ।

वाक्यमुक्तं तथा तस्य लक्ष्यरूप निगद्यते ॥७९॥

स्मरेषुचन्द्रिका तस्या लीलालोलावलोकनम् ।

तनोतु भवतः प्रीति नीलनीरेजमालिका ॥८०॥

अत्र पादत्रये वाक्यं समाप्त कृत्वा नीलनीरेजमालिकेति पुनः
स्वीकृतमिति समाप्तपुनरात्त वाक्यम् ।

वक्तव्यमेव न प्रोक्त यत्र वाक्ये तदुच्यते ।

अनुक्तवाच्यमेतद्धि वाक्यं दुष्टं विशारदै ॥८१॥

लीलावलोकनात्तन्निव तव मञ्जीवसपदा ।

जायते किं निमित्तं त्वं मां न पश्यसि सेवकम् ॥८२॥

अत्र तव लीलावलोकनादेवेत्येवकारपदं नियमेन वाच्यं तत्पदं
नोक्तमित्यनभिहितवाच्यं वाक्यम् ।

अप्रस्तुतस्तुतिं यत्र वक्ति तद्वाक्यमुत्तमै ।

अप्रस्तुतार्थमित्युक्तं तस्य लक्ष्यं प्रदर्शयते ॥८३॥

दीर्घदेहो रक्तवर्णो विशालाक्षो धनाधिप ।

रम्भास्तम्भसमानोरु कवीगो वर्तते भुवि ॥८४॥

अत्र दीर्घदेहादिविशेषणं कवीन्द्रस्य श्लाघनोपयोगि न स्यादित्य-
प्रस्तुतार्थं वाक्यम् ।

प्रस्तुतस्य विरुद्धार्थं कथ्यते यत्र तन्मतम् ।

असमतपदार्थं तु वाक्यं तत्त्वविदा सताम् ॥८५॥

रणादम्बरमालोक्य बहुभीतो भटायणी ।

जित्वा शत्रुं समालिङ्ग्य वीरलक्ष्मीं प्रमोदते ॥८६॥

अत्र प्रस्तुतस्य भयानकरसस्य विरुद्धो वीररसं कथितं इत्यमतपदार्थ-
वाक्यम् ।

अपरार्धगतं यत्र वाचकं त्वेकमुच्यते ।

तद्वाक्यमुक्तमर्थान्तरैकवाचकमीदृशम् ॥८७॥

स्मराग्निपीडिते^१ तन्निव स्मरं क्रूरोऽमरं ध्रुवम् ।

तस्मादिति प्रिया दूत्या वाणी प्रोक्ता हिता मिता ॥८८॥

१ °पीडिता । २ क्रूरोरम ।

अत्र स्मर क्रूर^१ तस्मादमरं श्रय इति पूर्वार्धे हेतुर्वक्तव्य । अपरार्धे कथनादर्थान्तरैकवाचक वाक्यम् ।

प्रारब्धरूपभङ्गो यत्र स्याद् वाक्यमुच्यते सद्भि ।

भग्नप्रकममेतत्प्रकृतिप्रत्ययविभेदतोऽनेकम् ॥८९॥

केलीसदन याते नाथे रमणी च रागत प्राप्ता ।

यात इति प्रारब्धे प्राप्तेति प्रकृतिरूपभङ्ग स्यात् ॥९०॥

ईक्षण हसन नारी चुम्बित कर्तुमिच्छति ।

ईक्षण हसन चोक्त्वा चुम्बित परिकथ्यते ॥९१॥

अत्र प्रत्ययभङ्ग ।

यत्र वाक्ये गुणीभूत योग न लभते पदम् ।

समासेऽन्यै 'पदैर्मुख्यै' फलाय तदुदीरितम् ॥९२॥

अभवन्मतयोगं तु वाक्यं काव्यार्थकोविदै ।

अस्य वाक्यस्य रूपाभिव्यक्तये लक्ष्यमुच्यते ॥९३॥

तन्वी सरो मुख पद्म लावण्य निर्मल जलम् ।

अक्षीन्दीवररम्येऽस्मिन् यथेष्ट क्रीड नायक ॥९४॥

अत्र अक्षीन्दीवरशब्द समासगत प्राधान्याभावाद्गौणो यतस्ततोऽभवन्मतयोगं वाक्यम् ।

यत्र पूर्वं प्रकृष्टं स्यादुत्तरं हीनमुच्यते ।

पतत्प्रकर्षनामैतद्वाक्यमुक्तं कवीश्वरै ॥९५॥

भूपालोऽयं मृगेन्द्रो भूगन्धसिन्धुरराट् भुवि ।

अत्र प्रकृष्टं पञ्चास्याद् हीनं स गज उच्यते ॥९६॥

वाक्यदोषान् निरूप्याहमर्थदोषान्ब्रुवेऽधुना ।

तेषामुद्देशनं तावत् क्रियते क्रमतो यथा ॥९७॥

१. तस्माद् रम । २ पचास्यादीन सामज उच्यते ।

अपुष्टकष्टौ सदिग्धव्याहृतौ ग्राम्यदुष्क्रमौ ।
व्यर्थीकृतौ^१ निर्निमित्तपुनरुक्तञ्च कथ्यते ॥९८॥

अश्लील साकाङ्क्ष प्रसिद्धिविद्याविरुद्धौ च ।
उक्तविरुद्धसनियमानियमा विगेषाविगेषपरिवृत्ता ॥९९॥

विध्यनुवादविवृत्तस्त्यन्तपुन स्वीकृतौ तथा प्रोक्तौ ।
सहचरभिन्नोऽर्थानामेते दोषा प्रकीर्त्यन्ते ॥१००॥

भेद्यपोषकभावेन यत्र नास्ति प्रयोजनम् ।
उक्तभेदकवृन्दस्य सोऽपुष्टोऽर्थो निरूप्यते ॥१०१॥

रूपसौन्दर्यसपन्नो रणभूमौ भटाम्रणी ।
पञ्चास्यविक्रमोपेतो वैरिवर्गं जयत्यसौ ॥१०२॥

अत्र रूपसौन्दर्यसपन्न इति विगेषण वैरिजय न पुष्णाति । अतोऽपुष्ट-
त्वदोष ।

दु खेन जायते योऽर्थं शब्दसकोचत स तु ।
कष्टोऽर्थं कथ्यते सद्भिस्तस्य दृष्टान्त उच्यते ॥१०३॥

अब्जेब्जभ्रमण चित्र कालदोषात् प्रजायते ।
अत्र कृच्छ्रेण गम्यत्वात् कष्टार्थं इति कथ्यते ॥१०४॥

द्विधा प्रतीयते योऽर्थो निश्चयाभावकारणात् ।
सोऽर्थं सदिग्ध इत्युक्तस्तत्त्वनिश्चयकोविदै ॥१०५॥

पयोधरा नभोवृत्ता द्रष्टव्या कि सुयोषिताम् ।
उतोरस्थलवृत्तास्ते विदग्धा वदतोत्तरम् ॥१०६॥

अत्र-सस्यार्थी वा कामुको वा वक्ता चेन्नश्चयो भवेत् ।
योऽर्थो न श्लाघ्यते तस्य प्रकर्षं पुनरुच्यते ॥१०७॥

स्वभावमधुरा लभ्या बहवश्चन्द्रिकादय ।
रमणीचन्द्रिका स्वान्तचकोराह् लादनाय मे ॥१०८॥

अत्र पूर्व चन्द्रिकादिकमनादृत्य पुनश्चन्द्रिका श्लाघ्यते ।

निल्लजपुरुषेणार्थो श्रव्य सद्भिः प्ररूपित ।

य स ग्राम्यो मतो लोके तदुदाहृतिरुच्यते ॥१०९॥

ऊरूमूल सुधाकल्पं शृंगाररसमन्दिरम् ।

कान्ताजनाना चुम्बित्वा कृतार्थोऽय भवाम्यहम् ॥११०॥

अत्र ग्राम्यत्व प्रसिद्धम् ।

क्रमेण वाच्यौ यावर्थौ तयोर्व्यत्ययकीर्तनम् ।

दुष्क्रम कथित सद्भिः रस्योदाहरण यथा ॥१११॥

जगत्तमो हृत सर्व किरणेन स चाशुना (मुधाशुना) ।

दिवाकरेण वा स्वीयैरनुभि पाटवावहै ॥११२॥

अत्र पक्षान्तरस्वीकारे दिवाकरेणेति पूर्व वक्तव्यम् ।

श्लाघ्यस्य वस्तुजातस्य वैयर्थ्यप्रतिपादनम् ।

व्यर्थीकृत इति ज्ञेय (ज्ञेय) तस्य लक्ष्य प्रकाश्यते ॥११३॥

जगत्तापहरश्चन्द्रस्तमोहारी दिवाकर ।

आहूलादिनी सुधा चात किमत किमत फलम् ॥११४॥

अत्र श्लाघ्याना चन्द्रादीना व्यर्थत्वादाह्लादन व्यर्थीकृत उच्यते ।

हेतोर्विना कार्यमुक्त यत्र सोऽर्थोऽभिऽधीयते ।

अहेतुक पुन तस्य दृष्टान्तकथन यथा ॥११५॥

यो वातदेही तेनेद हिमाम्बुहरिचन्दनम् ।

त्यक्त विलोक्य चैत्रोऽपि तादृश वस्तु मुञ्चति ॥११६॥

अत्र हरिचन्दनादिवस्तुत्यागे वातदेहिनो वात कारणम् । चैत्रस्यापि तत्त्यागे हेतुर्नास्ति ।

१ सुधात किं किमत ।

एकार्थं कथ्यते द्विश्चेत् पुनरुक्तो भवेदसौ ।
 दृष्टान्तकथनेनास्य रूपव्यक्तिर्भविष्यति ॥११७॥
 सति चन्द्रे महाज्योत्स्ने मत्सतापो निवर्तते ।
 सुधाशौ सति लोकस्य प्रमोदोऽपि प्रजायते ॥११८॥
 अत्र चन्द्रे सुधाशावित्यर्थस्य पौनरुक्त्यम् ।
 मुख्यार्थादन्य एवार्थोऽश्लीलो लज्जाकरो बुधैः ।
 कथ्यते तस्य रूपाभिव्यक्तिर्दृष्टान्तदर्शनात् ॥११९॥
 कान्ता भगवती या भवती सा जगदुत्तमा ।
 गौण प्रतीयते कश्चिदर्थो लज्जाकरोऽत्र हि ॥१२०॥
 उक्तेन येन बाह्यार्थोऽपेक्ष्यते सोऽर्थ उच्यते ।
 साकाङ्क्ष इति विद्वद्भिरस्योदाहरण यथा ॥१२१॥
 बुभुक्षितोऽह त्व^१ दाता दयालुर्धनवानपि ।
 मद्भोजन कारय त्वमिति बाह्यार्थकाङ्क्षणम् ॥१२२॥
 जनैरविदितो योऽर्थ स प्रसिद्धिविरोधवान् ।
 उच्यते कविभिस्तस्य दृष्टान्तोऽपि प्रकाश्यते ॥१२३॥
 कान्ताकटाक्षवज्रास्त्रप्रहारेण मनोभव ।
 कामुकाचलसदोह चूर्णयामास लीलया ॥१२४॥
 अत्र कामस्य वज्रायुधमप्रसिद्ध लौकैरविदितम् ।
 आगमादिमहाशास्त्रबाधितो योऽर्थ उच्यते ।
 विद्याविरुद्ध स प्रोक्तस्तस्य लक्ष्य प्रकीर्त्यते ॥१२५॥
 रात्रौ गृहीत्वा कोदण्ड चर्या कृत्वा मुनीश्वर ।
 पर्यटत्यत्र कान्तारे लीलया व्याघ्रभीकरे ॥१२६॥
 अत्र मुने कोदण्डस्वोकारादिक शास्त्रविरुद्धम् ।

उक्तार्थयोर्द्वयोर्यत्र पूर्वापरविरोधनम् ।
 स स्यादुक्तविरुद्धोऽयमर्थस्तस्य निदर्शनम् ॥१२७॥
 चन्द्रोऽय ज्योत्स्नया लोकनेत्रानन्द करोत्यलम् ।
 अन्धकारोऽप्यय सर्व व्याप्नोति भुवनत्रयम् ॥१२८॥
 अत्र युगपच्चन्द्रोदयतिमिरन्यासिकथन पूर्वापरविरुद्धम् ।
 अर्थस्यानुचितस्यैव नियमो योऽपि कथ्यते ।
 उक्त सनियम सोऽपि कवितागुणशालिभि ॥१२९॥
 अहो रमण पश्य त्व तामेव सुरमञ्जरीम् ।
 मा वा शरण्यरहिता त्वत्सदायत्तजीविकाम् ॥१३०॥
 अत्र तामेवेति सुरमञ्जरीदर्शने नियमो न युक्त मावेति पक्षान्तरस्य
 स्वीकारात् ।
 वाच्यस्य नियमस्यात्र यस्त्याग स च कथ्यते ।
 बुधैरनियमस्तस्य व्यक्तिर्दृष्टान्ततो भवेत् ॥१३१॥
 समस्तलोकसव्याप्तगाढान्धतमस परम् ।
 एकेन भानुना सर्व निरस्त प्रतिबन्धकम् ॥१३२॥
 अत्र एकेनैवेति नियमस्य वक्तव्यस्य त्यागादनियम ।
 वक्तु योग्ये विशेषेऽस्मिन् सामान्यकथन बुधै ।
 विशेषपरिवृत्तोऽय कथ्यते काव्यकोविदै ॥१३३॥
 दानेन तर्पिताशेषलोकोऽय पुरुषोत्तम ।
 समस्तभुवनस्तुत्यो कलौ वृक्षायते सदा ॥१३४॥
 अत्र कल्पवृक्षायते इति वृक्षविशेषे वक्तव्ये वृक्षायते इति वृक्षसामान्य-
 कथनम् । विशेषपरिवृत्त विशेषव्यत्यय इत्यर्थ ।
 सामान्ये यत्र वक्तव्ये विशेष परिकीर्त्यते ।
 सामान्यव्यत्यय सोऽय कथ्यते कविपुङ्गवै ॥१३५॥
 कान्तानीरेजबाणेन पीड्यते विरहोदये ।
 पुष्पसामान्यतो नाम स्मरस्य न विशेषतः ॥१३६॥

अत्र पुष्पविशेषतो नाम मदनस्य नास्ति ।

विध्यनुवादौ कथितौ व्यत्ययरूपेण यत्र वर्तते ।

विध्यनुवादविवृत्त स उच्यते बुद्धिशालिविवुधजनै ॥१३७॥

गतो य पुरुषो मोक्ष स धर्म चरति ध्रुवम् ।

अत्र विध्यनुवादौ तौ व्यत्ययेन निरूपितौ ॥१३८॥

वक्तुमिष्टोऽर्थो विधिस्तस्य पुन कथनमनुवाद । तयोर्व्यत्ययकथनं
विध्यनुवादविवृत्त । यो धर्म चरति स्म इति विधि स मोक्ष गत
इत्यनुवाद इति व्यत्यय ।

अर्थो यत्र त्यक्तस्तस्यादान मुहु कृत सोऽपि ।

त्यक्तपुन स्वीकृत इति निगद्यते बुद्धिशालिविबुधेन ॥१३९॥

विरक्तो याति पत्नी या मन्यते य तृणाय स ।

विषयार्थसुखाम्भोधौ निमज्जति रसोदयात् ॥१४०॥

अत्र विरक्त इत्यादिना परिग्रह त्यक्त्वा विषयसुखाम्भोधौ
मज्जतीति वाक्येन पुनराधत्ते ।

यत्रोत्कृष्टेन कथनं निकृष्टस्य सम स च ।

भिन्न सहचरैरुक्तस्तस्य लक्ष्य प्रकाश्यते ॥१४१॥

आरामे तरवो भान्ति काका अपि चकासति ।

कोकिला राजकीराश्च राजहसा मधुव्रता ॥१४२॥

अत्र उत्कृष्टेभ्यस्तरुकोकिलादिभ्य काका भिन्ना इति सहचरभिन्न ।

। पदवाक्यार्थदोषास्ते गुणीभाव क्वचित् क्वचित् ।

प्रयान्ति तेषा दृष्टान्त कथ्यतेऽस्माभिरीदृश ॥१४३॥

घटते, दौकते, प्साति, पठति श्लाघतेऽटति ।

एधते ध्वनति स्नाति भूपतिभूषयत्यलम् ॥१४४॥

१. द्रोति ।

८

उदाहरणकाव्ये वाक्यमेतादृश विद्यमान श्रुतिकट्वपि न
दुष्टमिति ज्ञेयम् ।

द्वयर्थत्र्यर्थकाक्षरप्रहेलिकाद्वयक्षरादिकाद्येषु ।

अममर्थकिलष्टाद्या दोषा उक्ता गुणा मता सद्भिः ॥१४५॥

विना सर्व मया दृष्ट सर्वज्ञो नियते तत (?) ।

सर्वज्ञेनापि पीडयेत परम सुखमद्भुतम् ॥१४६॥

अत्र प्रहेलिकायामत्यन्तव्यवधानेन ज्ञायमानोऽप्यर्थः । कष्ट इति
दोषोऽपि गुणो ज्ञेयः ।

कपिध्वजादपेतोऽय भुवने पतितो नरः ।

क्षितौ स्थितोऽपि देह स्व विहाय लघुतो गतः ॥१४७॥

इयमपि प्रहेलिका । कपिध्वजशब्दो नेयार्थोऽपि न दुष्यति भुवनक्षि-
तिशब्दावसमर्थावपि स्वार्थे दुष्टौ न भवतः । अन्यदप्युदाहरण-
मभ्यूह्यम् ।

'बल्यरि कल्यरि पातु गुर्वङ्गो वै नृपोऽपि च ।

अनङ्वानिव गक्तो हि खलतीति युतस्तुवः ॥१४८॥

छान्दसभाषिते च वै गब्दादिर्निरर्थकोऽपि न दुष्यति । बल्यरि
कल्यरि गुर्वङ्ग इति सधिवृषणमपि न ।

चटकारोहण स्त्रीणां तुरङ्गमविघट्टनम् ।

मर्कटालिङ्गन चित्तमोहसंमददायकम् ॥१४९॥

अत्र लज्जाकरमञ्जलीलमपि कामशास्त्रे (न) दूषितं लक्षणशास्त्रत्वात् ।

मूत्रस्थान भगो गुह्य पुरीषस्थानमुच्यते ।

स्त्रीणां तत्र नरो ज्ञानी को विधत्ते मनोमुदम् ॥१५०॥

१ In an identical context Alaṅkāra-saṅgraha (VI
82. 83) reads बल्यरि-क्रत्वरो etc.

अत्र जुगुप्साकरमल्लीलमपि वैराग्यवचने न दूषणम् ।

सवज्र काञ्चनमय शिवागारं सराजकम् ।

मन्दिर नृपतद्वैरिवर्गयो सममोडितम् ॥१५१॥

अत्र सदिग्धमपि न दूषण द्वयर्थबन्धत्वात् ।

गल्यत्रय च संज्ञा च दण्डत्रयमनीडितम् ।

परित्यज्य मुनीशोऽय सन्मार्गं राजते भृगम् ॥१५२॥

अत्र शल्यादि पदमप्रतीतमपि प्रवचनप्रसंगे न दुष्टम् ।

आलिङ्ग्यमाना रमणी निजेशेन मुद गता ।

अह शृङ्गारवारंशावित्युक्त्वा विरराम सा ॥१५३॥

अत्र मज्जामीति पदेन न्यूनमपि परवगत्वे दूषण न ।

तत्त्व जिनमुनीशोऽय न जानाति न कि तु वै ।

जानातीत्येव तथाप्येतन्न गृह्णाति न मुञ्चति ॥१५४॥

अत्र जानातीत्यधिकमपि पदमन्ययोगव्यावृत्तये गुणो भवति ।

विपादाद्भुतमुत्क्रोधैर्न्यनिश्चयगोचरे ।

प्रसादने दयाया च द्विस्त्रिरुक्त न दुष्यति ॥१५५॥

पश्य पश्य न मा धूर्तं गच्छ गच्छ निजास्पदम् ।

त्वया ज्ञातापराधेन फल कि धिग् धिगीदृशम् ॥१५६॥

अत्र विपादवचने पुनरुक्तता गुण ।

अहो कीर्तिरहो सूक्तिरहो मूर्तिरहो दया ।

अहो बुद्धिरहो सिद्धि कामिरायमहीपते ॥१५७॥

अत्र विस्मये पौनरुक्त्य गुण. । अहोपदाना बहूनाम् ।

मदनस्य पताकेयं स्मरमन्त्राधिदेवता ।

आलिङ्ग्यालिङ्ग्य चुम्बित्वा चुम्बित्वा भुज्यता त्वया ॥१५८॥

अत्र हर्षवचने द्विरुक्तिर्भूषणम् ।

रतिक्रियाया कोपेन कामिन्या निजनायक ।

वामपादेन सताडय सताडयाबध्य दण्डित ॥१५९॥

अत्र सकोपवचने द्विरुक्तिर्भूषणमेव ।

रक्ष मा रक्ष मा कान्ते न ताडय न ताडय ।

मुञ्च मुञ्च प्रकोप त्व त्वत्पदं शरणं मम ॥१६०॥

अत्र दैन्यवचने पुनरुक्तता न दूषणम् ।

रायबद्धेन सदानं क्रियते क्रियते मुदा ।

प्रजापि परिवारोऽपि रक्ष्यते रक्ष्यते सदा ॥१६१॥

अत्रार्थनिश्चये पुनरुक्तत्वं न दूषणम् ।

प्रसन्नोऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु रायबद्ध भवानहो ।

अनाथक प्रजावृन्द रक्ष रक्ष दयापर ॥१६२॥

अत्र प्रमादनेऽनुकम्पाया पौनरुक्त्यं न दूषणम् ।

रायबद्धमहीनाथ साक्षादिक्षुशरासनम् ।

तस्य पुण्यं न सामान्यं दृष्ट्वा चित्रीयते जन ॥१६३॥

अत्र तस्य पुण्यं न सामान्यमिति वाक्यं गर्भितनामधेयं दुष्टमपि
विस्मये गुण एव ।

नेद सरो वह्निकुण्ड प्रवालशयनं न च ।

अङ्गारराशिरधुना भृशं दहति मा द्वयम् ॥१६४॥

सरसो वह्निकुण्डत्वकथनं पल्लवशय्याया अङ्गारराशित्ववचनं च
प्रत्यक्षविरुद्धमपि विरहे न दूषणम् ।

चन्द्रं राहुर्न बाधेत जगदानन्दकारणम् ।

रोहिण्यां सह तस्यास्तु मङ्गलादपि मङ्गलम् ॥१६५॥

अत्र श्लोककथितार्थसमोऽन्योऽर्थः । प्रसिद्धकारणेन नियोऽप्यनुशये
गुणो न दूषणम् ।

पुण्डरीक गता चन्द्रश्रीं रात्रौ न स्थिराजनि ।

धावल्यलक्ष्मी रायस्य कीर्तिं श्रित्वा सदातनी ॥१६६॥

पुण्डरीकस्य दिवसे द्योतनाच्चन्द्रस्य रात्रौ भासनादिति हेतोरकथ-
नेऽपि प्रसिद्धत्वान्निर्हेतुवचन गुण ।

हसनस्यापि कीर्तेश्च शुभ्रत्व कोपरागयो ।

रक्तत्व चन्द्रिकापान चकोराणा निरूप्यते ॥१६७॥

पापापकीर्तिनभसा कृष्णत्व परिकीर्त्यते ।

मन्दानिलेन्दुकपूरजीमूतारामसतते ॥१६७॥

हरिचन्दनकासारमुक्ताहारकलापिनाम् ।

कीरकोकिल^१माल्याना भृङ्गादीना वियोगिपु ॥१६९॥

दाहकत्व 'कटाक्षस्य वेधकत्व विलोचनै ।

रूपस्य पान नद्यब्ध्योर्नीरेजादि प्रवर्तनम् ॥१७०॥

कुसुमाना मनोजस्य शरचापत्वकीर्तनम् ।

भ्रमराणा धनुर्ज्यात्व मनसो वाणलक्ष्यताम् ॥१७१॥

सुहृद्वसन्त कीरोऽव्व प्रतिहारश्च कोकिल ।

काव्येष्विवत्यादिकथनमसदेव प्रसिद्धिभाक् ॥१७२॥

शिर गेखरकर्णावतसश्रवणकुण्डले ।

सान्निध्यादिप्रकाशार्थं मस्तकादिनिरूपणम् ॥१७३॥

रत्नयोगनिवृत्त्यर्थं मुक्ताहारपद मतम् ।

रूढिप्रकाशनायेद धनुर्ज्याविद्धमीरितम् ॥१७४॥

हर्षमालेति सुरभिपुष्पनिर्माणमिद्धये ।

कलभे करिगव्दस्य प्रयोगो व्यक्तिबोधक ॥१७५॥

१ तावान स्थिराजनि २ माल्यासा ।

इत्यादीना सतामेव ज्ञेय काव्ये समर्थनम् ।
कविताप्रौढिविज्ञानशालिभि कविकुञ्जरैः ॥१७६॥

रसाभासोऽपि भावानामाभास परिकीर्त्यते ।
स्वशब्दग्रहण कष्टकल्पन च निरूपितम् ॥१७७॥

^१अव्यक्तिरनुभावस्य विभावस्य च कीर्तिता ।
प्रतिकूलविभावादिग्रहण दीप्तता मुहु ॥१७८॥

^२अकाण्डे प्रथम च्छेदोऽप्यङ्गस्याप्यतिविस्तृति ।
अङ्गिनोऽनुसधान प्रकृतीना विपर्यय ॥१७९॥

अनङ्गस्याभिधान च रसदोषा प्रकीर्तिता ।
एतेषा रसदोषाणा लक्ष्यलक्षणमुच्यते ॥१८०॥

अनौचित्य रसस्य स्याद् रसाभासो द्विधा स्मृत ।
अनेकविषयोऽप्येकविषयोऽनुचितोऽपि च ॥१८१॥

रूपातिशयसपन्ना काचिन्नारी विलोकते ।
चैत्र सुरूपमप्यन्य मैत्र श्रीदत्तनामकम् ॥१८२॥

अत्र रसस्य नानापुरुषविषयत्वाद्रसाभास ।
माता मे मित्तर दृष्ट्वा मोहोल्लासेन चुम्बनम् ।
कृत्वा कामसुखाम्भोधौ निमज्जति कलान्विता ॥१८३॥

अत्र मातापितृविषयस्य रसस्यानुचितत्वाद् रसाभास ।
भावानौचित्यमत्रोक्तो रसाभासो विशारदै ।
भावाभासाभिधानोऽसौ रसाभासोऽनुमन्यताम् ॥१८४॥
इय रतिसमा नारी त्रैलोक्येऽप्यतिदुर्लभा ।
अस्या स्वीकरणोपाय करिष्यामि कदाचन ॥१८५॥

स्वस्मिन्निच्छारहिताया इतरनार्याश्चिन्तनमनौचित्यनिन्दितम् ।

इतरेषा रसाना च भावानामपि गम्यताम् ।
 आभासत्व महाकाव्यरसभावविचक्षणै ॥१८६॥
 रसे भावे प्रतीते च तद्वाचकपदग्रह ।
 स्वशब्दग्रहण सद्भिर्रसदोष प्रकीर्त्यते ॥१८७॥
 इमा मदनमञ्जूपा रूपसौन्दर्यशोभिनीम् ।
 शृङ्गाररससपृक्ता पद्य पश्य युवेश्वर ॥१८८॥

रसे सुप्रतीतेऽपि शृङ्गाररसपदग्रहण दुष्टम् ।

मुग्धा लज्जा सभया सस्वेदा विमुखा रते ।
 निजेशालिङ्गिता केलिसदन प्रवर्तते ॥१८९॥

मुग्धाया यौवनारम्भान्निजेशालिङ्गने लज्जादीना स्वयमेव सभ-
 वाल्लज्जादिपदैर्व्यभिचारिभावाना ग्रहण दुष्टम् ।

वामपादप्रहारेण कामिन्या हस्तताडनात् ।
 नायकस्य रतौ चित्ते कोऽप्युत्साह प्रवर्तते ॥१९०॥

उत्साहस्य स्थायिभावस्य प्रतीतस्य स्वशब्देन ग्रहण दुष्टम् ।

न रज्यति विमोहेन मही लिखति कामिनी ।
 रोदन च विधत्तेऽसौ कि कर्तव्य मया सखे ॥१९१॥

विप्रलम्भे रसे रोदनाद्यनुभावाना कल्पना कष्टकल्पना । करुणरसेऽपि
 सभवात् ।

अहो तन्वि विलोकस्व मा त्वत्पादशरण्यकम् ।
 यौवनादिरनित्योऽत्र ततो भोग्य महासुखम् ॥१९२॥

शान्तरसे यौवनादेरनित्यत्वकथनम भाव शृङ्गाररसे तस्यानुभावस्य
 प्रतिकूलस्य ग्रहण प्रतिकूलग्रह कथ्यते ।

रसदोषप्रपञ्चाना काव्येष्वेव निदर्शनम् ।
 अतस्तत्रैव दृष्टान्ता ज्ञेया रसविशारदै ॥१९३॥

निर्दोषे सगुणे काव्ये सालकारे रसान्विते ।
 रायबङ्ग महीनाथ तव कीर्ति प्रवर्तताम् ॥१९४॥
 स्याद्वादधर्मपरमामृतदत्तचित्त
 सर्वोपकारिजिननाथपदाब्जभृङ्ग ।
 कादम्बवगजलरागिसुधामयूख
 श्रीरायबङ्गनृपतिर्जगतीह जीयात् ॥१९५॥
 गर्वारूढविपक्षदक्षबलसघाताद्भुताडम्बरा-
 मन्दोद्गर्जनघोरनीरदमहासदोहञ्जञ्जानिल ।
 प्रोद्यद्भ्रानुमयूखजालविपिनव्रातानलज्वालसा-
 दृश्योद्भासुरवीरविक्रमगुणस्ते रायबङ्गोद्भव ॥१९६॥
 कीर्तिस्ते विमला सदा वरगुणा वाणी जयश्रीपरा
 लक्ष्मी सर्वहिता सुख सुरसुख दान निधान महत् ।
 ज्ञान पीनमिद पराक्रमगुणस्तुद्भो नय कोमलो-
 रूप कान्ततर जयन्तनिभ भो श्रीरायभूमीश्वर ॥१९७॥

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्ररविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्तिमुनीन्द्र-
 चरणान्जचञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिराजबङ्ग-
 नरेन्द्रगरदिन्दुसनिभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रि-
 कानाम्नि अलकार-सग्रहे दोषगुणनिर्णयो नाम
 दशम परिच्छेद ॥१०॥ समाप्त ॥

स्वस्ति श्रीमत्पुरासुरवृन्दवन्दितपादपाथोजश्रीमन्नेमोश्वरसमुत्पत्तिपवित्रीकृत-
 गीतमगोत्रोत्पत्तिसमुद्भूतद्विजश्रीमद्दोर्बलजिनदासशास्त्रिणामस्तेवासिना
 श्रवणबेलगुलक्षेत्रनिवासि-विजयचन्द्रेण जैनक्षत्रियेण
 अय ग्रन्थ समाप्ति नोत. ।

Appendix—A

॥ परिशिष्टम्—१ ॥

अकाराद्यनुक्रमेण पद्यसूची

| | | | |
|---------------------------|-------|----------------------------|--------|
| अकारणमहाब्रन्धु | ९-१४९ | अधर भक्षयित्वासी | १०-१६ |
| अकारादिअकारान्ता | १-३६ | अनङ्गस्याभिधानं च | १०-१८० |
| अङ्गीकृतार्थं यद् वस्तु | १०-५ | अनन्तरानुजो धर्म | १०-२२ |
| अचन्द्रा चन्द्रिका कीर्ति | ९-१४८ | अनुकूल शठो वृष्टो | ४-१७ |
| अणिमादिगुणोपेतो | १०-१४ | अनुभाव क्रमाच्चित्त | ३-८९ |
| अत कारणतोऽस्माभि | ३-२ | अनुभावस्तु त्रिक्षेपो | ३-८२ |
| अतिरवत बालभानु | ९-७९ | अनुभावस्तु शृङ्गारे | ३-३० |
| अतो गुणा प्रकीत्यन्ते | ५-३ | अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यं | ३-९६ |
| अत्यन्तरुर्कशार्थाना | ७-५ | अनुभावोऽस्य वक्त्रस्य | ३-१०१ |
| अत्यन्तकोमलार्थाना | ७-४ | अनुगतस्य नाथस्य | ४-१०७ |
| अत्यन्तकोमलार्थार्थे | ७-१४ | अनुरागवता केनचित् | ४-५० |
| अत्यन्तयोवनात्यन्त | ४-६५ | अनोचित्य रसस्य स्याद् | १०-१८१ |
| अथ कुट्टमित चोक्त | ४-११६ | अन्तो नास्ति विकल्पाना | ९-८६ |
| अथवा पदबन्धस्यो | ५-१६ | अन्यवस्तुगुणारोपो | ५-२० |
| अथवा शक्तिनैपुण्य | २-२ | अन्यवाक्यस्य मध्येऽस्ति | १०-५१ |
| अदृष्ट्वा गौरव यत्र | ३-५६ | अन्यस्त्रीसङ्गमादीष्यार्थि | ४-१०६ |
| अशेष सगुणा रीनि | १-२३ | अन्यस्य दस्तुनोऽन्यस्मिन् | ९-२८८ |
| अद्भुताख्यरसो लाके | ३-१२४ | अन्याय इति शब्द च | ९-२६३ |
| अद्भुतो रौद्रवैरी तु | ३-१२९ | अन्येऽपि भेदा सन्त्येव | ९-२३२ |

| | | | |
|--------------------------|--------|---------------------------|--------|
| अन्ये विकल्पा द्रष्टव्या | ९-१७४ | अर्थयोर्यत्र समयो | ९-२६१ |
| अपरुषातिफल दद्यात् | १-३८ | अर्थस्य गोपन वाचा | ९-१८६ |
| अपरार्धगत यत्र | १०-८७ | अर्थस्यानुचितस्यैव | १०-१२९ |
| अपरित्यज्य मुख्यार्थ | २-१७ | अर्थानियत्वमित्युक्ते | ५-२७ |
| अपुष्टकष्टौ सदिरघ | १०-९८ | अर्थो यत्र त्यक्त | १०-१३९ |
| अपूर्व भोज्यमप्यत्र | ८-४ | अलकृतीनामुक्ताना | ९-३०५ |
| अप्रतोतमिति प्रोक्ता | १०-४ | अलकृतीना सगृह्या | ९-३०९ |
| अप्रयुज्य विशेष्य तद् | ९-२९६ | अलकृतीना सर्वासा | ९-३०८ |
| अप्रस्तुतस्तुति यत्र | १०-८३ | अल्पप्राणाक्षराण्येव | ५-१३ |
| अप्रस्तुतार्थममत | १०-४३ | अवर्णनीयवस्तुना | ४-१३१ |
| अब्ज कूर्ममनङ्गराज | ९-११८ | अवहित्थालस्यवेगौ | ३-२२ |
| अब्जेऽब्जभ्रमणं चित्र | १०-१०४ | अव्याप्तिरनुभावस्य | १०-१७८ |
| अब्जोऽब्जं राजतीत्युक्ते | २-३९ | अशय्या कामकेली वा | ८-१ |
| अभवन्मतयोग तु | १०-९३ | अश्लील. साकाङ्क्ष. | १०-९९ |
| अभिधा लक्षणा गोणी | २-२६ | अश्वगोगजवृक्षादि | २-११ |
| अभिधाशक्तिमाश्रित्य | २-२७ | अष्टादशमहाश्रेणी | १-१० |
| अमन्दानन्दसदोह | १-२ | अष्टावेते गणा प्रोक्ता | १-५४ |
| अमावास्या तिथौ रात्रौ | ९-४८ | असकृद्याति विसर्गो | १०-४४ |
| अयं श्रीरायभूमोग | ९-१८ | असत्यग्रहिते नाथे | ४-९५ |
| अयं श्रीरायबद्धो न | ९-१९६ | असमर्थ श्रुतिकटु | १०-२ |
| अय श्रीरायवद्धो न | ९-१९७ | अस्मद्वैरिपुर त्वया बलपते | ९-२३९ |
| अय श्रीरायवद्धो न | ९-१९८ | अस्मिन् लोके तमो व्याप्त | १०-७४ |
| अरुण पद्मिनी तेजो | ९-८० | अहो कीर्तिरहो सूक्ति | १०-१५७ |
| अर्थं विवक्षित तस्मात् | १०-२४ | अहो तन्वि विलोकस्व | १०-१९२ |
| अर्थं व्यवहित वक्ति | १०-२३ | अहो रमण पश्य त्व | १०-१३० |
| अर्थचारुत्वगमक | ५-८ | अहो वचनमित्यादिर् | ३-१०६ |

| | | | |
|------------------------|--------|-------------------------|--------|
| आकारेणोद्भित्तेनापि | ९-१८० | आलम्ब्य शब्दमर्थस्य | ८-६ |
| आकाशे प्रथम छेदो | १०-१७९ | आलम्ब्य शब्दमर्थस्य | ८-७ |
| आक्षेपातिशयो सूक्ष्म | ९-९ | आलिङ्गन कुचद्वन्द्व | ३-३३ |
| आगच्छन्त निजेश रतिपति | ४ १४६ | आलिङ्गने चुम्बनादौ | ४-१५३ |
| आगत नायक कोपात् | ४-९१ | आलिङ्ग्य कामुकः सौख्य | १०-३६ |
| आगत्य रायनृपतौ | ४-१५६ | आलिङ्ग्य चुम्बति नृपे | ४-१५४ |
| आगमादिमहाशास्त्र | १०-१२५ | आलिङ्ग्यमाना रमणो | १०-१५३ |
| आदिशब्देन चेष्टादि | २-४१ | आलीजनेन नृपकुञ्जर | ४-१५२ |
| आयत्तकाननो रदध्वा | ९-२१३ | आशीर्गलकृत वस्तु | १-३३ |
| आयत्तके नृपतिकुञ्जर | ३-५३ | आमा स्त्रीणा सखी दासी | ४-१११ |
| आयात नायक श्रुत्वा | ४-१४५ | आस्थानमण्डपगते | ९-१९४ |
| आयासे सति कामिन्या | ४-१३५ | आस्य नापि ददाति | ४-६२ |
| आरक्तमालतीमाला | ९-९४ | आस्याङ्गलोकन प्रीति | ३-३१ |
| आरामकुञ्जगत | ४-१२८ | आस्येन्दुनिर्गतमनोहर | ४-१२२ |
| आरामस्यामलदेशे | १०-४९ | आह्लादनाय देवाना | ९-५५ |
| आरामे तरवो भान्ति | १०-१४२ | आह्लादयन्ति रायच | ९-२५४ |
| आरामे रायबङ्गस्य | ९-१९ | इक्षुचापसमाकार | ९-९६ |
| आरामे रायबङ्गस्य | ९-१०४ | इत पर रसाना तु | ३-११५ |
| आरोपादन्यधमस्य | ५-२१ | इतरस्माद्रमाजन्म | ३-१२७ |
| आलम्बनविभावस्तु | ३-११० | इतरेषा रसाना च | १०-१८६ |
| आलम्बनविभावस्तू | ३-८८ | इति सप्तविधा प्रोक्ता | २-८ |
| आलम्बनविभावोऽत्र | ३-२६ | इत्थ नृपप्रार्थितन | १-२२ |
| आलम्बनविभावोऽत्र | ३-६५ | इत्यादाना सतामेव | १०-१७६ |
| आलम्बनविभावोऽत्र | ३-१०० | इन्दुना जीयते पुण्ड | ९-३६ |
| आलम्बनविभावोऽत्र | ३-८१ | इन्दुमन्वेति कीर्तिस्ते | ९-३० |
| आलम्ब्य यं रसोत्पत्ति. | ३-१५ | इन्दोरिव नृसिंहस्य | ९-५३ |

| | | | |
|----------------------------|--------|---------------------------|--------|
| इन्दो ज्योत्स्नेव दुग्धाभौ | ९-५१ | उत्साहो दक्षता बुद्धि. | ४-४ |
| इन्द्रगोपस्य पतन | ३-२९ | उद्घापनास्तु स्याद्वाद | ३-१११ |
| इमा मदनमञ्जूषा | १०-१८८ | उद्यानकैरवाभोज | १०-६२ |
| इय रंतिसमा नारी | १०-१८५ | उद्याने प्रीतियुक्ता | ४-१६० |
| इष्टाना यत्र वस्तूना | ९-२६८ | उद्वेगो यदि वर्तेत | ९-५९ |
| इष्टानिष्टविनाशाप्ति | ३-७५ | उद्वेगो विदुषा यत्र | ९-५७ |
| इष्टार्थादन्यदुष्टार्थ | १०-३० | उन्नतस्थानवृत्तोऽपि | ९-१४१ |
| ईक्षण हसन नारी | १०-९१ | उपमालकृतावेते | ९-६४ |
| ईश आगत उदात्तसपदा | १०-६६ | उपमालकृतौ पूर्वं | ९-२०० |
| ईषत्कठिनवाच्याना | ७-७ | उपवनजलवेली | ५-१७ |
| ईषन्मृदुमदर्भा | ७-१५ | उपहृतलुप्तविसर्ग | १०-४१ |
| उक्तरीतित्रययुता | ६-१३ | उपहासयुता या च | ४-६८ |
| उक्तस्य पुनरुक्ति स्यात् | ९-८७ | उल्लसन्ती त्वदोयेय | ५-१४ |
| उक्ताना यत्र वाच्याना | ९-१८९ | ऊरुमूलं सुषाकल्प | १०-११० |
| उक्तार्थयोर्द्वयोर्यत्र | १०-१२७ | ऊर्जस्व्यप्रस्तुतस्तोत्रे | ९-१० |
| उक्तार्थाना विरुद्धत्व | ९-२०३ | एकवाक्यमनेकार्थं | ९-२५० |
| उक्तेन येन वाह्यार्थो | १०-१२१ | एकस्या नायिकाया य | ४-१८ |
| उक्त्वा पदगतदोषान् | १०-३४ | एकस्या रागशून्योऽपि | ४-२० |
| उत्कर्षो यत्र गर्वस्य | ९-२२१ | एकाङ्गनालोलवित्त. | ४-२४ |
| उत्कृष्टतान्तर यत्र | ९-२८२ | एकार्थं कथ्यते द्विश्चेत् | १०-११७ |
| उत्तम ध्वनिमिव्यवत | १-३२ | एतत्काव्यमुखे वर्ण | १-३४ |
| उत्तम मध्यम प्रोक्त | १-३१ | एतद्गुणविशिष्टोऽय | ४-५ |
| उत्तमो मध्यमो लोके | ३-६९ | एतद्वेदमिद वेति | ९-२९० |
| उत्तुङ्गोऽपि न मेह | ९-२०५ | एतादृश्या सभासद्भिर्. | ९-६१ |
| उत्पन्नयीवनोद्भूत | ४-६३ | एते दशगुणा प्रोक्ता | ५-५ |
| उत्साहस्यायिभावोऽत्र | ३-८६ | एतेषा नायकाना तु | ४-२९ |

| | | | |
|---------------------------|--------|----------------------------|-------|
| एतेषा लक्षणं प्रोक्तं | ३-७२ | कादम्बक्षितिपस्य तीर्थममले | ९-१७३ |
| एतैर्गुणैर्भासुरकाव्य | ५-३१ | कादम्बक्षितिपेन भोकर | ३-७८ |
| एवमन्ये स्याधिभावा | ३-९ | कादम्बनाथ राघेन्द्र | ९-११३ |
| एव प्रगल्भा कथिता | ४-८२ | कादम्बनाथ करुणारस | ९-२८१ |
| एव रम्यस्वाश्वरै कृतिमुखे | १-६३ | कादम्बनाथ कीर्तिस्ते | ९-२७ |
| एव लक्षणयुक्तोऽयं | ३-६ | कादम्बनाथ तत्र पुण्यफल | ३-६३ |
| एव शब्दगतार्थनिश्चययुतै | २-४२ | कादम्बनाथ नृप | ४-५९ |
| एषा चतुर्णानेतुणा | ४-१६ | कादम्बनाथ परिपालित | ४-१२ |
| एषामाद्यास्त्रयो देह | ४-११७ | कादम्बनाथ मदन | ३-४९ |
| भोज कान्तिगुणोपेता | ६-९ | कादम्बनाथमदनेन | ४-१४८ |
| औचित्यव्यावृत्तदोषाच्च | २-३१ | कादम्बनाथ रमणो | ३-४५ |
| कल्लगघाश्च लक्ष्मी ते | १-३९ | कादम्बनाथ लोकेऽत्र | ९-७६ |
| कटाक्षचन्द्रिकापीय | ९-८२ | कादम्बनाथ वचन | ४-२१ |
| कठिनाक्षररुदर्भ | १०-७ | कादम्बनाथ सा कीर्ति | ९-२४ |
| कपिव्रजादपेतोऽय | १०-१४७ | कादम्बनाथ साम्राज्ये | ९-२९९ |
| कर्पूराणि वितीर्य | ४-२५ | कादम्बनाथस्य मदान्वजूर | ५-१० |
| कलहान्तरिता या वा | ४-१०९ | कादम्बनाथको हार | ९-१०७ |
| कलाधरो न शोताशु, | ९-२०४ | कादम्बरात कीर्तिस्त | ९-१७२ |
| कलाप्रीद्विगुता धैय | ४-५७ | कादम्बरायनाथस्य | ९-१११ |
| कलौ कालं प्रजाधर्म | ९-१६८ | कादम्बरायभूनाथ | ९-११० |
| कलौ काले महादुष्टान् | ९-१५९ | कादम्बरायभूनाथस्य | ९-२१८ |
| वल्पान्तानिलवेगधूणित | ६-१० | कादम्बरायसदनाद् | ९-१०९ |
| कषायवर्णता याति | ३-११९ | कादम्बरायो मारश्च | ९-१४४ |
| काञ्चीनारी नृपतितिलको | ४-८८ | कादम्बवशे विस्तीर्णे | ९-२८५ |
| कादम्बक्षितिनाथ | ३-४७ | कादम्बवाधिचन्द्रस्य | ९-२७९ |
| कादम्बाक्षितिवायकस्य | ३-५१ | कादम्बावधौ सुसारो | ९-२८७ |

| | | | |
|---------------------------|--------|--------------------------|--------|
| कादम्बेशेन रायेण | ९-१०८ | काव्येषु ते विभावाद्याः | ३-१० |
| कादम्बेश्वर कीर्तिस्ते | ९-२९ | कासारे जललीलया | ४-८३ |
| कादम्बेश्वररायवङ्ग | ८-३ | किं किं कराब्जनिपतन् | ९-२९२ |
| कादम्बेश्वररायश्चित्तो | ४-४९ | किमास्यं शारद चन्द्र | ९-१७७ |
| कान्ताकटाक्षवज्रास्य | १०-१२४ | किमियं चन्द्रिकाहोस्वित् | ९-१७० |
| कान्ताकामुयोरत्र | ३-३४ | कीदृश्यलकृती रीतिः | १-२१ |
| कान्ताकामुकयो. मृक्त्ति | ३-३७ | कीर्तिचन्द्रातपे शैत्यं | ९-१५४ |
| कान्ताताटङ्कवक्रं विरचित | ९-६६ | कीर्तिज्योत्स्नापि तापाय | ९-१३६ |
| कान्तानीरेजवाणेन | १०-१३६ | कीर्तिप्रतापो रायेण | ९-१२८ |
| कान्ता भगवती या | १०-१२० | कीर्तिस्तेऽप्यतिलङ्घते | ७-१२ |
| कान्ताया कामुकस्यापि | ३-४२ | कीर्तिस्ते विमला सदा | १०-१९७ |
| कान्तास्यं वरमीक्षते | ९-११७ | किसलययुतकर्णा | ४-१४४ |
| कान्तास्यचुम्बने सक्तो | ९-१३१ | कुतो ललाटे तिलक | ९-१५२ |
| कान्तेन नारीसमाया विदग्धा | १०-४७ | कृप्यति रमणो नारी | १०-५४ |
| | | कुवलयकरसार | ९-२९७ |
| कामाग्निप्रशमार्थमालि | ३-५५ | कुमुमाना मनोजस्य | १०-१७१ |
| कामिनीवदन पद्म | १०-१९ | कृतापराध सुरते | ४-७३ |
| कामिन्या पदपङ्कजेद्ध | ९-६८ | कृताश्रूणा शङ्कादीना | ४-१४७ |
| कारकजापकौ हेतू | ९-९२ | कृत्वा तृप्त जगत्सर्व | ९-२११ |
| कारुण्योपेतचित्त | ९-१६ | कृत्वापि दान जगतो | ९-१७१ |
| कार्यकारणयोर्वत्र | ९-२४३ | केलीसदन याते नाये | १०-९० |
| कार्यमारभम णेन | ९-२४८ | कोकिला रणन कृत्वा | ९-९९ |
| काले कलौ स्त्रहितमङ्गल | ९-१९३ | कोटीरराजितो हार | ९-२२ |
| काव्यशोभाकर काव्य | ९-३ | कोप निवारयितुमिष्ट | ९-२४९ |
| काव्यस्य लक्षण किं वा | १-२० | कोपात्नायिकया निजेश | ४-७८ |
| काव्याङ्गभूतो शब्दार्थौ | ९-२ | कोपालिङ्गितलीलकेन | ४-७५ |

| | | | |
|-------------------------|--------|----------------------------|--------|
| कौमुदं वर्धयत्यत्र | २-१६ | गुणानां कर्मणा यत्र | ९-२४० |
| कौमुदं वधयत्यत्र | २-२५ | गुण्यभावे गुणो नास्ति | ४-१ |
| क्रमागतामिमां भूमिं | १-१८ | गुरुणा लघुना ताम्भ्या | १-५१ |
| क्रमेण वाच्यो यावर्थी | १०-१११ | गुर्बालोकनपात्रचार्वमल | १०-६८ |
| क्रियाविशेषैरधिकै | ४-१३९ | गौरवर्णेन वाभाति | ३-१२१ |
| क्रोडयत्यङ्गनालोका | ९-९० | ग्राम भवति चेत्रोऽमी | १०-६ |
| क्रोधाख्यस्थायिभावाऽय | ३-८० | घटते ढौकते ष्पाति | १०-१४४ |
| क्षणालिङ्गनावधनाय | ९-१६४ | घण्टाटङ्कुरभोक्त्रण | ७-११ |
| क्षमासामर्थ्यगाम्भीर्यं | ४-७ | घोरश्रीयुद्धरङ्गे समर | ३-८५ |
| क्षस्तु सवसमृद्धं ड्य | १-४५ | चक्रोरनिकरो दृष्ट्वा | ९-३४ |
| क्षीरवाराशिना तुल्या | ९-४१ | चकोरो सदृशो दृष्टि | ४-१२४ |
| क्षीराब्धिना समानापि | ९-३९ | चक्रवाकरतिक्रोडा | ३-२८ |
| क्षीराब्धिरमृतस्थान | ९-४० | चक्षुर्विकासो देहस्य | ३-६७ |
| क्षीराब्धिशरदिन्द्रादि | ९-४७ | चटकारोहण स्त्रोणा | १०-१४९ |
| क्षीराब्धिशरदाभ्रादि | ९-४६ | चतुर्मात्रा गणा पञ्च | १-५५ |
| खण्डिताया नायिकाया | ४-१०८ | चतुर्विधानामर्थाना | ८-५ |
| गगने राजते राजा | २-४० | चत्वारो नायका एते | ४-१५ |
| गङ्गातुङ्गतङ्ग | ६-१४ | चन्द्र दृष्ट्वा सरोज | ८-९ |
| गद्यकाव्यं तु वाक्यानां | १-३० | चन्द्र राहुर्न बाधेत | १०-१६५ |
| गम्भीरामलसूक्ष्मतरत्न | ९-६ | चन्द्राकारसमा कीर्ति | १०-७६ |
| गर्वगौरवमालम्ब्य | ४-१५५ | चन्द्रातप पिबति चुम्बति | ३-५९ |
| गर्वदृष्टमहाक्रोध | ३-९० | चन्द्रोऽयं ज्योत्स्नया लोक | १०-१२८ |
| गर्वारूढविपक्षदक्ष | १०-१९६ | चरन्ति मदनोद्याने | ९-१०० |
| गवर्णफलं प्रोक्त | १-६२ | चापल्यरहिता चित्त | ४-१३७ |
| गुणरोतिवृत्तिशय्या | ५-१ | चित्तवृत्तिविशेषोऽयं | ४-११८ |
| गुणवर्मादिकर्णटि | १-७ | चित्तशृङ्गारभूतोऽय | ४-१२१ |

| | | | |
|-----------------------------|--------|--------------------------|--------|
| चित्तस्य वृत्तिभेदो य | ३-३ | तत्त्व जिनमुनीसोऽय | १०-१५४ |
| चिन्तामणि कामधेनु | ९-२३६ | तदभावेऽनिष्टफल | १-३५ |
| चिन्तामणि कि न जडत्व | ९-२९ | तदुदाहृतिरन्यत्र | ९-१२४ |
| चुम्बति स्पृशति प्राण | ९-२० | तन्वङ्गीतनुमालोक्य | १०-७२ |
| चुम्बन्तं परिरम्भण | ४-६४ | तन्वा सरो मुख पद्मं | १०-९४ |
| चैत्रेण सेवकेनासौ | ९-१०३ | तरुणिचरणघात | ९-२०२ |
| छत्र सित दण्डयुतं | ६-८ | तरुणिकायदेशे स्त्रीकृता | ४-१४३ |
| छन्दःशास्त्रे यतिः प्रोक्तो | १०-५० | तरुण्या देहलावण्ये | ९-२०९ |
| जगत्तमो हृतं सर्वं | १०-११२ | तरुण्या मदनावासो | १०-१८ |
| जगत्तपहरश्चन्द्र | १०-११५ | तरुण्या रूपमौन्दर्यं | ४-१२६ |
| जगत्यर्थान्तरन्यास | ९-१३७ | तवकीर्तिमहालता | ९-१७६ |
| जगन्मोहनरूपेण | ९-१३९ | तवतेजो गुणलब्धु | ९-१२६ |
| जगानुराग प्रियवादि | ४-३ | तव पल्लववज्रेण | ९-९७ |
| जनैरविदितोयोऽर्थो | १०-१२३ | तस्य श्रापाण्डयवङ्गस्य | १-१६ |
| जपाकुसुमद्रक्त | ३-१२० | तव सम्बन्धनिष्काम | ९-३०४ |
| जयति ससिद्धकाव्या | १-१ | तस्यानुजो गुणाधीश | १-१३ |
| जातिक्रियागुणद्रव्य | ९-९८ | तादृश मतिभतरि | ४-७४ |
| जातीकन्दुकताडन | ३-३८ | तिलकाङ्कितरायास्य | ९-१३४ |
| जिष्णुभोमावितिभोक्ते | २-३४ | तुङ्गत्वेन महामेरु | ९-७८ |
| जुगुप्सास्थायिमावोऽय | ३-९९ | ते के नियामका ब्रूहव | २-२९ |
| जात्यश्वारूढराय | ४-१२० | तेजोभानुस्समो भानु | ९-८१ |
| ज्ञातभावचतुष्पेण | ३-६४ | तेजो विलासो माधुर्यं | ४-३५ |
| ज्ञातभेन्मथचिह्ने या | ४-९९ | त्यज्यते गृत्यते शब्दो | २-३ |
| ज्ञानंस्वीकुरु वङ्गराज | ९-२४७ | त्यागवाः कुर्वते युद्धम् | १०-३९ |
| तेतो विहसित मध्ये | ३-७० | त्रयस्त्रिंशत्समारुगाता | ९-८५ |
| तत्काव्य त्रिविधभोक्त | १-२९ | त्रिगुहर्मगणः प्रोक्तः | १-५२ |

| | | | |
|--------------------------|--------|----------------------------|--------|
| त्रिभेदसयुता मध्या | ४-८१ | देवो नभसि यातीति | १०-२५ |
| त्रिवर्णनायकेनेय | ४-४७ | देवोऽयमम्बरोद्भासी | ९-२५१ |
| त्रैलोक्यं वर्तते जीव | १०-३३ | देशान्तर गते नाथे | ४-९७ |
| त्वत्कीर्तविव धावलयं | ९-३२ | देशोऽयं स्वर्गभूमि | ९-२२५ |
| त्वत्कीर्तिः त्यागसंजाता | ९-४४ | द्विगुरुर्मगण प्रोक्तो | १-५६ |
| थो युद्धदो दधी | १-४२ | द्वित्वाक्षरसमेतो वा | १-४९ |
| ददात्यवर्णं सप्रोतिम् | १-३७ | द्विधा प्रतीयते योऽर्थो | १०-१०५ |
| दयालुना पुण्यजनेन | ९-२०६ | द्विहस्त एककण्ठोऽयं | १०-७८ |
| दातैव नायस्तस्या | ४-५८ | द्वचर्थत्रयर्थैकाक्षर | १०-१४५ |
| दानवीर दयावीर | ३-८७ | धरन्नपि महाभाग्य | ९-१४२ |
| दानेन तर्पिताशेष | १०-१३४ | धर्मार्थकाममोक्षाख्य | १-२७ |
| दास्यामि हारं गन्तव्य | ९-१६२ | धर्मार्थकामयुक्ताना | ४-४६ |
| दाहकत्व कटादास्य | १०-१७० | धनला श्रीमति सर्व | ९-३७ |
| दाह क्रमान्मकारो | १-४३ | धीरा त्वधीरा लोके हि | ४-६७ |
| दीनानाथजनान् विलोक्य | ३-९२ | धीरोदात्तस्तथा धीर | ४-६ |
| दीर्घवेहो रक्तवर्णो | १०-८४ | धीरोदात्तादिनेतृणा | ४-२७ |
| दुःखेन जायते योऽर्थ | १०-१०३ | धैर्यं लीला विलामश्च | ४-११५ |
| दृश्यत्वाद्रनभावाना | ३-२३ | न कुप्यति न वघ्नाति | ९-२२९ |
| दृश्यमाना नाटकेषु | ३-११ | न कोकिल न वीणा वा | ९-२२८ |
| दृष्टान्यकामिनी सङ्ग | ४-२२ | न कौमुदीय कीर्तिस्ते | ९-४५ |
| दृष्टे निजेश कामिन्या | ४-१४१ | न मनव्रचनदम्भो | ४-२३ |
| दृष्ट्वा शान्तिजिन नत्वा | ९-२१२ | नयनप्रीति सवित. | ३-४३ |
| देवतया पूज्योऽयं | १०-३८ | नर कपिध्वज इति | २-३७ |
| देवताङ्घ्रिपतस्तुत्या | ९-२६६ | न रज्यति विमोहेन | १०-१९१ |
| देवतावाचिशब्दाना | १-६१ | नरेन्द्रकन्या परिपूर्णरूपा | ९-२७० |
| देवसेवतक्रालेऽस्य | ९-२१९ | नरो वरो हितोऽर्धो वा | १०-४५ |

| | | | |
|-------------------------|-------|-------------------------|--------|
| नवकेलिविनोदेन | ४-१३६ | निदोषे सगुणे काव्ये | १०-१९४ |
| नवोनयौवना नारी | ४-६१ | निर्लज्जपुरुषेणार्थो | १०-१०९ |
| नवीनालोकना ज्ञात | ४ १०५ | निर्वेदोद्वेगकोपादि | ३-१०२ |
| न शीतोऽपि यशोराशिर् | ९-२२७ | नीतियुक्तोऽपि रायस्य | ९-१३३ |
| न सन्मित्र न सत्सङ्गो | ९-२३१ | नोरेज वरमल्लिका | ४-२६ |
| नागते नायके गेहं | ४-९३ | नीलकण्ठो नरीनर्ति | २-३८ |
| नाथं सरति या नारी | ४-१०१ | नून प्रायो ध्रुवं शङ्के | ९-१२० |
| नाथस्य चित्रे वस्त्रे च | ४-१४९ | नृपतितिलकराये | ४-१३२ |
| नानाभावमनोज्ञभावविलसत् | ३-१३० | नृसिंहराय कीर्तिस्ते | ९-१५४ |
| नानारत्नविराजमानमुकुटो | ६-१२ | नृसिंहोऽप्यभय दत्तो | ९-१३२ |
| नानालङ्काररत्ने विशद | ९-३१० | नेद सरो वह्निक्वण्ड | १०-१६४ |
| नायं रायः सुधासूति | ९-८४ | नेयार्थं विलष्टसदिग्धे | १०-३ |
| नायकस्य प्रसङ्गे च | ४-३० | पत्युर्वा नायिकाया वा | ३-५२ |
| नायकानां चित्तवृत्ते | ४-३२ | पददोषं निरूप्याहं | १०-४० |
| नायकोक्तेषु कार्येषु | ४-३१ | पदवाक्यार्थदोषास्ते | १०-१४३ |
| नायिकालक्षणं तासा | ४-८४ | पदस्य कथनं यत्र | १०-५७ |
| नारीजनो मुखं दृष्ट्वा | ९-७४ | पदस्य यस्यानुचितो | १०-२६ |
| निजेशं तर्जनं कृत्वा | ४-७७ | पदानामनुगुण्य वा | ८-२ |
| निन्दाव्याजेन यत्रार्थं | ९-२६४ | पदेन येन यद्वाक्यं | १०-५५ |
| नियमाकरणे काव्ये | २-२८ | पदेन येनासम्भ्यार्थो | १०-१७ |
| निरवद्यवर्णगणयुत | ३-१ | पद्माकरे सरोजाक्षी | १०-६० |
| निरूप्यते जगत्ख्यात | ३-११६ | पद्ये समासबाहुल्यं | ५-२३ |
| निर्गुणा रमणी लोके | ५-२ | पयोधरा नभोवृत्ता | १०-१०६ |
| निर्घातव्याघ्रसर्पारि | ३-९५ | पयोधरविलोलोऽय | ९-२६० |
| निर्दोषधर्म पुण्याय | १०-१ | पयोनिधिसमानस्य | ९-३०३ |
| | | परकीयाप्यनृदेव | ४-५२ |

| | | | |
|---------------------------|--------|-----------------------------|--------|
| परकीया स्वकीया च | ४-५३ | प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा | ३-३९ |
| परलोक गते नाथे | ४-११० | प्रजाना पालन कस्मात् | ९-३०२ |
| परस्परप्रयुक्तानि | ५-११ | प्रतिकूलवर्णमपद | १०-४२ |
| परेण परिणीता च | ४-५४ | प्रतिभाशक्तिसम्पन्नो | २-१ |
| परेण परिणीता तु | ४-५५ | प्रतिवस्तूपमा सार | ९-१२ |
| पद्माद्गतेषां त्रिभुवं | ९-२१५ | प्रतिषेधस्य कथन | ९-१५० |
| पश्य पश्य न मा धूर्त | १०-१५६ | प्रयुक्तस्य पदस्यार्थो | ५-१८ |
| पश्य पश्यसि चेदन्या | ९-१६१ | प्रयुक्तो लौकिकार्थोऽपि | ५-१५ |
| पादपूजनात्प्रार्थं | १०-८ | प्रविशन्ति महादुर्गां | २-१८ |
| पापापकोर्तिनभसा | १०-१६८ | प्रश्नोत्तर सङ्करश्च | ९-१३ |
| पालयत्यमला वज्र | १-१२ | प्रश्नोत्तरद्वयं यत्र | ९-३०१ |
| पीत वारिधिसप्तकं | ९-२२२ | प्रसन्नोऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु | १०-१६२ |
| पुण्डरीकं गता चन्द्र | १०-१६६ | प्रसादगुणसयुक्ता | ६-१६ |
| पुण्डरीकं चन्द्रबिम्ब | ९-४२ | प्रसादादिगुणोपेता | ६-६ |
| पुण्येन सार्धमाघत्ते | ९-२४४ | प्रसिद्धमपि यच्छास्त्रे | १०-१३ |
| पुनस्त्रजीवनोपाय | ९-१६५ | प्रसिद्धसाधनाद्यत्र | ९-२७६ |
| पुरुषो राजते राज | १०-२७ | प्रसिद्धिरहितं यत्र | १०-५९ |
| पुलकस्तम्भभावादि | ३-११२ | प्रस्तुतस्य विरुद्धार्थः | १०-८५ |
| पुष्पास्त्रवाणपतन | ३-६१ | प्रस्तुतीकृत्य यत्किञ्चित् | ९-१२७ |
| पूर्वपूर्वो विशिष्टोऽर्थो | ९-२९४ | प्राणाभावेऽपि पुरुषो | ४-३६ |
| पूर्वादि गतबालभानु | ९-१८७ | प्राधान्येन न वर्तेत | १०-२८ |
| पूर्वानुरागो मानात्मा | ३-४० | प्रारब्धरूपभङ्गो यत्र | १०-८९ |
| पूर्वोक्तनायिकाना तु | ४-११३ | प्रियस्यागमन श्रुत्वा | ४-८९ |
| पूर्वोक्ताना नायिकाना | ४-३४ | बलाकेव शरच्चन्द्रो | ९-६० |
| प्रकृत कारणं त्यक्त्वा | ९-१४७ | वत्यरिः कत्यरि पातु | १०-१४८ |
| प्रगल्भा नायिका श्रेष्ठा | ४-७२ | बहुवाक्याना यत्र प्रविशन्ति | १०-५३ |

| | | | |
|----------------------------|--------|------------------------|--------|
| बुद्धेर्महत्त्व भूतेर्वा | ९-१९२ | भो रायवङ्ग कीर्तिस्ते | ५-१९ |
| बुभुक्षितोऽहं त्वं दाता | १०-१२२ | भ्रूलोचनकटाक्षान् वै | ९-१९१ |
| भगणो सुखकृतसाम्यो | १-५९ | भ्रूविक्षेप किसलयमृदुं | ४-१५८ |
| भयाख्यस्थायिभावोऽत्र | ३-९४ | मक्षिकाजालपूयार्द्रं | ९-२१४ |
| भयानकरसोऽप्यत्र | ३-१२२ | मदनस्य पताकेय | १०-१५८ |
| भरतस्सगरश्चक्री | ९-२३५ | मनसिज तव कार्यं | ४-१०० |
| भाति वै नगर चात्र | १०-९ | मनसिजनूपरूपं | ४-५६ |
| भातीन्दोवरमित्युक्ते | २-३५ | मनोरथयुतस्वान्ते | ३-४८ |
| भावका रसमुत्पन्न | ३-१६ | मनोरागेण निबिडा | ४-१२७ |
| भावानीचित्यमत्रोक्तो | १०-१८४ | मनोवचनकायेभ्यः | ४-१३३ |
| भावयन्ति विशेषेण | ३-१४ | मनोवद्वक्तुरिष्टस्य | ९-१७५ |
| भावहावो तथा हेला | ४-११४ | मनोवेगयुताः सत्वा | ९-११६ |
| भावाश्चतुर्विधाः प्रोक्ताः | ३-१३ | मन्दानिला लुण्ठयन्ति | ९-२५८ |
| भाविहावाद्यलङ्कार | ४-११९ | मन्दानिलेन मकरन्दरसेन | ३-५७ |
| भावैश्चतुर्भिः पूर्वोक्ते | ३-८ | मन्ये शङ्के ध्रुवादीना | ९-१२२ |
| भुज्यमानाश्च भोक्तृणाम् | ३-१२ | मरण सुप्तिनिद्रावबोध | ३-२१ |
| भुवनव्यापिनी कीर्ति | ९-४३ | मलयानिलसकाशो | १-६ |
| भुवने रसिका लोका | ३-२४ | महत्यपि च सक्षोभे | ४-३८ |
| भूपालोऽय मृगेन्द्रो | १०-९६ | महाकवीना विस्तीर्णं | ९-१७९ |
| भेद्यपोषकभावेन | १०-१०१ | महाभागस्य रायस्य | ९-२६ |
| भोगे कलाया लोलो य | ४-९ | मासमानो न यातीत | १०-३७ |
| भो भो कल्पतरो त्वमत्र | ९-१८३ | माता मे पितर दृष्ट्वा | १०-१८३ |
| भो भो निष्ठुरभाषिणि | ४-९२ | साधुर्यादिगुणोपेत | ६-३ |
| भो भो राय मनोजपातक | ४-११२ | मानसोल्लासनं दृष्टि | ९-२७७ |
| भो भो वीरनृसिहराय | ४-१६३ | मायामात्सर्यचण्डत्व | ४-१३ |

परिशिष्टम्-१

१३३

| | | | |
|----------------------------|--------|------------------------------|--------|
| मार्गे याति नरः कश्चित् | १०-२९ | यत्र कोऽपि जनो वक्ति | ९-२७४ |
| मित्रलाभ जकारोऽय | १-४० | यत्र च्छन्दोभङ्गो | १०-४६ |
| मुख विशालनेत्रं ते | ९-७२ | यत्र न क्षमते स्त्री वा | ३-५४ |
| मुखे काव्यस्य वर्णाना | १-४६ | यत्र पत्यु स्त्रिया वा वा | ३-५८ |
| मुखेन्दुना कपोलाक्षि | ९-७५ | यत्र पूर्वं प्रकृष्टं स्यात् | १०-९५ |
| मुखेन्दुस्ते जनानन्दं | ९-७१ | यत्र प्ररूपित वस्तु | ९-१८२ |
| मुख्यवाधे निमित्ते च | २-२२ | यत्र प्ररूप्यमाणेन | ९-२३८ |
| मुख्यार्थादन्य एवार्थो | १०-११९ | यत्र प्रियतरा वाणी | ९-२०१ |
| मुख्यार्थल्लक्ष्यतो गौणाद् | २-२४ | यत्र वाक्ये गुणीभूतम् | १०-९२ |
| मुख्यार्थे वाधिते मुख्य | २-१३ | यत्र वाक्ये रसो नास्ति | १०-७७ |
| मुख्योऽर्थो लक्ष्यनामापि | २-९ | यत्र वाक्ये विरूपत्व | १०-६४ |
| मुग्धा सलज्जा समया | १०-१८९ | यत्र वाक्ये समासोऽय | १०-७३ |
| मूत्रस्थानं भगो गुह्यं | १०-१५० | यत्र साम्य प्रतीयेत | ९-२८४ |
| मृगाङ्ककरा शीता | १०-४८ | यत्र स्वार्थं परित्यज्य | २-१५ |
| मृदुस्फुटभयाकार | ५-२९ | यत्राघत्ते पुनर्दत्त्वा | ९-२४५ |
| म्रियते यत्र रमणी | ३-६२ | यत्रानेकपदार्थाना | ९-२७१ |
| यगणो जलरूपोऽय | १-५८ | यत्राप्रस्तुतवस्तूना | ९-२२३ |
| यतस्ततो नायकस्य | ४-२ | यत्रार्थस्य स्वरूपेण | ९-११९ |
| यत्पद नोचित यत्र | १०-१५ | यत्रासमाव्यसवन्धो | ९-२८० |
| यत्प्रभाववशात् पुंसि | ४-४० | यत्रास्थाने पद वृत्त | १०-७१ |
| यत्प्राणानपि तद्वापि | ४-४१ | यत्रोत्कृष्टेन कथन | १०-१४१ |
| यत्र कान्तस्य कान्तायाः | ३-५० | यत्रोपचर्यते भेद | ९-६५ |
| यत्र कामस्य सतापात् | ३-६० | यत्सार निश्चित यत्र | ९-२८६ |
| यत्र किञ्चित् समीकर्तुं | ९-२३३ | यथा दुष्यन्तनृपते | ४-५१ |
| यत्र कैवल्यकथनं | ९-२२६ | यथेववाचव्ययानि | ९-६३ |

| | | | |
|-----------------------------|--------|------------------------|--------|
| यथोचितं नायकोक्त | ४-१६२ | रणे गृहीतो रायेण | ९-१५८ |
| यद्गान परमामृत श्रुति | ४-१३४ | रणे जयाङ्गना चैत्रो | १०-११ |
| यद्दानाद् घनदा भवन्ति | ३-९१ | रतिक्रियाया कोपेन | १०-१५९ |
| य दृष्ट्वा प्रलयान्तभैरव | ३-९३ | रतिक्रियार्थी रमणी | १०-५६ |
| यरतास्तु न सन्त्यत्र | १-५७ | रतिहास्यशोककोपोत्साह | ३-४ |
| यश प्रतापी भवतो | ९-१४० | रतौ तरुण्या नाथस्य | १०-२० |
| यस्या सामोप्यमाश्रित्य | ४-८७ | रतो राय महीनाथे | ९-२१ |
| यस्योत्तुङ्गविशालकीर्ति | ५-१२ | रत्नत्रयमहाधर्म | १-१४ |
| याचन चुम्बनादाने | ९-३०० | रत्नयोगनिवृत्त्यर्थं | १०-१७४ |
| यामोति वचन नाथ | ९-१६६ | रमणी रमणो यत्र | ३-४४ |
| याहि याहि निजेश त्व | ९-१६ | रमण्या रमणस्यापि | ३-४६ |
| युद्धरङ्गत्रिकेत्रोऽग्र | ९-१९९ | रशनाबन्धनं वाम | ३-३२ |
| युद्धे रायनरेन्द्रहस्तकलितं | ३-९८ | रसदोषप्रपञ्चाना | १०-१९३ |
| येन जिष्णुरपि व्वस्यः | ९-२८३ | रसप्रकरणे प्रोक्त | ४-१०३ |
| येन रूपेण यद्वस्तु | ९-१४ | रसलक्षणमत्रोक्तं | ३-११४ |
| येनोपमीयते यत्र | ९-२३ | रसवत्त्व गिरा लोके | ९-२२० |
| योगसौगतसाङ्ख्याना | १०-६३ | रसानामिति सर्वेषा | ३-२५ |
| योज्या. सञ्चारिभावाश्च | ३-३५ | रसानुकूलवर्णाति | १०-६९ |
| यो वातदेही तेनेद | १०-११६ | रसाभासोऽपि भावाना | १०१७७ |
| रवतं कादम्बनाथेऽस्मिन् | ९-१०१ | रसिकाना मनोवृत्तिः | ३-१७ |
| रक्ष मा रक्ष मा कान्ते | १०-१६० | रसे भावे प्रतीते च | १०-१८७ |
| रगणो लघुमान् मध्ये | १-५३ | रसो बीभत्सनामा च | ३-१२३ |
| रङ्गत्तुङ्गतरङ्गसङ्ग | ५-२४ | राजसर्वज्ञकल्पोऽयं | ४-८ |
| रणभैरीरवं श्रुत्वा | ९-१७८ | राजनीतिमहाशास्त्र | १-८ |
| रणसद्यनि शत्रूणा | ९-२१० | राजा कमलविरोधीत्युक्ते | २-३३ |
| रणदम्बरमालोक्य | १०-८६ | रात्री गृहीत्वा कोदण्ड | १०-१२६ |

| | | | |
|--------------------------|--------|----------------------------|--------|
| रायः कादम्बनाथोऽय | ९-१४५ | रुवन्ति कोकिलाः कौरा | ९-८८ |
| रायक्षमापतिना भयङ्करमहा | ३-७९ | रूप वचोऽघररस | ९-१९० |
| राय कल्पान्तकं युद्धे | ९-१५६ | रूपसौन्दर्यसपन्नो | १०-१०२ |
| रायनाथमनोज्ञाङ्गे | ८-८ | रूपातिशयमंपन्ना | १०-१८२ |
| रायनाथस्य रागे या | ४-१३८ | रूपातिशयसपन्नो | ९-९५ |
| राय प्रतापमानुस्तान् | ९-१३५ | रूपेणाङ्गजवत् कलायुततया | ९-५६ |
| रायप्रतापमानुस्ते | ९-७७ | रूपोपभोगतारुण्यं | ४-१२५ |
| रायरूपपटी दृष्ट्वा | ४-१५१ | रोमाञ्जस्वेदमावादिः | ३-१०७ |
| रायवङ्गक्षितोशस्य | ९-२३७ | लक्षण नायकाना हि | ४-४३ |
| रायवङ्गक्षितोशस्य | ९-२७३ | लक्ष्यवाचकशब्दस्य | २-१४ |
| रायवङ्गमनोजात | ९-१०५ | लीलावलोकनात्तन्वि | १०-८२ |
| रायवङ्गमहीनाथ | १०-१६३ | लुब्धा धीरोद्धता ये च | ४-३३ |
| रायवङ्गः समुद्रश्च | ९-२५९ | लोकशास्त्रक्रमो नास्ति | १०-६१ |
| रावङ्गस्य कीर्तिर्वा | ९-१५५ | वक्तव्यमेव न प्रोक्त | १०-८१ |
| रायवङ्गे न दृश्यन्ते | ९-२५५ | वक्तु योग्यमपि स्वान्त | ४-१५९ |
| रायवङ्गेन सहान | १०-१६१ | वक्तु योग्ये विशेषेऽस्मिन् | १०-१३३ |
| रायस्य कीर्त्या धवल | ९-२४१ | वक्रवाच सोपहासा | ४-७९ |
| रायस्य दोर्वल स्मृत्वा | ९-२१७ | वक्षोरङ्गनिवासिनी | ९-१२९ |
| रायस्यायल्लके ज्योत्स्ना | ९-१५७ | वक्षोरङ्गे महाश्रीर्वरमुख | ९-२६५ |
| रायारामस्थितान् वृक्षान् | ९-२१६ | वञ्जित्वात्मीयलोकं या | ४-१०२ |
| राये दिग्विजयाय सैन्य | ४-९८ | वने वास्ते वरा नारी | १०-६५ |
| रायेश स्मरसनिभ | ४-१४२ | वर्गद्वितीयबहुला | ६-७ |
| रायो रणाङ्गणेऽरीणा | ९-१५१ | वर्णाना शुद्धिरित्युक्ता | १-४८ |
| रीतिनोरेजषण्डेद्ध | ६-१७ | वसन्तोद्यानकासार | ३-२७ |
| रीतिशून्या यथा कन्या | ६-१ | वस्तुसाधारण यत्र | ९-२९८ |
| रीतीना लक्षणं तस्माद् | ६-२ | वाक्यदोषान् निरूप्याहं | १०-९७ |

| | | | |
|-------------------------------|--------|---------------------------|--------|
| वाच्यवाचकसबन्धो | २-६ | विस्वरत्वाश्रुमोहादिः | ३-७७ |
| वाच्यस्य नियमस्यात्र | १०-१३१ | विस्वरत्वाश्रुवैवर्ण्यं | ३-६८ |
| वाच्या प्रतीयमानेति | ९-१२१ | विषादाद्भ्रुतमुत्क्रोध | १०-१५५ |
| वाच्योत्प्रेक्षा पुन प्रोक्ता | ९-१२३ | विहाय शब्दालङ्कार | ९-७ |
| वामपादप्रहारेण | १०-१९० | वीरो भयानको यश्च | ३-७ |
| विकसितगण्डं त्वीषत् | १३-७१ | वृत्तिशून्यो न सूत्रार्थो | ७-१ |
| विचकिलकुसुमाना | ४-१९ | वृत्तीना लक्षण तस्या | ७-२ |
| विदूषकस्य भाषा वा | ३-६६ | वैदर्भीगोडिकालाटो | ६-४ |
| विध्यनुवादविवृत्त. | १०-१०० | व्यतिरेकाद्यलङ्कारे | ९-२५३ |
| विध्यनुवादविवृत्ता | १०-१३८ | व्याजस्तुतिविशेषाणा | ९-२६७ |
| विध्यनुवादो कथितौ | १०-१३७ | व्रजन्ति शिविका मार्गं | २-२० |
| विनयादिगुणाः प्रोक्ता | ४-१६१ | शठेन दृढमालिङ्गय | १०-७० |
| विनापि पदेन येनेद | १०-७५ | शत्रुक्षयज्ञापकधूमकेतुः | ९-२९१ |
| विना सर्वं मया दृष्टं | १०-१४६ | शब्दडम्बरमात्रार्थी | २-४ |
| विपक्षतमसा शत्रो | ९-१६९ | शब्दस्य वा प्रतीतेर्वि | ९-१३८ |
| विबुधप्रबन्धसज्ञोऽय | १-२८ | शब्दानामभिधेयानां | ५-९ |
| विभावैरनुभावैश्च | ३-५ | शब्दार्थद्वयचित्रार्थी | २-५ |
| वियुक्तनयकस्यासौ | ४-१०४ | शब्दार्थयोरलङ्कारौ | ९-४ |
| वियोगं प्राप्य रायेन्द्रो | ९-२५६ | शब्दालङ्कृतयः प्रोक्ता | ९-५ |
| विरक्तो याति पत्नीं या | १०-१४० | शब्दाश्रितप्रसादादि | ६-५ |
| विरहोत्कण्ठता काचित् | ४-८६ | शब्दो जहाति मुख्यार्थं | २-१९ |
| द्विवेकशौचसौभाग्य | ४-११ | शमाख्यस्थायिभावोऽयं | ३-१०९ |
| द्विवेकीति कवि प्रोक्तो | २-७ | शय्याविरेजसयुक्ते | ८-१० |
| विषतामेति कर्पूरं | १-४७ | शरच्चन्द्रनभोगङ्गा | ९-४९ |
| विस्तार याति या कान्तिः | ४-१२९ | शरदिन्दोरिवोत्पन्ना | ९-५० |
| विस्मयस्थायिभावस्तु | ३-१०५ | शरीरावयवव्यास | ४-१५७ |

परिशिष्टम्-१

१३७

| | | | |
|---------------------------|--------|-----------------------------|-------|
| शल्यत्रयं च संज्ञा च | १०-१५२ | शोभा या दक्षता शौर्यं | ४-३९ |
| शशघरसुरगङ्गा | ९-१२५ | श्रित्वा रायनृपं भाति | ९-५२ |
| शस्तनोति सुखं षस्तु | १-४४ | श्रियं विपक्षवर्गस्य | ९-११५ |
| शान्तनामरसो लोके | ३-१२५ | श्रीकामिराजवङ्गोऽभूत् | १-१७ |
| शारदाभ्रमिवापूर्वा | ९-५८ | श्रीकामिराजवङ्गोऽयं | ९-१३० |
| शारदी कौमुदी सप्त | ९-३३ | श्रीमद्भरतराजेन्द्र | १-११ |
| शास्त्रं धर्मस्य सवृद्धयै | ९-११४ | श्रीमद्विजयकीर्तिन्दोः | १-४ |
| शास्त्रोक्तलक्षण नास्ति | १०-१२ | श्रीमद्विजयकीर्त्याख्य | १-५ |
| शिविकादोलिकाछत्र- | २-२१ | श्रीराय कीर्तिजाल ते | ९-२८ |
| शिरःशेखरकणवि- | १०-१७३ | श्रीरायकीर्तिजालेन | ५-२८ |
| शीलाज्वर्धयैशौर्य- | ४-४८ | श्रीरायक्षितिनाथ | ३-११३ |
| शुक्लकृष्णहरिद्रक्त | २-१२ | श्रीरायक्षितिनाथकीर्तिवनिता | ९-८९ |
| शुभदो भगणो भूमिः | १-६० | श्रीरायक्षितिनाथ येन | ९-२०७ |
| शृगालवत् पुरालोको | ९-६२ | श्रीरायक्षितिनाथ विक्रमगुणे | ९-२४२ |
| शृङ्गारः करुणः शान्तो | ६-१५ | श्रीरायक्षितिनाथकस्य | ३-७३ |
| शृङ्गारकरुणो लोके | ७-८ | श्रीरायक्षितिपस्य | ३-१०८ |
| शृङ्गारगमको हावो | ४-१२३ | श्रीरायक्षितिपालको | ९-२९५ |
| शृङ्गाररसवारिणी | १०-५२ | श्रीरायक्षितिपेन घोरसमरे | ३-१०३ |
| शृङ्गारस्य विरोधी हि | ७-१० | श्रीरायक्षमापशक्ति | ३-८४ |
| शृङ्गाराकृतिचेष्टा तु | ३-१२८ | श्रीराय ते नभसि वक्षसि | ४-६९ |
| शृङ्गाराख्यरसे नेतृ | ४-४२ | श्रीरायं निजगेहमागत | ४-७१ |
| शृङ्गाराज्जन्म हास्यस्य | ४-२८ | श्रीराय भवतः कीर्ति | ९-३१ |
| शृङ्गारादिरसाना तु | ३-१२६ | श्रीरायभूप कीर्तिस्ते | ९-२५ |
| श्रीकाख्य-स्थायिभावो यो | ९-२०८ | श्रीरायभूपदिव्याङ्गे | ९-२७८ |
| श्रीभाकरो ङकारोऽयं | ३-७४ | श्रीराय भो नभसि | ४-८० |
| | १-४१ | श्रीरायराज्ये काठिन्यं | ९-२५७ |

| | | | |
|-----------------------------------|--------|---------------------------|--------|
| श्रीरायबङ्गकान्ताया | ५-३० | सङ्ग्रामाङ्गणभूतले | ७-१३ |
| श्रीरायबङ्गक्षितिनायकस्य | ५-७ | सचक्रो हरिरित्यत्र | २-३२ |
| श्रीरायबङ्गभूपतिनिर्जितेन | ३-१०४ | सति चन्द्रे महाज्योत्स्ने | १०-११८ |
| श्रीरायबङ्गरमणो | ४-१० | सत्कीर्तिचन्द्रिकाहारं | ९-८३ |
| श्रीरायबङ्गसहिता | ४-१३० | सत्कीर्त्या रायबङ्गस्य | ९-१०६ |
| श्रीरायस्य मुखेन्दुस्ते (? ष्व) | ९-६९ | सत्यरूपमपह्नुत्य | ९-१९५ |
| श्रीरायस्य यशोऽमितं कुमुमितं | ५-२२ | सदैव बलसपत्नो | ९-२५२ |
| श्रीरायागमनोत्सुका | ४-९० | सद्वृत्तिवालविलसद् | ७-१६ |
| श्रीराये गृहमागते | ४-७६ | सधैर्यं गमनं दृष्टिः | ४-३७ |
| श्रीराये निजनायके | ४-९६ | सनिमेषः सुराधीशो | ९-१८५ |
| श्रीरायो जलधिः सुधाशु | ९-६७ | सन्तापहारी चन्द्रोऽयं | ९-१८४ |
| श्रीबङ्गराजवदन | ९-३०६ | सदे(व) पुरसकाश | १-९ |
| श्रीबङ्गेश्वर साधु साधु | ९-२७५ | सन्ध्यारागं वनाग्नि | ९-२८९ |
| श्रीशान्तिनाथदेवोऽय | ९-२७२ | सप्ताङ्गभासुरो राजे | २-३६ |
| श्रुतिचेतोद्वयानन्द | ५-६ | सप्ताम्भोनिधिपानक | ४-१४ |
| श्लाघ्यस्य वस्तुजातस्य | १०-११३ | समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरै | १-३ |
| श्लिष्ट निदर्शन व्याज | ९-११ | समस्तलोकसंव्याप्त | १०-१३२ |
| श्लिष्यन्त स्मररायनायक | ४-६६ | समाप्तपुनरात्त तद् | १०-७९ |
| सयोगत्रिप्रयोगी | २-३० | समुद्रनगरीशैल | १-२४ |
| सकलङ्कः सुधाशुः किं | ९-३५ | संभोगविप्रलम्भाम्ब्या | १-२५ |
| सकलङ्को निराधारः | ९-१४३ | संभोगविप्रलम्भो तौ | ३-४१ |
| सकोशमपि नीरेजं | ९-३०७ | संभ्रमत्रासमोहोरु | ३-९७ |
| सक्रियं निष्क्रिय वस्तु | ९-१५ | सरसत्वान्मृदुत्वान्च | १०-३५ |
| सग्रामनायकैश्वर्य | १-२६ | सरसमधुरवाणी | ४-९४ |
| | | सरसवचनलोला | ५-२६ |
| | | सरससुरतयुद्धे | ९-२३० |

परिशिष्टम्-१

१३९

| | | | |
|-------------------------------|--------|------------------------------|--------|
| शरसीर्षीघसन्दर्भ | ७-३ | सुहृद्वसन्त कीरोऽश्वः | १०-१७२ |
| सरसो यत्र शब्दश्च | ५-२५ | सेवार्थमागतमहा | ९-१८८ |
| स राजा काव्यगोष्ठीषु | १-१९ | सोऽपि श्रीपाण्ड्यवङ्गोऽयं | १-१५ |
| सवज्र काञ्चनमय | १०-१५१ | स्तवनं निन्दनं चापि | ९-२३४ |
| सशङ्को ग्लानिनिर्वेदो | ३-२० | स्त्रीरूपं निरलकार | ९-१ |
| सस्यार्थी वा कामुको वा | १०-१०७ | स्थायिभावार्षवे भावाः | ३-१९ |
| साक्षात् सङ्केतविषयो | २-१० | स्थितिर्वा ते गतिर्वा ते | ९-१६० |
| सात्त्विकः स्वदेरोमाञ्च | ३-८३ | स्पृष्ट मया न ताम्बूल | ९-१६७ |
| सापराध निजेश या | ४-७० | स्मरकेलिविनोदेन | १०-५८ |
| सापराधो नृपो राय | ९-१५३ | स्मररग्निपीडिते तन्वि | १०-८८ |
| सामग्रोमवलम्ब्येमा | ३-३६ | स्मरेपुश्चन्द्रिका तस्या | १०-८० |
| सामान्यनायकप्रोक्त | ४-४४ | स्मितज्योत्स्नामुखेन्द्री ते | ९-७० |
| सामान्ये यत्र वक्तव्ये | १०-१३५ | स्मितज्योत्स्नाविलास ते | ९-७३ |
| साम्बरराज विभाति | ९-३८ | स्मृत्वा निजेश स्वाङ्गस्य | ४-१५० |
| सिंहासने महारत्ने | ९-११२ | स्यादिन्द्वीवरवर्णस्तु | ३-११७ |
| सिंहो नृपतिरित्यत्र | २-२३ | स्याद्वादधर्मपरमामृत | १०-१९५ |
| सुकुमारत्वमाधुर्यं | ६-११ | स्वकीयशास्त्रसिद्धार्थं | १०-३२ |
| सुकुमारत्वमौदार्यं | ५-४ | स्वकीया नायिका मुग्धा | ४-६० |
| सुजनसुरकुजोऽयं | ९-२६२ | स्वकीया परकीयाप्य | ४-४५ |
| सुधाधवलवर्ण स्याद् | ३-११८ | स्वजनाक्रन्दन वन्धु | ३-७६ |
| सुभगेश निज नारी | १०-६७ | स्वभात्रमधुरा लभ्या | १०-१०८ |
| सुरतरवे लोकोऽयं | १०-३१ | स्वभावोक्त्युपमे रूपज्ञ | ९-८ |
| सुरतसदननार्या | ९-१८१ | स्वरो लघुरपि प्रोक्तो | १-५० |
| सुरराजश्रियो रम्यं | ९-१४६ | स्वसङ्केतितमर्थं यत् | १०-२१ |
| सुरलोके पुरीं दत्वा | ९-२४६ | स्वाधीनपतिका नारी | ४-८५ |
| सुरेन्द्रपूज्य. परिपूर्णसौख्य | ९-२६९ | स्वामिप्रेतं न वक्तव्यं | १०-१० |

१४०

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका

| | | | |
|-------------------|--------|---------------------------|--------|
| स्वेदकम्पनरोमाञ्च | ३-१८ | हसनस्यापि कीर्तेश्च | १०-१६७ |
| हरिचन्दनकासार | १०-१६९ | हारेण रायबङ्गस्य | ९-१०२ |
| हरिचन्दनहारेण | ९-९३ | हास्यः शान्तोऽद्भुतश्चेति | ७-९ |
| हरिततृणभक्षिणोऽमी | ९-२२४ | हास्यशान्ताद्भुतरसो | ७-६ |
| हरिनोलच्छविभासुरा | ९-१७ | हिनोति कार्यं व्याप्नोति | ९-९१ |
| हर्षमालेतिसुरभि | १०-१७५ | हेतोर्विना कार्यमुक्त | १०-११६ |
| हसति वसति चास्ते | ४-१४० | | |

Appendix-B

ŚC (1) and Bhāmaha (as quoted by -Nārāyaṇabhaṭṭa)

ददात्यवर्णं. संप्रीतिमिवर्णो मुदमुद्गहेत् ।
कुर्यादुवर्णो द्रविण ततः स्वरचतुष्टयम् ॥
अपख्यातिफल दद्यादेच. सुखफलावहा ।
इन्द्रविन्दुविसर्गास्तु पदादी सभवन्ति नो ॥

क्षकारस्तु प्रयोक्तव्यं काव्यादौ सत्फलावहः ॥

I.37-47

यगणो जलरूपोऽयं घनकृद्रगणोऽनलः ।
भयदाहकरस्तस्तु गगनं श्रीकरो मतः ।
भगणं सुखकृत् सौम्यो जो भानू रोगदायकः ।
वायव्यं सगणो दत्ते क्षयरूपं फलं सदा ॥
शुभदो मगणो भूमिर्नगणो गीर्धनप्रदः ।

देवतावाचिशब्दानां भद्राद्यर्थप्रकाशिनाम् ।
शब्दानां निरवद्यत्वं काव्यादौ गणवर्णतः ॥

ŚC I.58-61

तदुक्त भामहेन—

अवर्णात् सपत्तिर्भवति मुदिवर्णाद्धनशता—
 न्युवर्णादिख्यातिः सरभसमृवर्णाद्विरहितात् ।
 तथा ह्ये चः सौख्यं डन्नणरहितादक्षरगणात्
 पदादौ विन्यासात् भरबहलपूर्वैर्विरहितात् ॥
 कः खोगोघश्च लक्ष्मी वितरति न यशो डस्तथा चः सुखं छः॥

... क्ष समृद्धिं करोति ॥

अन्यैस्तु देवताफलस्वरूपाण्येषामुक्तानि-
 मो भूमिस्त्रिगुरु श्रियं दिशति

.....मुख्यगुरु नोर्नाक आयुस्त्रिलः ॥
 तदुक्त भामहेनैव

देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः ।
 ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा ॥

—Commentary of Nārāyaṇa-bhaṭṭa on Vṛttaratnā—
 kara, pp 4-6

(Note : As already observed Vijayavarṇī and
 Amṛtānandayogin are in close agreement in their
 treatment of Varṇa-gaṇa-phala-śuddhi.)

ŚC II and Kāvyaṃimāṃsā

त्यज्यते गृह्यते शब्दोऽर्थो वा तावत् पुनः पुनः ।
 येन यावद् रुचिः स्वस्य रौचिकः स कविर्भवेत् ॥
 शब्दडम्बरमात्रार्थो वाचिकः कविरुच्यते ।
 अर्थं वैचित्र्यमात्रार्थं सोऽयमार्थः कविर्भवेत् ॥
 शब्दार्थद्वयचित्रार्थं शिल्पिकः कविरुच्यते ।
 शब्दार्थमृदुताकारी मार्दवानुगनादभाक् ॥
 वाच्यवाचकसबन्धि गुणदोषविदा वर ।
 महाकवीना मार्गज्ञो नानाशास्त्रार्थकोविदः ॥
 विवेकीति कवि प्रोक्तो दिव्यालङ्कारयोजने ।
 तत्परो भूषणार्थीति नाम्ना कविरुदाहृतः ॥
 इति सप्तविधाः प्रोक्ताः कवयः कविपुङ्गवै ।

—ŚC II-3-8 (ab)

काव्यकवि. पुनरपृष्टा । तद्यथा—
 रचनाकवि. शब्दकवि. अर्थकविः
 अलङ्कारकविः उक्तिकवि रसकविः
 मार्गकविः शास्त्रार्थकविरिति । ...
 ...त्रिधा च शब्दकविर्नामाख्यातार्थ—
 भेदेन । ...द्विघालङ्कारकवि शब्दाथभेदेन ।

Kāvyaṃimāṃsā pp 17-19

(Note : Amṛtānandayogin and Vijayavarṇī fully agree in their classification and definition of types of poets. One of them must have borrowed from the other who must have first formulated the seven-fold classification of poets taking probably hints from Rājaśekhara's Kāvyaṃimāṃsa.)

§C IV

Daśarūpaka II

| | | |
|-------|---|---------------------------------------|
| 3-4 | Hero's good qualities | 1-2 |
| 6-15 | Four types of hero | 3-6 (ab) |
| 16-26 | Sixteen types of hero | 6 (cd)-7 |
| 27-28 | Forty-eight types of hero | |
| 29-32 | Four upanāyaka- kas : | 8-9 (ab) Three Netṛsa- hāyas : |
| | 1. Vidūṣaka | 1. Piṭhamarda (Patākānā- yaka) |
| | 2. Piṭhamarda | 2. Viṭa and 3. Vidūṣaka |
| | 3. Viṭa and | |
| | 4. Nāgarika | |
| 33 | Pratināyakas | 9 (cd) |
| 34-42 | Set of eight Special excellences spring from hero's character | 10-14 |
| 43-59 | Four types of heroine : | 15 (ab) and 20 (cd)- 22 (ab) |
| | | (Note : Three types of heroine : |
| | 1. Svakīyā | 1. Svīyā (= Svastī, Svakīyā) |
| | 2. Parakīyā | |

Appendix-C

- | | | | |
|---------|--|--------------------------------------|---|
| | 3. Anūṣhā and | 2 | Anyā (= Anyastri) |
| | 4. Sādhāraṇā | | Parakīyā) and Sādhāraṇā-stri (= Sadharaṇā |
| 60-66 | Three types of Svīyā | 15 (cd)-16 (ab) | |
| 67-71 | Three types of (Svakīyā) Madhyā Nāyikā | 16 (cd)-17 | |
| 72-80 | Three types of (Svakīyā) Pragalbhā Nāyikā | 18-19 | |
| 81-83 | Each of these types of heroine (Madhyā and Pragalbhā) may be the earlier or later of the Loves of the husband. | 20 (ab) | |
| 84-102 | The heroine may occupy eight different relations to her lover (Svādhīnapatikā, Vāsakasajjā, etc.) | 23 (cd)-28 | |
| 103-110 | Four-fold Vipralambha in relation | Daśarūpaka IV 50-51(ab) and 57-68 | |

- tion to types of
heroine
1. Pūrvānurā- (Note : In Dhanarājaya's
ga 2. Māna view, if absence be due to
3. Pravāsa and death the love sentiment
4 Karuṇātmaka cannot be present.)
- 111-112 Dūtīs (heroine's 29
messengers)
- 113-160 Twenty excellen- 30-42 (ab)
ces of a hero-
ine, beginning
with Bhāva and
ending with
Vihṛta-the first
three are physi-
cal, The next se-
ven are inherent
characteristics of
the heroine, then
come ten graces.



Appendix-C

| | | |
|--|-------------|--|
| ŚC V | | Kāvya-darśa I |
| 4-5 (ab) Enumeration of ten Gunas, the ten Prāṇas (of Kāvya) | | 41-42 (ab) (Note The ten Gunas, according to Dandī, are the Prāṇas of Var-darbha Mārga) |
| 6 Definition of Sauku-mārya | | 69-71 |
| 8-9 Definitions (alterna-tive) of Audārya | | 76-79 |
| 11 & 13 Alternative defini-tions of Ślesa | | 43-44 |
| 15 Definition of Kānti | | 85-92 |
| 16 Alternative definition of Kānti | Cf Vāmana's | Kāvya-lam-kāra-sūtravṛtti (3.1.25) |
| 18 Definition of Prasān-natā (= Prasāda) | | 45-46 |
| 20 Definition of Samādhi | | 93-100 |
| 21 Alternative definition of Samādhi | | |
| 23 Definition of Ojas | | 80-84 |
| 25 Definition of Mādhurya | | 51-68 |
| 27 Definition of Artha-vyakti | | 73-75 |
| 29 Definition of Samatā | | 47-50 |

Appendix—C

ŚC (VII) and PRY on Vrttis

Cf :

अत्यन्तकोमलार्थानां शृङ्गाररसयोगिनाम् ।
करुणाख्यरसे वाचा सदर्भो वाथ कैशिकी ॥
अत्यन्तकर्कशार्थानां रौद्रबीभत्सयोगिनाम् ।
सदर्भरूपारभटी वृत्तिरुक्ता कवीश्वरे ॥
हास्यशान्ताद्भूतरसोपेतार्थानां पृथक् पृथक् ।
ईषन्मृदुना सदर्भो भारतीवृत्तिरुच्यते ॥
ईषत्कठिनवाच्यानां सदर्भं सात्वतीष्यते ।
भयानकेन वीरेण रसेन सह योगिनाम् ॥
शृङ्गारकरुणौ लोकेऽत्यन्तकोमलता गतौ ।
अत्यन्तकठिनौ रौद्रबीभत्सौ रसनामकौ ॥
हास्यः शान्तोऽद्भुतश्चेति स्वल्पकोमलता गताः ।
ईषत्काठिन्यसंपृक्तौ मतौ वीरभयानकौ ॥

—VII 4-9

and,

अत्यर्थसुकुमारार्थसदर्भं कैशिकी मता ।
अत्युद्धतार्थसदर्भं वृत्तिरारभटी स्मृता ॥
ईषन्मृद्वर्थसदर्भं भारती वृत्तिरिष्यते ।
ईषत्प्रीडार्थसदर्भं सात्वती वृत्तिरिष्यते ॥

तत्र—अत्यन्तसुकुमारो द्वो शृङ्गारकरुणी मतो ।
 अत्युद्धतरसो रौद्रबीभत्सो परिकीर्तितो ॥
 हास्यशान्नाद्भुता किञ्चित्सुकुमारा प्रकीर्णता ।
 ईषत्प्रौढौ समाख्यातो रसो वीरभयानको ॥

—PRY

p 158 (Kārikās 15-18)

And Cf :

अत्यन्तकोमलार्थिंऽल्पप्रौढसदर्भलक्षणा ।
 मध्यमा कैशिकी सर्वरससाधारणा मता ॥
 ईषन्मृदुसंदर्भाप्यतिप्रौढार्थगोचरा ।
 मध्यमारभटी सर्वरससाधारणा स्मृता ॥

—VII 14-15.

and

मध्यमारभटी त्वन्या तथा मध्यमकैशिकी ।
 वृत्ती इमे उभे सर्वरससाधारणे मते ॥
 मृद्वर्थेऽप्यनतिप्रौढबन्धा मध्यमकैशिकी ।
 मध्यमारभटी प्रौढेऽप्यर्थे नातिमृदुक्रमा ॥

PRY

p. 61 (Kārikās 23-24)

And Cf

शब्दगतप्रसादमाधुर्यादिदशगुणाश्रितानामर्थविशेषनिरपेक्षाणावैदर्भ्या-
 दिरीनीनामर्थविशेषापेक्षविशिष्टकैशिक्यादिवृत्तिभ्यो भेदो द्रष्टव्य ।

—Vijayavarṇī

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका

वैदभ्यादिरीतीना शब्दगुणाश्रितानामर्थविशेषनिरपेक्षतया केवलसदर्भ-
सौकुमार्यप्रौढत्वमात्रविषयत्वात् कैशिक्यादिभ्यो भेदः ।

—Vidyānātha

And Cf :

असयुक्तमृदुवर्णबन्धोऽतिमृदुसदर्भं । सयुक्तकोमलवर्णबन्ध ईषन्मृदु-
सदर्भं । अविकटपरुषवर्णबन्ध ईषत्प्रौढसंदर्भं ।

—Vijayavarnī

and

सदर्भस्यातिमृदुत्वमसयुक्तकोमलवर्णबन्धत्वम् । अतिप्रौढत्व परुष-
वर्णविकटबन्धत्वम् । सयुक्तमृदुवर्णेष्वीषन्मृदुत्वम् । अविकटबन्ध-
परुषवर्णेष्वीषत्प्रौढत्वम् ।

—Vidyānātha

Appendix—C

ŚC IX

Kāvyaḍarsā I

On Arthālamkāras

- 3(ab) Definition of Kāvya 1(ab)
4(cd)—5(a) Cf Rudrata II-13
8-13 Enumeration of Alamkāras 4-7 and Rudraṭa
VII, 11-12
14-15 Kāvyaḍarsā 8, 13
Cf हीनेषु त्रस्तेषु वालादिषु च विशेषतो रम्या जातिः ।
—17-18
and शिशुमुग्धयुवतिकातरतिर्यक्सभ्रान्तहीनपात्राणाम् ।
सा कालावस्थोचितचेष्टासु विशेषतो रम्या ॥
—Rudrata VII-31
23-64 Upamā and its varieties Kāvyaḍarsā 14 65
65-86 Rūpaka and its varieties 66-96
87-90 Arthāvr̥tti 116-119
91-97 Hetu 235-260 (ab)
98-118 Dīpaka 97-115
119-126 Utpreksā 221-234
127-137 Arthāntaranyāsa 169-179
138-146 Vyatireka 180-198
147-149 Vibhāvanā 199-204

| | |
|--------------------|--------------|
| 150-174 Āksepa | 120-168 |
| 175-179 Atiśayokti | 214-220 |
| 180-181 Sūksma | 260 (cd)-264 |
| 182-185 Saṃāsokti | 205-213 |

Cf : अस्यालङ्कारस्य अन्यापदेश इति नामान्तरं वक्तव्यम् ।
and अन्यापदेश इत्यस्या नामान्यञ्चोच्यते यथा ॥

—Alamkārasamgraha V 29 (cd)

| | |
|---------------|---------|
| 186-188 Lava | 265-272 |
| 189-191 Krama | 273-274 |
| 192-194 Udāta | 300-303 |



Appendix-C

| ŚC IX | Kāvyaḍarsā I |
|-------------------------------|------------------|
| 195-200 Apahnava (= Apahnuti) | 304-309 |
| 201-202 Preyah | 275 (a)-279 |
| 203-207 Virodha | 333-340 (ab) |
| 208-220 Rasavad | 275 (b), 280-292 |
| 221-222 Ūrjasvi | 293-291 |
| 223-225 Aprastutaprasāmsana | 310 (cd)-342 |
| 226-232 Viśesokti | 323-329 |
| 233-237 Tulyayogitā | 330-332 |
| 238-239 Paryāyokta | 295-297 |
| 240-244 Sahokti | 351-355 (ab) |
| 245-247 Parivrtti | 355 (cd)-356 |
| 248-249 Samāhuta | 298-299 |
| 250-260 Śle-1 | 310-322 |
| 261-263 Nidarsāna | 318-350 |
| 264-267 Vyājasuti | 343-347 |
| 268-270 Āśli | 357 |

Cf

| | |
|-------------------|--------------------|
| 271-273 Samuccaya | Rule 13 VII 19-29 |
| 274-275 Vokrokti | (Rule 10 X-9 am?) |
| | Alankārasūtra V.49 |
| 276-279 Alamāra | Rule 10 VII 56-63 |

| | | |
|---------|----------------|---------------------------------|
| 280-281 | Viśama | Rudraṭa VII 47-55 |
| 282-283 | Avasara | Rudrata VII 103 |
| 284-285 | Prativastūpamā | Rudrata VII 85 (Ubhayanyāṣa) |
| 286-287 | Sāra | Rudraṭa VII 96 |
| 288-289 | Bhrāntimān | Rudrata VIII 87 |
| 290-293 | Ṣaṁśaya | Rudrata VIII 59-65 |
| 294-295 | Ēkāvālī | Rudrata VII 109-111 |
| 296-297 | Parīkara | Rudraṭa VII 72-76 |
| 298-300 | Paṛisaṁkhyā | Rudrata VII 79-81 |
| 301-304 | Praśnoṭṭara | Rudrata VII 93-95 |
| 305-308 | Ṣaṁkara | Rudrata X 24-29 |

(Note : As noted elsewhere, the examples in illustration of various Alamkāras are composed by Vijayavarṇī himself. Vijayavarṇī's indebtedness to Daṇḍī for the definitions of most of the Alamkāras is indisputable. He seems to have kept in view the definitions of Rudraṭa when defining a few-Alamkāras.)

Appendix-C

Sc X

Kāvyaṣṙakāṣa VII

On Doṣas

| | |
|----------------------------------|--------------------|
| 2-4 Enumeration of Padadoṣas | Kārikās 50-51 |
| 40-43 Enumeration of Vākyadoṣas | Kārikās 53-55 (āb) |
| 97-100 Enumeration of Arthadoṣas | Kārikās 55 (cd)-57 |
| 173-176 Sthitā-Sāmarthana | Kārikā 58 |
| 177-180 Enumeration of Rasadoṣas | Kārikās 60-62 |

A study of the definitions of the various Doṣas, classified into different sets, reveals that Vijayavarṇī has closely followed Mammaṭa.

Appendix-D

| Śc | and | Alaṅkārasaṅgraha |
|---------------------------------|-----|------------------|
| Chapter I : | | Chapter I : |
| Varṇa-gaṇa-śuddhi | | Varṇa-gaṇavicāra |
| 34-48 (ab) Varna-śuddhi | } | 23-36 |
| 58-62 Gaṇa-phala | | |
| Chapter II : | | Chapter II : |
| Kāvyagataśabdārthanīścaya | | Śabdārthanirṇaya |
| 3-7 (ab) Kavibhedāḥ | | 2-6 (ab) |
| 8 (cd)-41 Caturvidhā Vākyārthāḥ | | 10-35 |
| Chapter III : | | Chapter III : |
| Rasabhāvanīścaya | | Rasanirṇaya |

The treatment of Rasa, Bhāva, Rasa-Sāmagrī, Varieties of Rasa and Bhāva in both the works is after the treatment generally described in standard works on poetics with slight variations in a few details and more or less emphasis on a point or two. Thus we find in Śc* the description of S'ānta-rasa in accordance with the religion and philosophy of the Jainas, whereas in Alaṅkārasaṅgraha§, it is in accordance with Vedānta, and

* Chapter III, 109-112

§ Chapter III, 55-58 (ab)

particularly, with S'aiva faith. Sc treats of S'rngāra-rasa at great length in all its ramifications whereas Alamkāra-saṅgraha treats of it briefly-leaving out some of its main divisions.

Chapter IV :
Nāyakabhedanīścaya

Chapter IV :
Netrbhedanīrnaya

The treatment of this topic of the Heroes and the Heroines and their types in both the works is in agreement with Daśarūpaka.

Chapter V : Daśagunānīścaya

Chapter V : Alamkāra-
nīrnaya |

4, 6, 9, 13, 15,
18, 21, 23, 25, 27

2, 5, 6, 3(ab), 7(cd),
3 (cd), 8 (ab), 7(ab),
5 (ab), 6 (ab)

Although the treatment of these ten Guṇas in both the works is in agreement with the one found in Kāvya-darśa, the wording of definitions of a few Guṇas in both these works is very striking and leads one to the inference that S'C probably knew Alamkārasaṅgraha:

(1) आरोपादन्यघर्मस्य प्रकृतार्थस्य गौरवम् ।

समाधिरुच्यते सद्भिरिति वा लक्षण स्मृतम् ॥

—21

समाधिरन्यघर्मणामध्यासादर्थगौरवम् ।

—8 (ab)

(ii) पदेन वा प्रसन्नोऽर्थो यत्र सौ वा प्रसन्नता ।

—18 (cd)

पदैः प्रसन्नैर्यत्रार्थैः प्रसादोऽसौ प्रतीयते ।

—3 (cd)

(iii) पद्ये समासबाहुल्यं गद्ये वा हृद्यमुच्यते ।

ओजो गुणं ॥

—23

वाक्ये समासबाहुल्यं हृद्यमोजोऽभिधीयते ।

—7 (ab)

(iv) सरसौ यत्र शब्देश्च सरसोऽर्थोऽपि जायते ।

तन्माधुर्यमिति प्रोक्त कर्णानन्दविषायकम् ॥

—25

सरसौ यत्र शब्दार्थौ माधुर्यं श्रुतिमोदकृत् ।

—5 (ab)

(v) शब्दानामभिधेयानां गुणोत्कर्षो यदाथवा ।

तदौदार्यं मतं ॥

—9

शब्दार्थयोगुणोत्कर्षो यत्र सा स्यादुदारता ।

—6 (cd)

Chapter VI: Rīti nīścaya Chapter V Alamākāranirṇaya

4 (ab) Four-fold Rīti

1

6-7, 9, 11, 13

9, 10, 11, 12

15-16 Inherent relation

13-14

between Guṇas and Rasas

Chapter VII: Vrtti-niścaya Chapter VIII: Vrtti-nirūpaṇa

The treatment of Vrttis in SC is in close agreement with that of PRY whereas that in Alaṃkārasangraha is in very close agreement with the one in Nāṭyaśāstra.

Chapter IX :
Alaṃkāranirṇaya

Chapter V :
Alaṃkāranirṇaya

In the treatment of the Arthālaṃkāras Vijayavarṇī and Amrtānandayogin are heavily indebted to Daṇḍī's Kāvyaśāstra. Vijayavarṇī deals with thirty-three Alaṃkāras as found in Daṇḍī's work and in Alaṃkārasangraha, but, in addition, he treats of fourteen Alaṃkāras probably in accordance with Rudraṭa's Kāvyaśāstra.

Chapter X :
Doṣaṅganirṇaya

Chapter VI :
Doṣaṅganirṇaya

The treatment of this topic of Doṣas (and the peculiar circumstances in which they cease to be so) in both the works is after Mammata's Kāvyaśāstra (Ullāsa VII).

Appendix-E

पारिभाषिकाणामन्येषा च विशिष्टानां शब्दानां विशिष्टस्थल- सूचिका मातृकावर्णक्रमेणानुक्रमणी

| | |
|------------------------------|---|
| अक्रमम् १०*६१ | अनियम (अर्थः) १०*१३१ |
| अजहल्लक्षणा २*१७ | अनुक्तवाच्यम् (= अनभिहित- वाच्यम्) १० ८१ |
| अतिशयाभिधा (= अतिशयोक्ति) | अनुकूल (नायकः) ४ १८ |
| ९*१७५ ९ १७६-१७७ | अनुचितार्थम् १० २६ |
| अतिशयोपमा ९*३१-३२ | अनुज्ञाक्षेपालंकार. ९*१५८-१५९ |
| अतिहसितम् ३ ७० | अनुभाव ३ १६ |
| अतीतासाध्यगोचरानुमानालंकारः | अनुमानम् ९*२७६ |
| ९ २७८-२७९ | अनुशयाक्षेपालंकार ९*१६८-१६९ |
| अतीताक्षेपालंकार ९ १५१-१५२ | अनुक्रोशाक्षेपालंकारः |
| अत्यपक्वष्टसमुच्चय ९*२७३-२७४ | ९ १६७-१६८ |
| अत्युत्कृष्टसमुच्चयालंकारः | अनूढा (नायिका) ४*५० |
| ९.२७२-२७३ | अन्त्य (वर्ति) क्रियादीपकम् |
| अद्भुताख्यरसवदलंकार | ९*११८-११९ |
| ९ २१६-२१७ | अन्त्यवर्तिक्रियापददीपिकालंकार |
| अद्भुतातिशयोक्ति ९ १७९-१८० | ९ ११०-१११ |
| अद्भुतोपमा ९*३३-३४ | अन्त्यवर्तिगुणपददीपिकालंकार |
| अद्भुतो रस ३ १०५ | ९*१११-११२ |
| अधिकपदम् १०*७५ | अन्त्यवर्तिद्वयपददीपिकालंकार |
| अनागताक्षेपालंकार ९ १५३-१५४ | ९*११२-११३ |
| अनादराक्षेपालंकार ९ १६०-१६१ | |

| | |
|---|--------------------------------|
| अन्त्यवर्तिसज्ञापददोषकालंकारः | अमङ्गलम् (अश्लीलम्) १० १९ |
| ९ ११३-११४ | अयुक्तरूपकम् ९ ७४-७५ |
| अन्यशब्दसन्धि (= शब्दान्तर- सन्धि, नियामक) २ ३७ | अयुक्तार्थान्तरन्यास ९ १३३-१३४ |
| अन्यापदेश ९ १८५-१८६ | अर्थ (नियामक) २ ३६ |
| अन्योन्योपमा ९ २७-२८ | अर्थव्यक्ति. ५ २७ |
| अपह्नव (= अपह्नुति) ९ १९५ | अर्थकृतविरोधालंकार ९ २०७- |
| अपुष्ट (अर्थ) १० १०१ | २०८ |
| अपूर्वसमासोक्ति ९ १८५-१८६ | अर्थान्तरन्यासः ९ १२७ |
| अप्रतीतम् १० ३२ | अर्थान्तराक्षेपालंकार ९ १७१- |
| अप्रयुक्तम् १० १३ | १७२ |
| अप्रशस्तनिदर्शनालंकार | अर्थान्तरैकवाचकम् १० ८७ |
| ९ २६३-२६४ | अर्थालंकार ९ ७ |
| अप्रस्तुतार्थम् १० ८३ | अर्थवृत्ति ९ ८७-८८ |
| अप्रस्तुतप्रशसनम् (= अप्रस्तुत- प्रशसा) ९ २२३, ९ २२४-२२५, ९ २२५-२२६ | अलंकार ९ ३ |
| अस्थानस्थपदम् (= अपदस्थितम्) | अवयवरूपकम् ९ ७०-७१ |
| १० ७१ | अवयविरूपकम् ९ ७१-७२ |
| अस्थानस्थसमासम् १० ७३ | अवहसितम् ३ ७० |
| अभवन्मतयोगम् १० ९३ | अविरुद्धक्रियाश्लेषः ९ २५५-२५६ |
| अभावरूपनिर्वर्त्यविषयहेत्वलंकार | अविरुद्धश्लेष ९ २५९-२६० |
| ९ ९४-९५ | अवसरः ९ २८२, ९ २८३-२८४ |
| अभिन्नपदश्लिष्टम् ९ २५१-२५२ | अवाचकम् १० १० |
| अभिसारिका ४ १०१ | अविमृष्टविधेयाशम् १० २८ |
| अभूतोपमा ९ ४७-४८ | अश्लीलम् १० १७ |
| | अश्लोल (अर्थ.) १० ११९ |
| | असमर्थम् १० ५ |
| | असाधारणोपमा ९ ४६-४७ |

| | |
|---|--|
| असभावितोपमा ९*४८-४९ | इन्दोवरवर्णः ३*११७ |
| असमतपरार्थम् १० ८५ | उक्तविरुद्ध (अर्थः) १०*१२७ |
| अहेतुक (= निर्निमित्तः, अर्थः) १० ११५ | उत्तम (हास्यरस.) ३*६९ |
| आक्षेपः २ ४ | उत्प्रेक्षा ९ ११९ |
| आक्षेपरूपकम् ९*८१-८२ | उदात्तम् (अलकार.) ९*१९२ |
| आचिख्यासोपमा ९*४१-४२ | उद्घापनो विभाव. ३*१५ |
| आदिवर्तिक्रियापददोषकालकार. ९ १००-१०१ | उपनायकाः ४*२९ |
| आदिवर्तिगुणपददोषकालकार ९ १०१-१०२ | उपमा ९*२३ |
| आदिवर्तिजातिपददोषकालकार. ९ ९९-१०० | उपमापह्लाव ९*२०० |
| आदिवर्तिद्वयपददोषकालकार ९*१०२-१०३ | उपमारूपकम् ९ ७९-८० |
| आदिवर्तिसजापददोषकालकार. ९*१०३-१०४ | उपमाश्लेष ९ २६०-२६१ |
| आधिक्योपेतभेदलक्षणव्यति- रेकालकारः ९ १४३-१४४ | उपहतलुप्तविसर्गम् १०*४४ |
| आरभटो ७ ५ | उपहसितम् ३ ७० |
| आर्थ (कवि) २*४ | उपायाक्षेपालकारः ९ १६५-१६६ |
| आलम्बनो विभाव ३*१५ | उभयव्यतिरेकालकारः ९*१४०- १४१ |
| अ वृत्तिः (अलकार) ९*८७ | उभयावृत्तिः ९*८९-९० |
| आशीः (अलकारः) ९ २६८, ९*२६९-२७०, ९*२७०-२७१ | ऊर्जस्विनाम लकारः ९*२२१, ९ २२२-२२३ |
| आशीवंचनाक्षेपालकारः ९ १६१-१६२ | एकव्यतिरेकालकारः ९ १३९- १४० |
| | एकार्थदोषकम् ९ ११७-११८ |
| | एकावली ९*२९४, ९*२९५-२९६ |
| | ऐश्वर्यमहत्त्वोदात्तालकार ९*१९४-१९५ |
| | ओज ५*२३ |

| | |
|------------------------------|---------------------------------|
| ओचित्यम् (नियामकः) २३८ | कष्टकल्पना (रसदोष) |
| ओदार्यम् ४४१, ५८-९, ५ ३१ | १०१९१-१९२ |
| ओदार्यम् (अलकार) ४ १३५ | कान्ति ४१२७, ५१५, ५ १६ |
| गभितम् १०५१ | कारणाक्षेपालकारः ९ १५६-१५७ |
| गाम्भीर्यम् ४ ४० | कारणान्तरकल्पनाविभावना |
| गुण २१२ | ९ १४८-१४९ |
| गुणवैकल्यविशेषोक्तिः ९२२७- | कार्यकारणसहजन्मकथनसहोक्तिः |
| २२८ | ९२४४-२४५ |
| गुणमहभावकथनसहोक्तिः | कार्याक्षेपालकार ९१५७-१५८ |
| ९२४१-२४२ | काल (नियामकः) २ ३५ |
| गुणाष्टकम् ४ ३५ | किलकिञ्चित् ४१४७ |
| गौडो रीतिः ६९ | कुट्टमितम् ४१५३ |
| गौणोऽर्थः २२२ | कैशिकी ७४ |
| गौरवर्ण ३१२१ | क्रम (अलकार) ९ १८९ |
| ग्राम्यम् १०१५ | ९ १९०-१९१, ९ १९१-१९२ |
| ग्राम्य (अर्थः) १०१०९ | क्रिया २ ११ |
| कथितपदम् १०५७ | क्रियावैकल्यविशेषोक्ति |
| कनिष्ठा (मध्या) ४ ८१ | ९ २२९-२३० |
| करुणाख्यरस ३७४ | क्रियासहभावकथनसहोक्ति |
| करुणाख्यरसवदलकारः ९२१३- | ९ २४२-२४३ |
| २१४ | क्रियैका अभिन्नश्लेष. ९ २५४-२५५ |
| करुणात्मक (विप्रलम्भशृंगारः) | क्विलम् १०२३ |
| ४१०७ | खण्डिता ४९९ |
| कलहान्तरिता ४ ९१ | चक्षु प्रीतिः (= नयनप्रीति., |
| कपायवर्णः ३ ११९ | अवस्था) ३४४ |
| कष्ट (अर्थ) १० १०३ | चटूपमा ९ ४४-४५ |

| | |
|-------------------------------|-----------------------------|
| चेष्टादि. (नियामक) २*४१ | दानवीररसाख्यरसवदलकार. |
| चेष्टाप्रकाशनलेशालकारः | ९ २११-२१२ |
| ९*१८८-१८९ | दीपकम् ९*९८ |
| च्युतसस्कृति १०*१२ | दीप्ति ४ १२९ |
| जघन्य (हास्यरस) ३*६९ | दुष्क्रम. १०*१११ |
| जहत्यजहती लक्षणा २*१९ | दूत्य ४ १११ |
| जहल्लक्षणा २*१५ | देशः (नियामकः) २*४० |
| जागरः (अवस्था) ३*५० | द्रव्यम् (मुख्यार्थ) २*१२ |
| जाति २*११, ९*१५ | द्रव्यवैकल्यविशेषोक्तिः |
| जातिवैकल्यविशेषोक्ति | ९*२३०-२३१ |
| ९-२२८-२२९ | द्राक्षापाकः ८ ६ |
| जुगुप्साकरम् (अश्लीलम्) १०*२० | धर्मवीररसाख्यरसवदलकार' |
| ज्ञापकहेत्वलकारः ९*९७-९८ | ९ २१२-२१३ |
| ज्येष्ठा (मध्या) ४*८१ | धर्मक्षिपालकार. ९ १५४-१५५, |
| तनुता (अवस्था) ३*५२ | ९ १७३-१७४ |
| तत्त्वाख्यानोपमा ९*४५-४६ | धर्मोपमा ९*२४-२५ |
| तत्त्वापह्नुतिरूपकम् ९*८४-८५ | धर्म्यक्षिपालकार. ९*१५५-१५६ |
| तुल्ययोग. (= तुल्ययोगिता) | धीरललित. ४ ९ |
| ९ २३३, ९*२३४ | धीरशान्तः ४*११ |
| तेज ४*३६ | धीराधीराप्रगल्भा ४ ७९ |
| त्यक्तपुन स्वीकृत १० १३९ | धीरोदात्तः ४*७ |
| त्रपानाशा (अवस्था) ३*५६ | धीरोद्धत. ४*१३ |
| दक्षिणः (नायक) ४*२४ | धूम्रवर्ण ३*१२२ |
| दयावीर ३*८७ | धृष्ट (नायक) ४*२२ |
| दानवीर ३ ८७ | धैर्यम् ४*१३७ |
| | ध्वनिः २ २४ |

| | |
|--|---|
| तन्दिः ३ १२३ | पञ्चपरमेष्ठिन ३*११० |
| नागरिक* ४ ३२ | पतत्प्रकर्षम् १० ९५ |
| नायक ४*५ | पददोषा १० ४ |
| नायिका ४ ४४ | पदावृत्ति. ९ ८८-८९ |
| नालिकेरपाक* ८ ७ | परकीया (नायिका) ४ ५२-४ ५४ |
| निदर्शनम् ९ २६१ | परब्रह्म (अधिदेवता) ३ १२५ |
| निन्दापरतुल्ययोगिता ९ २३७-२३८ | परवशाक्षेपालकार ९*१६४-१६५ |
| निन्दास्तुतिः ९ १८६, ९ १८७- | परिकर ९ २९६, ९ २९७-२९८ |
| १८८ | परिसख्या ९ २९८, ९ २९९-३००, ९ ३००-३०१ |
| निन्दोपमा ९*३९-४० | परिवृत्ति ९*२४५ |
| नियमनिषेधश्लेष ९ २५८-२५९ | पर्यायोक्तम् ९ २३८, ९ २३९-२४० |
| नियमोपमा ९ २९-३० | पाक ८ ५ |
| नियामका २ २९ | पाञ्चाली रीति ६ ११ |
| निरर्थकम् १० ८ | पीठमर्द. ४ ३१ |
| निर्णयोपमा ९*३६-३७, ९*२९३-२९४ | पुनरुक्त. (अर्थ) १०*११७ |
| निर्वर्त्यकारकविषयहेत्वलकार ९ ९३-९४ | पूर्वानुराग* ४ १०५ |
| निश्चय (नय) ३ ११० | प्रकरणम् (नियामक) २*३६ |
| निश्चयातिशयोक्तिः ९*१७८-१७९ | प्रगल्भता ४ ६५ ४ १३३ |
| निश्चयान्त* ९ २९३-२९४ | प्रगल्भा अधीरा ४ ७७ |
| नोलजीमूतसंनिभ ३ १९३ | प्रगल्भा धीरा ४ ७४ |
| चेतूगुणा. ४ ४ | प्रतिकूलग्रहः (रसदोष) १० १९२-१९३ |
| नेयार्थम् १० २१ | प्रतिकूलवर्णम् १०*६९ |
| न्यूनपदम् १०*५५ | प्रतिनायका ४ ३३ |

| | |
|---------------------------------|-----------------------------|
| प्रतिवस्तूपमा ९५४-५५, | बुद्धिमहत्त्वोदात्तालकार |
| ९२८४, ९२८५-२८६ | ९१९३-१९ |
| प्रतिषेधोपमा ९४३-४४ | भग्नप्रक्रमम् १० ८९ |
| प्रतीयमानसादृश्यभेदमात्रव्यति- | भयानकरसः ३९४ |
| रेकालकार ९१४२-१४३ | भयानकाख्यरसवदलंकारः |
| प्रतीयमाना (सत्प्रेक्षा) ९१२१ | ९२१७-२१८ |
| प्रभुत्वाक्षेपालंकारः ९१५९-१६० | भारती ७६ |
| प्रवासः ४ १०६ | भावः ४११८ |
| प्रशस्तनिदर्शनलंकारः ९२६२- | भावा ३१२ |
| २६३ | भावाभासः १०१८४ |
| प्रशंसोपमा ९४०-४१ | भाक्सिाध्यगोचरानुमानालंकारः |
| प्रश्नोत्तरालंकारः ९३०१ | ९२७९-२८० |
| प्रसन्नता ५ १८ | भ्रान्तिमदलंकारः ९२८९-२९० |
| प्रसिद्धिविरुद्धः (अर्थः) १०१२३ | भ्रान्तिमान् ९ २८८ |
| प्रसिद्धिहतम् १० ५९ | भिन्नपददिलिष्टम् ९२५२-२५३ |
| प्राप्यविषयकारकहेत्वलकार | भिन्नाभिन्नविशेषणसमासोक्तिः |
| ९९६-९७ | ९ १८४-१८५ |
| प्रेयोऽलंकारः ९२०१, | भूपणार्थी २७ |
| ९२०२-२०३ | मध्यमः (हास्यरसः) ३६९ |
| प्रोषितभर्तृका ४ ९७ | मध्यमा आरभटी ७ १५ |
| बहूपमा ९ ४९-५० | मध्यमा कैशिकी ७ १४ |
| बिम्बोक ४१५५ | मध्या (नायिका) ४६३ |
| बीभत्सरसः ३९९ | मध्या अधीरा ४७० |
| बीभत्साख्यरसवदलकारः | मध्या धीरा ४ ६८ |
| ९ २१४-२१५ | मन सवितः (अवस्था) ३ ४६ |
| | मरणम् (अवस्था) ३६२ |

| | |
|--|--------------------------------------|
| महाकालः ३ १२२ | युक्तार्थान्तरन्यास ९ १३४-१३५ |
| मध्यवर्तिक्रियापददीपकालकारः ९ १०५-१०६ | युद्धवीर ३ ८७ |
| मध्यवर्तिगुणपददीपकालकारः ९ १०६-१०७ | युद्धवीररसाख्यरसवदलंकार ९ २१०-२११ |
| मध्यवर्तिजातिपददीपकालकार. ९ १०४-१०५ | रक्तवर्ण ३ १२० |
| मध्यवर्तिद्रव्यपददीपकालकारः ९ १०७-१०८ | रस. ३ ५ |
| मध्यवर्तिसज्ञापददीपकालकार. ९ १०८-१०९ | रसविच्युतम् (= रसच्युतम्) १० ७७ |
| माधुर्यम् ४ ३८, ४ १३१, ५ २५ | रसवान् (= रसवद्) अलंकार. ९ २०८ |
| मानः ४ १०६ | रसाभास १० १८१ |
| मार्दवानुगनादभाक् २ ५ | रीति ६ ३ |
| मालादीपकम् ९ ११४-११५ | रुद्र (अधिदेवता) ३ १२० |
| मालोपमा ९ ५१-५२ | रूपकम् ९ ६५ |
| मुख्योऽर्थः २ १० | रोषाक्षेपालकार ९ १६६-१६७ |
| मुषा (नायिका) ४ ६१ | रोचिक (कवि) २ ३ |
| मूर्च्छा (अवस्था) ३ ६० | रोद्ररस ३ ८० |
| मोद्द्रापितम् ४ १४९, ४ १५० | रौद्राख्यरसवदलंकार ९ २१८-२१९ |
| मोहः (अवस्था) ३ ५८ | लक्षणा २ १३ |
| मोहोपमा ९ ३४-३५, ९ २८९-२९० | ललितम् ४ ४२, ४ १५७ |
| यत्नाक्षेपालकारः ९ १६३-१६४ | लव ९ १८६ |
| युक्तरूपकम् ९ ७३-७४ | लाटी वृत्ति (= रीतिः) ६ १३ |
| युक्तायुक्तार्थान्तरन्यासः ९ १३५-१३६ | लिङ्गम् (नियामक) २ ३७ |
| | लीला ४ १३९ |
| | वक्रोक्तिः ९ २७४, ९ २७५-२७६ |

| | |
|--|--|
| वचोगोपनलेशालकारः ९ १८७-१८८ | विप्रलब्धा ४ ९३ |
| वर्तमानसाध्यगोचरानुमाना- लकार ९ २७७-२७८ | विप्रलम्भशृङ्गार ४ १०४ |
| वर्तमानाक्षेपालकारः ९ १५२-१५३ | विप्रलम्भशृङ्गाररस ३ ४० |
| वस्तूपमा ९ २५-२६ | विभावः ३ १४ |
| वाक्यार्थोपमा (एकेवशब्दा) ९ ५२-५३ | विभावना ९ १४७ |
| वाक्यार्थोपमा (अनेकेवशब्दा) ९ ५३-५४ | विभ्रमः ४ १४५ |
| वाचिकः (कवि) २ ४ | विरहोत्कण्ठिता ४ ९५ |
| वाच्योत्प्रेक्षा ९ १२१, ९ १२५- १२६, ९ १२६-१२७ | विरुद्धक्रियाश्लेषः ९ २५६-२५७ |
| वासकसज्जिका ४ ८९ | विरुद्धमतिकृत् १० ३० |
| वासुदेव ३ ११७ | विरोधोपमा ९ ४२-४३ |
| विकार्यविषयकारकहेत्वलकार ९ ९५-९६ | विलासः ४ ३७, ४ १४१ |
| विक्रियोपमा ९ ५०-५१ | विपर्ययार्थान्तरन्यास ९ १३६-१३७ |
| विघ्नराजः ३ ११८ | विपर्यासोपमा ९ २६-२७ |
| विच्छित्ति ४ १४३ | विरुद्धरूपकम् ९ ७७-७८ |
| विट ४ ३२ | विरुद्धार्थदीपकम् ९ ११५-११६ |
| विदूषकः ४ ३० | विरोधक (= विरोध) ९ २०३ |
| विधाता (अधिदेवता) ३ १२४ | विरोधातिशयोक्ति ९ १७९-१८० |
| विधुप्रबन्ध १ २८ | विरोधिता (= विरोधः, नियामक) २ ३३ |
| विध्यनुवादविवृतः (अर्थ.) १० १३७ | विवेकी (कवि) २ ७ |
| विद्याविरुद्ध (अर्थ) १० १२५ | विशेषपरिवृत्त (अर्थः) १० १३३ |
| विप्रयोग (नियामकः) २ ३२ | विशेषस्थार्थान्तरन्यास ९ १३०-१३१ |
| | विशेषोक्ति ९ २२६ |
| | विश्वव्यापिनामार्थान्तरन्यासः ९ १२८-१२९ |

| | |
|-----------------------------------|----------------------------------|
| विषम रूपकम् ९*७५-७६ | व्याजस्तुत्यलकार. ९ २६५-२६६ |
| विषमः ९ २८० | व्रीडाकरम् (अवलीलम्) १० १८ |
| विषयापह्नवालकारः ९*१९९-२०० | शक्तिः (= सामर्थ्यम्, |
| विषयद्वेषकः (विषयद्वेषः, अवस्था) | नियामकः) २ ३ |
| ३*५४ | शठः (नायक.) ४ २० |
| विसदृशोर्थपरिवृत्ति. ९*२४७-२४८ | शतमन्यु ३*१२१ |
| विसधि १०*६४ | शब्दकृतविरोधः ९ २०४-२०५ |
| विहसितम् ३*७० | शब्दालंकरणतयः ९ ५ |
| वीररसः ३*८६ | शान्तरसः ३*१०९ |
| विहृतम् ४ १५९ | शान्तरसाख्यरसवदलकार |
| वृत्तिः ७ ३ | ९ २१९-२२० |
| वैदर्भी रीतिः ६*७ | शान्तिजिन ९*२१२ |
| व्यक्तगूढोत्तरप्रश्नोत्तरालकार. | शिल्पिकः (कवि) २ ५ |
| ९*३०४-३०५ | शृङ्गाररस ३ ८ |
| व्यक्तप्रश्नगूढोत्तरालंकारः | शृङ्गाराख्यरसवदलकारः |
| ९*३०३-३०४ | ९*२०९-२१० |
| व्यक्तप्रश्नोत्तरालकार. ९*३०२-३०३ | शृङ्गारार्णवचन्द्रिका १*२२ |
| व्यक्तिः (नियामक) २ ३९ | शोभा ४ ३९, ४*१२५ |
| व्यतिरेकः ९*१३८ | श्लिष्टम् ९*२५० |
| व्यतिरेकरूपकम् ९*८०-८१ | श्राद्धदेवः ३*११९ |
| व्यभिचारिभाव ३*१९ | श्रुतिकटु १० ७ |
| व्यर्थीकृत १०*११३ | श्लिष्टव्याजस्तुति. ९ २६६-२६७ |
| व्यवहार (नय) ३*११० | श्लिष्टाक्षेपालंकार ९*१६९-१७० |
| व्यस्तरूपकम् ९ ६७-६८ | श्लिष्टार्थदीपकम् ९*११६-११७ |
| व्याहृत. (अर्थ) १०*१०७ | श्लिष्टार्थान्तरन्यासः ९*१३१-१३२ |
| व्याजस्तुति. ९ २६४ | श्लेषः ५*११, ५*१३ |

| | |
|----------------------------------|-----------------------------|
| द्वलेपोपमा ९३७-३८ | सनियमश्लेषः ९२५७-२५८, |
| संयोगः (नियामकः) २३२ | ९३००-३०१ |
| सशय (अलकारः) ९२९०, | समता (= साम्यकम्) ५२९ |
| ९२९१-२९२, ९२९२-२९३, | समस्तरूपकम् ९६६-६७ |
| ९२९३-२९४ | समस्तव्यस्तरूपकम् ९६८-६९ |
| संशयाक्षेपालंकार ९१७०-१७१ | समाधानरूपकम् ९८२-८३ |
| संशयातिशयोक्तिः ९१७७-१७८ | समाधि ५२०, ५२१ |
| सशयोपमा ९३५-३६, ९२९३- | समानविशेषणभिन्नविशेष्य- |
| २९४ | समासोक्ति ९१८३-१८४ |
| सकलरूपकम् ९६९-७० | समाप्तपुनरात्तम् १०७९ |
| संकर ९३०५, ९३०६-३०७, | समासोक्ति ९१८२ |
| ९३०७-३०८ | समाहितम् ९२४८ |
| सकीर्णम् १०५३ | समुच्चयः ९२७१ |
| सकल्पः (अवस्था) ३४८ | समुच्चयोपमा ९३०-३१ |
| सजातिव्यतिरेकालकार. | सभोग (शृङ्गार) रसः ३३७ |
| ९१४६-१४७ | सविशेषणरूपकम् ९७६-७७ |
| संचारिभावाः (त्रयस्त्रिंशत्) ३२२ | सहचरभिन्न १०१४१ |
| सत्त्वम् ३१७ | सहेतुव्यतिरेकालकार ९१४२-१४३ |
| संतानोपमा ९३८-३९ | सहोक्तिः ९२४०, ९२४३ |
| संदिग्धम् १०२४ | साकाङ्क्षः (अर्थः) १०१२१ |
| संदिग्ध (अर्थः) १०१०५ | साक्षेपव्यतिरेकालंकार ९१४१- |
| सदृशव्यतिरेकालकार ९१४४- | १४२ |
| १४५, ९१४५-१४६ | साचिव्याक्षेपालकार ९१६२- |
| सदृशार्थपरिवृत्तिः ९२४६-२४७ | १६३ |
| सनियमः (अर्थः) १०१२९ | सात्वती ७७ |
| | सात्विकाष्टकम् ३१८ |

| | |
|---|---------------------------------|
| सात्विकोभाव ३ १७ | स्वभावोक्ति ९ १४ |
| साधारणा (नायिका) ४ ५७ | स्वरादि (नियामक) २ ४० |
| सामान्यव्यत्यय (= अविशेष- परिवृत्त) १०*१३५ | स्वरूपापह्नवालकार ९*१९६-१९७ |
| सारालंकृति (= सारालकार) ९ २८६, ९ २८७-२८८ | स्वशब्दग्रहणम् (रसदोष) १० १८७ |
| साहचर्यम् (नियामक) २ ३४ | स्वाधोनपत्तिका ४*८७ |
| सुधाधवलवर्ण ३*११८ | हतवृत्तम् १० ४६ |
| सूक्ष्म ९*१८०, ९ १८१-१८२ | हसितम् ३*६९ |
| सौकुमार्यम् ५ ६ | हाव ४ १२१ |
| स्तुतिपरतुल्ययोगिता ९*२३५-२३६ | हास्यरस ३ ६४ |
| स्थायिभाव ३ ३ | हास्याख्यरसवदलकार ९ २१५- २१६ |
| स्फटिकवर्णभाक् ३ १२५ | हेतु ९ ९१, ९ ९२ |
| स्मितम् ३*६९ | हेतुरूपकम् ९ ७८-७९ |
| स्थिरत्वम् (= स्थैर्यम्) ४ ३९ | हेतुविशेषोक्ति ९ २३१-२३२ |
| स्याद्वाद ३ १११, १० ९५ | हेतूपमा ९ ५६-५७ |
| स्वकीया (= स्वीया, नायिका) ४ ४८ | हेत्वाक्षेपालंकार ९ १७२-१७३ |
| स्वभावविभावना ९ १४९-१५० | हेमवर्ण ३ १२४ |
| | हेला ४*१०० |

Appendix-F

REFERENCES

1. Alankārasaṅgraha of Amṛtānandayogin
– The Adyar Library, Adyar, 1949
2. Alankārasaṅgraha by Amṛtānandayogin
– Sri Venkatesvara Oriental Institute, Tirupati,
1950
3. Candrāloka of Jayadeva
– The Gujarati Printing Press, Bombay, 1923
4. Daśarūpaka of Dhanañjaya
– Nirṇaya-Sāgar Edition, Bombay, 1941
5. Kāvyaḍarsā of Daṇḍin
– Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona,
1938
6. Kāvyaṁimāṁsā of Rājaśekhara
– Oriental Institute, Baroda, 1934
7. Kāvyaṁprakāśā of Maṁṁta
– Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur,
1959.
8. Kāvyaġaṅkāra of Bhāṁmaha
– Kashi Sanskrit Series, Benares, 1928

१० दोषगुणनिर्णय.

9. Kāvyaḷankāra of Rudrata
– Kāvyaḷālā 2, Nirṇaya-Sāgar edition
10. Kāvyaḷankārasūtravṛtti of Vāmana
– Published by Atmaram and Sons, Delhi, 1954
11. Nāṭyaśāstra of Bharatamuni
– Oriental Institute, Baroda, 1956.
12. Pratāprudrayasobhūšana of Vidyānātha
– Bombay Sanskrit and Prakrit Series, No. LXV
1909
13. Sarasvatīkanthābharāṇa by Bhojadeva
– Kāvyaḷālā 94, Nirṇaya Sāgar edition, Bombay,
1934
14. Vṛttaratnākara by Kedārabhatta,
– Nirṇaya Sāgar edition, 1908.
15. A History of Sanskrit Literature—A B Keith, 1928
16. History of Classical Sanskrit Literature
– M. Krishnamachariar, Madras, 1937.
17. The Sanskrit Drama—A B Keith, 1964
18. The Number of Rasas—V. Raghavan
The Adyar Library, Adyar, 1940.
19. Studies on Some Concepts of the Alankāraśāstra
– V. Raghavan
– The Adyar Library, Adyar, 1942

20. Jaina Siddhānta Bhāskara, Vol. XXIII, Part I
December '1963 – PP. 18-29 – Dr. Nemichandra
Shastri's article – Do Alaṅkāra Granthoṅ ki
Pāṇḍulipiyaṅ
21. Praśasti-Sangraha, (PP 73-78) edited by
Pt K Bhujabali Sastri, Arrah, 1942



शुद्धिपत्रम्

| | | |
|-----|-----|--|
| पृ० | पं० | एव पठितव्यम् |
| ९ | १६ | साजहल्लक्षणेतरा |
| १३ | १६ | मात्त्विकाष्टकम् |
| २२ | ५ | विनिष्कासिता |
| २६ | १८ | शृङ्गाराख्यप्रसे |
| २८ | १५ | लुब्धा धीरोद्धता |
| २९ | ४ | ॥ ३८ ॥ |
| २९ | ५ | शोभा या |
| ४३ | १७ | गुणोत्कर्षा |
| ४९ | ९ | बोमत्स |
| ५२ | ९ | निष्पाकं |
| ६४ | १३ | सुध्रासूतिर्नेय |
| ६८ | २० | तन्त्रविदयं |
| ८६ | २१ | तद्धि पर्यायोक्त |
| १०७ | १६ | अममतपरार्थं |
| १०७ | १९ | इत्यमतपरार्थं— |
| १०९ | २ | व्यर्थोक्तुनो |
| १०९ | २२ | [टिप्पणी अत्र १०७ तमस्य श्लोकस्य मातृ- कायामेव त्रुटित द्वितीयार्धम् 'द्व्याहनोऽर्थं स उक्त स्यात्तत्त्वनिश्चयकोविदै' इति पूरणोपमम् इत्यहं मन्ये ।] |
| ११७ | १२ | नीरेजादिप्रवर्तनम् |

MĀNIKACHANDRA D. J. GRANTHAMĀLĀ

* The Serial Numbers marked with asterisk are out of print

*1 **Laghīyastraya-ādi-saṅgrahah** : This vol. contains four small works. 1) *Laghīyastrayam* of Akalaṅkadeva (c 7th century A. D.), a small Prakaraṇa dealing with *pramāṇa*, *naya* and *pravacana*. Akalaṅka is an eminent logician who deserves to be remembered along with Dharmakīrti and others. His works are very important for a student of Indian logic. Here the text is presented with the Sk commentary of Abhayacandrasūri. 2) *Svarūpasambodhana* attributed to Akalaṅka, a short yet brilliant exposition of *ātman* in 25 verses. 3-4) *Laghu-Sarvajña-siddhiḥ* and *Bṛhat-Sarvajña-siddhiḥ* of Anantakīrti. These two texts discuss the Jaina doctrine of Sarvajñatā. Edited with some introductory notes in Sk on Akalaṅka, Abhayacandra and Anantakīrti by Pt KALLAPPA BHARAMAPPA NITAVE, Bombay Samvata 1972, Crown pp 8-204, Price As 6/-.

*2. **Sāgāra-dharmāmṛtam** of Āśādharma. Āśādharma is a voluminous writer of the 13th century A. D., with many Sanskrit works on different subjects to his credit. This is the first part of his *Dharmāmṛta* with his own commentary in Sk dealing with the duties of a layman. Pt. NATHURAM PREMI adds an introductory note on

Āśādhara and his works. Ed. by Pt. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1972, Crown pp 8-246, Price As. 8/-

*3. **Vikrāntakauravam** or **Sulocanānātakam** of Hastimalla (A.D. 13th century) : A Sanskrit drama in six acts. Ed. with an introductory note on Hastimalla and his works by Pt MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1972, Crown pp. 4-164, Price As 6/-.

*4. **Pārśvanātha-caritam** of Vādirājasūri · Vādirāja was an eminent poet and logician of the 10th century A. D. This is a biography of the 23rd Tīrthaṅkara in Sanskrit extending over 12 cantos. Edited with an introductory note on Vādirāja and his works by Pt. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 18-198, Price As. 8/-

*5. **Maithilikalyāṇam** or **Sītānāṭakam** of Hastimalla : A Sk. drama in 5 acts, see No. 3 above Ed. with an introductory note on Hastimalla and his works by Pt. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 4-96, Price As. 4/-

*6 **Ārāadhanāsāra** of Devasena · A Prākṛit work dealing with religio-didactic topics Prākṛit text with the Sk commentary of Ratnakīrtideva, edited by Pt MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 128, Price As. 4/6.

*7. **Jinadattacaritam** of Guṇabhadra A Sk poem in 9 cantos dealing with the life of Jinadatta, edited by Pt. MANOHARLAL, Bambaay saṁvat 1973, Crown pp. 96, Price As. 5/-.

8 **Pradyumnacarita** of Mahāsenācārya : A Sk. poem in 14 cantos dealing with the life of Pradyumna. It is composed in a dignified style Edited by Pts. MANOHARLAL and RAMAPRASAD, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp 230, Price As 8/-.

9. **Cāritrasāra** of Cāmuṇḍarāya It deals with the rules of conduct for a house-holder and a monk. Edited by Pt INDRALAL and UDAYALAL, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp 103, Price As. 6/-.

*10 **Pramānanirnaya** of Vādirāja · A manual of logic discussing specially the nature of Pramāṇas. Edited by Pts INDRALAL and KHUBCHAND, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp 80, Price As 5/-.

* 11 **Ācārasāra** of Vīranandi : A Sk text dealing with Darśana, Jñāna etc. Edited by Pts INDRALAL and MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp 2-98, Price As. 6/-.

* 12. **Trilokasāra** of Nemichandra : An important Prākṛit text on Jaina cosmography published here with the Sk. commentary of Mādhavacandra Pt PREMI has written a critical note on Nemicandra and Mādhavacandra in the Introduction Edited with an index of Gāthās by Pt. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1975, Crown pp. 10-405-20, Price Rs 1/12/-

* 13 **Tattvānuśāsana-ādi-saṁgrahah** : This vol. contains the following works 1) *Tattvānuśāsana* of Nāgasena. 2) *Iṣṭopadeśa* of Pūjyapāda with the Sk.

commentary of Āśādhara. 3) *Nūtisāra* of Indranandi. 4) *Moksapañcāsikā*. 5) *Śrutāvātāra* of Indranandi. 6) *Adhyātmataṅgiṇī* of Somadeva. 7) *Brhat-pañca-namaskāra* or *Pātrakesarī-stotra* of Pātrakesarī with a Sk. commentary. 8) *Adhyātmāṣṭaka* of Vādirāja 9) *Dvā-triṃśikā* of Amītagaṭī 10) *Vaiṅgyamaṇimālā* of Śrīcandra 11) *Tattvasāra* (in Prākṛit) of Devasena. 12) *Śrutaskandha* (in Prākṛit) of Brahma Hemacandra. 13) *Dhādasī-gāthā* in Prākṛit with Sk chāyā 14) *Jñānasāra* of Padmasimha, Prākṛit text and Sk chāyā. Pt. PREMI has added short critical notes on these authors and their works Edited by Pt MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1975, Crown pp 4-176, Price As. 14/-

* 14 **Anagāra-dharmāmṛta** of Āśādhara · Second part of the *Dharmāmṛta* dealing with the rules about the life of a monk. Text and author's own commentary. Edited with verse and quotation Indices by Pts. BANSIDHAR and MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1976, Crown pp 69-235, Price Rs 3/8/-.

* 15. **Yuktyanuśāsana** of Samantabhadra · A logical Stotra which has wielded great influence on later authors like Siddhasena, Hemacandra etc Text published with an equally important commentary of Vidyānanda. There is an introductory note on Vidyānanda by Pt PREMI. Ed. by Pts. INDRALAL and SHRILAL, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp. 6-182, Price As 13/-.

*16. **Nayacakra-ādi-saṁgraha** This vol. contains the following texts. 1) *Laghu-Nayacakra* of Devasena, Prākṛit text with Sk chāyā 2) *Nayacakra* of Devasena, Prākṛit text and Sk chāyā 3) *Ālāpapaddhati* of Devasena. There is an introductory note in Hindī on Devasena and his *Nayacakra* by Pt. PREMI Edited by Pt BANSIDHARA with Indices, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp 42-148. Price As. 15/-

*17 **Ṣaṭprābhṛtādi-saṁgraha** : This vol contains the following Prākṛit works of Kundakunda of venerable authority and antiquity 1) *Darśana-prābhṛta*, 2) *Cāri-
tra-prābhṛta*, 3) *Sūtra-prābhṛta*, 4) *Bodha-prābhṛta*, 5) *Bhāva-prābhṛta*, 6) *Mokṣa-prābhṛta*, 7) *Liṅga-prābhṛta*, 8) *Śīla-prābhṛta*, 9) *Rayanasāra* and 10) *Dvādaśānu-
prekṣā* The first six are published with the Sk commentary of Śrutasāgara and the last four with the Sk. chāyā only. There is an introduction in Hindī by Pt PREMI who adds some critical information about Kundakunda, Śrutasāgara and their works Edited with an Index of verses etc by Pt PANNALAL SONI, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp 12-442-32 Price Rs 3/-.

*18 **Prāyaścittādi-saṁgraha** : The following texts are included in this volume 1) *Chedapīṇḍa* of Indra-
nandi Yogīndra, Prākṛit text and Sk chāyā. 2) *Cheda-
śāstra* or *Chedanavati*, Prākṛit text and Sk chāyā and notes 3) *Prāyaścitta-cūlikā* of Gurudāsa, Sk text with the commentary of Nandigūru. 4) *Prāyaścittagrantha* in Sk. verses by Bhaṭṭākalanka There is a critical

introductory note in Hindi by Pt. PREMI. Edited by Pt. PANNALAL SONI, Bombay Samvat 1978, Crown pp.16-172-12, Price Rs. 1/2/-.

*19. **Mūlācāra** of Vattakera, part I : An ancient Prākṛit text in Jaina Śaurasenī, Published with Sk. chāyā and Vasunandi's Sk commentary. A highly valuable text for students of Prākṛit and ancient Indian monastic life Edited by Pts PANNALAL, GAJADHARALAL and SHRILAL, Bombay Samvat 1977, Crown pp. 516, Price Rs- 2/4/-

20. **Bhāvasaṅgraha-ādih** : This vol. contains the following works. 1) *Bhāvasaṅgraha* of Devasena, Prākṛit text and Sk chāyā. 2) *Bhāvasaṅgraha* in Sk verse of Vāmadeva Paṇḍita 3) *Bhāva-tribhaṅgī* or *Bhāvasaṅgraha* of Śrutamuni, Prākṛit text and Sk. chāyā. 4) *Āsravatribhaṅgī* of Śrutamuni, Prākṛit text and Sk. chāyā. There is a Hindi Introduction with critical remarks on these texts by Pt. PREMI Edited with an Index of verses by Pt PANNALAL SONI, Bombay Samvat 1978, Crown pp 8-284-28, Price Rs. 2/4/-

21. **Siddhāntasāra-ādi-Saṅgraha** : This vol. contains some twentyfive texts 1) *Siddhāntasāra* of Jinacandra, Prākṛit text, Sk. chāyā and the commentary of Jñānabhūṣaṇa 2) *Yogasāra* of Yogicandra, Apabhraṁśa text with Sk. chāyā 3) *Kallāṅāloyaṇā* of Ajitabrahma, Prākṛit text with Sk. chāyā, 4) *Amṛtāśīti* of Yogīndradeva, a didactic work in Sanskrit 5) *Ratna-*

mālā of Śivakoṭi. 6) *Śāstrasārasamuccaya* of Māgha nandi, a Sūtra work divided in four lessons *pravacanam* of Prabhācandra, a Sūtra work in five lessons. 8) *Āptasvarūpam*, a discourse on the nature of divinity. 9) *Jñānalocanastotra* of Vādirāja (Pomarājasuta). 10) *Samavasaraṇastotra* of Visnusena 11) *Sarvajñastavana* of Jayānandasūri 12) *Pārśvanāthasamyā-stotra* 13) *Citrabandhastotra* of Guṇabhadra. 14) *Maharṣi-stotra* (of Āśādhara). 15) *Pārśvanāthastotra* or *Lakṣmīstotra* with Sk. commentary. 16) *Nemināthastotra* in which are used only two letters viz *n* & *m* 17) *Śaṅkhadevāṣṭaka* of Bhānukīrti. 18) *Nijātmāṣṭaka* of Yogīndradeva in Prākṛit 19) *Tattvabhāvana* or *Sāmāyika-pāṭha* of Amitagatī. 20) *Dharmasāyana* of Padmanandī, Prākṛit text and Sk. *chāyā* 21) *Sārasamuccaya* of Kulabhadra. 22) *Aṅgapaṇṇatti* of Śubhacandra, Prākṛit text and Sk. *chāyā*. 23) *Śrutāvātāra* of Vibudha Śrīdhara. 24) *Śalākānikṣepaṇanīṣkāsaṇa-vivaranam* 25) *Kalyāṇamālā* of Āśādhara. Pt PREMI has added critical notes in the Introduction on some of these authors Edited by Pt PANNALAL SONI, Bombay Saṁvat 1979 Crown pp 32-324, Price Rs 1/8/-.

*22 **Nītivākyāmṛtam** of Somadeva . An important text on Indian Polity, next only to *Kauṭilya-Arthaśāstra*. The Sūtras are published here along with a Sanskrit commentary. There is a critical Introduction by PREMI comparing this work with *Arthaśāstra*. Edited by

Pt. PANNALAL SONI, Bombay Samvat 1979, Crown
pp. 34-426, Price Rs 1/12/-

* 23 **Mūlācāra** of Vattakera, part II Prākṛit
text, Sk chāyā and the commentary of Vasunandī, see
No. 19 above Bombay Samvat 1980, Crown pp 332,
Price Rs. 1/8/-

24 **Ratnakaraṇḍaka-śrāvākācāra** of Samantabha-
dra . With the Sanskrit commentary of Prabhācandra
There is an exhaustive Hindī Introduction by Pt JUGAL
KISHORE MUKTHAR, extending over more than pp. 300,
dealing with the various topics about Samantabhadra
and his works Bombay Samvat 1982, Crown pp 2-84-
252-114, Price Rs. 2/-

25 **Pañcasamgrahah** of Amitagatī . A good com-
pendium in Sanskrit of the contents of *Gōmmaṭasāra*.
Edited with a note on the author and his works by
Pt DARBARILAL, Bombay 1927, Crown pp 8-240, Price
As. 13/- .

26 **Lāṭisamhitā** of Rājamalla . It deals with the
duties of a layman and its author was a contemporary
of Akbar to whom references are found in his compo-
sitions There is an exhaustive Introduction in Hindī
by Pt JUGALKISHORE Edited by Pt DARBARILAL,
Bombay Samvat 1948, Crown pp 24-136, Price As 8/- .

27 **Purudevacampū** of Arhaddāsa . A Campū
work in Sanskrit written in a high-flown style. Edited
with notes by Pt. JINADASA, Bombay Samvat 1985,
Crown p 4-206, Price As 12/- .

28 **Jaina-Śilālekha-saṁgraha** : It is a handy volume giving the Devanāgarī version of *Epigraphia Carnatica* II (Revised ed.) with Introduction, Indices etc by Prof. HIRALAL JAIN, Bombay 1928, Crown pp 16-164-428-40, Price Rs. 2/8/-

29-30-31. **Padmacarita** of Raviṣena This is the Jaina recension of Rāma's story and as such indispensable to the students of Indian epic literature It was finished in A D 676, and it has close similarities with *Paumcarīu* of Vimala (beginning of the Christian era). Edited by Pt DARBARILAL, Bombay Saṁvat 1985, vol. I, pp 8-512, vol II, pp 8-436, vol III, pp 8-446 Thus pp about 1400 in all Price Rs 4/8/- .

32-33 **Harivaṁśa-purāna** of Jinasena I This is the Jaina recension of the Kṛṣṇa legend. These two volumes are very useful to those interested in Indian epics It was composed in A D 783 by Jinasena of the Punnāṭa-saṁgha There is a Hindī Introduction by Pt PREMIJI Edited by Pt. DARBARILAL, Bombay 1930, vol I and II pp 48-12-806, Price Rs 3/8/-

34 **Nitivākyāmr̥tam**, a supplement to No 22 above This gives the missing portion of the Sanskrit commentary, Bombay Saṁvat 1989, Crown pp 4-76, Price As. 4/-.

35 **Jambūsvāmi-caritam** and **Adhyātma-kamalamārtanda** of Rājamalla See No 26 above Edited with an Introduction in Hindī by Pt. JAGADISH-

CHANDRA, M. A., Bombay Saṁvat 1993, Crown pp. 18-264-4, Price Rs. 1/8/-.

36. **Triṣaṣṭi-smṛti-śāstra** of Āśādhara : Sanskrit text and Marāṭhī rendering. Edited by Pt. MOTILAL HIRACHANDA, Bombay 1937, Crown pp. 2-8-166, Price As 8/-

37. **Mahāpurāṇa** of Puṣpadanta, Vol I **Ādipurāṇa** (Samdhis 1-37) A Jaina Epic in Apabhraṁśa of the 10th century A.D. Apabhraṁśa Text, Variants, explanatory Notes of Prabhācandra. A model edition of an Apabhraṁśa text. Critically edited with an Introduction and Notes in English by Dr. P. L. VAIDYA, M A., D.Litt., Bombay 1937, Royal 8vo pp. 42-672, Price Rs. 10/-.

37(a) Rāmāyaṇa portion separately issued. Price Rs. 2.50.

38. **Nyāyakumudacandra** of Prabhācandra Vol. I This is an important Nyāya work, being an exhaustive commentary on Akalaṅka's *Laghyastrayam* with Vivṛti (see No. 1 above). The text of the commentary is very ably edited with critical and comparative foot-notes by Pt. MAHENDRAKUMARA. There is a learned Hindī Introduction exhaustively dealing with Akalaṅka, Prabhācandra, their dates and works etc. written by Pt. KAILASCHANDRA. A model edition of a Nyāya text. Bombay 1938, Royal 8 vo., pp. 20-126-38-402-6, Price Rs. 8/-.

39. **Nyāyakumudacandra** of Prabhācandra, Vol. II : See No 38 above. Edited by Pt MAHENDRAKUMAR SHASTRI who has added an Introduction in Hindī dealing with the contents of the work and giving some details about the author. There is a Table of contents and twelve Appendices giving useful Indices. Bombay 1941. Royal 8vo pp. 20 + 94 + 403-930. Price Rs 8/8/-.

40. **Varāṅgacaritam** of Jatā-Simhanandī : A rare Sanskrit Kāvya brought to light and edited with an exhaustive critical Introduction and Notes in English by Prof. A. N. Upadhye, M. A., Bombay 1938, Crown pp. 16+56+392, Price Rs. 3/-

41 **Mahāpurāna** of Puṣpadanta, Vol II (Saṁdhis 38-80) : See No 37 above. The Apabhramśa Text critically edited to the variant Readings and Glosses, along with an Introduction and five Appendices by Dr P. L. VAIDYA, M. A., D. Litt., Bombay 1940. Royal 8vo pp 24+570. Price Rs 10/-.

42 **Mahāpurāna** of Puṣpadanta, Vol. III (Saṁdhis 81-102) : See No 37 and 40 above. The Apabhramśas Text critically edited with variant Readings and Glosses by Dr P. L. VAIDYA, M. A., D. Litt. The Introduction covers a biography of Puṣpadanta, discussing all about his date, works, patrons and metropolis (Mānyakheta). Pt PREMI's essay 'Mahākavi-Puṣpadanta' in Hindī is included here. Bombay 1941. Royal 8vo pp. 32+28+314. Price Rs. 6/-.

42(a). **Harivaṁśa** portion is separately issued.
Price Rs. 2 50.

43. **Ajanāpavanamjaya-nātakam** and **Subhadrā-nātikā** of Hastimalla : Two Sanskrit Dramas of Hastimalla (see also No 3 above). Critically edited by Prof M V PATWARDHAN The Introduction in English is a well documented essay on Hastimalla and his four plays which are fully studied. There is an Index of stanzas from all the four plays. Bombay 1950 Crown pp. 8+68+120+128 Price Rs 3/-.

44. **Syādvādasiddhi** of Vādibhasiṁha Edited by Pt DARBARILAL with Introductions etc. in Hindī shedding good deal of light on the author and contents of the work. Bombay 1950 Crown pp 26+32+34+80
Price Rs 1-50

45 **Jaina Śilālekha-samgraha**, Part II (see No. 28 above) . The texts of 302 Inscriptions (following A. Guérinot's order) are given in Devanāgarī with summary in Hindī There is an Index of Proper Names at the end. Compiled by Pt. VIJAYAMURTI, M A Bombay 1952. Crown pp 4+520 Price Rs 8/-

46. **Jaina Śilālekha-samgraha**, Part III (see Nos 23 & 45 above) . The texts of 303-846 inscriptions (following Guérinot's list) is given in Devanāgarī with summary in Hindī compiled by Pt. VIJAYAMURTI, M A. There is an Index of Proper Names at the end. The Introduction by Shri G.C. CHAUDHARI is an exhaustive

study of inscriptions Bombay 1957. Crown pp. 8+178
+592+42 Price Rs. 10/-.

47. **Pramānaprameyakalikā** of Narendrasena (A. D. 18th century) A Nyāya text dealing with Pramāna and Prameya The Sanskrit text critically edited by Pt DARBARILAL. The Hindī Introduction deals with the author and a number of topics connected with the contents of this work Bhāratīya Jñānapītha Kashi, Varanasi 1961 Price Rs. 1.50.



For copies please write to—

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

Durgakunda Road,

Varanasi—5 (India)

Or

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

3620/21 Netaji Subhash Marg,

Delhi—6 (India).